CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराने घाट : नयी सीढ़ियाँ

3·2

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ड़ियाँ

....

ानेकी
ाथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेट

B ३१८

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
प्रवेश सं० ८५४
दिनांक ....
नरिया (का. हि. वि. वि.) वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा मन्दिर-प्रकाशन—१०

पुराने घाट : नयी सीढ़ियाँ

[सर्वोत्तम प्राचीन कथाओंपर आधारित]

लेखक

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य

एम० ए०, पी-एच०डी०, डी० लिट्

अध्यक्ष—संस्कृत-प्राकृत विभाग

जैन कालेज, आरा

अहिंसा मन्दिर प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :
प्रेमचन्द्र जैन
मंत्री, अहिंसा मन्दिर प्रकाशन
राजकृष्ण जैन चेरिटेबल ट्रस्ट,
१, दरियागंज, दिल्ली–६

●

प्रथम संस्करण : १०००
श्रुत-पञ्चमी, वी० नि० २४९६,
जून १९७०
मूल्य : पाँच रुपए

●

मुद्रक :
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी–१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेट

प्रकाशकीय

हमें प्रसन्नता है कि 'अहिंसामन्दिर-प्रकाशन' का यह दशवाँ प्रकाशन पाठकोंके कर-कमलोंमें पहुँच रहा है। इससे पूर्व नौ महत्त्व-पूर्ण प्रकाशन निकल चुके हैं, जिन्हें खूब पसन्द किया गया है। कुछ प्रकाशन तो ऐसे हैं जिनकी द्वितीयावृत्तियाँ शीघ्र होने जा रही हैं।

प्रस्तुत प्रकाशन एक ऐसा प्रकाशन है, जिसे स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी चावसे पढ़ेंगे। यह एक रुचिवर्द्धक एवं लाभदायक कहानी-ग्रन्थ है और कहानी-ग्रन्थोंको पढ़नेकी इच्छा प्रायः सभीको होती है। इतना हम और स्पष्ट कर दें कि यह मात्र कहानी-ग्रन्थ ही नहीं है, अपितु शिक्षाप्रद-ग्रन्थ भी है। इन कहानियोंका आधार पुरातन है और उनका परिवेश नया है। इसीसे इसके लेखकने इसका नाम 'पुराने घाट, नयी सीढ़ियाँ' रखा है जो विषयकी दृष्टिसे सर्वथा उपयुक्त है।

इसके लेखक हैं समाजके माने हुए विद्वान् डा० नेमिचन्द्र जी शास्त्री आरा। डाक्टर शास्त्रीने अपनी मँजी लेखनी और सर्व विषय-गामिनी प्रतिभाके द्वारा इसका सृजन किया है। प्राकृत-साहित्यके विशाल भण्डारमें अनमोल रत्न निहित हैं। शास्त्रीजीने उसीकी तहसे इन कहानी-रत्नोंको उद्धृत किया और उन्हें नया रूप देकर प्रस्तुत किया है। इस कृपाके लिए हम शास्त्रीजीके अत्यन्त आभारी हैं।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमालाके सुयोग्य मंत्री डॉ० दरबारी-लाल कोठियाने इसके प्रकाशनकी व्यवस्था महावीर प्रेस वाराणसीमें करके प्रूफ देखने आदिमें सहयोग दिया है, इसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

राजकृष्ण जैन
संचालक—अहिंसा मन्दिर प्रकाशन
श्री राजकृष्ण जैन चेरिटेबल ट्रस्ट

२२–५–७०
दरियागंज, दिल्ली–६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-क्रम

१. प्रेयकी भभूत	....	....	१
२. यमुनापुत्री	....	....	३८
३. आरामशोभा	....	....	६२
४. परिवर्तन	....	....	९४
५. संशयात्मा	....	....	११२
६. पातिव्रतका शव	....	....	१२९
७. क्वचिदपि कुमाता	....	....	१५३
८. सती वेश्या	....	....	१७६
९. जीवनकी मोड़	....	....	१९९
१०. बुद्धिमती बहू	....	....	२२५
११. साक्षात्कार प्रविधि	....	....	२४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरोवाक्

मनोविनोद और ज्ञानवर्धनका जितना सुगम और उपयुक्त साधन कथा है, उतना साहित्यकी अन्य विधा नहीं। कथओंमें मित्र-सम्मत अथवा कान्तासम्मत उपदेश प्राप्त होता है, जो सुननेमें बड़ा मधुर और आचरण करनेमें सुगम जान पड़ता है। यही कारण है कि मानव नेत्रोन्मीलनसे लेकर अन्तिम श्वास तक कथा-कहानी कहता और सुनता है। इसमें जिज्ञासा और कुतूहलकी ऐसी वृत्ति समाहित है, जिससे यह आबाल-वृद्ध सभीके लिए आस्वाद्य है। श्रीमद्भागवतमें संसारतापसे सन्तप्त प्राणीके लिए कथाको संजीवन-बूटी कहा है[1]। कथाकी इसी लोकप्रियता और सार्वभौमिकताके कारण भारतीय साहित्य-स्रष्टा प्राचीनकालसे ही साहित्यकी इस विधाको समृद्ध बनाते आ रहे हैं।

भारतीय साहित्यमें अर्थवादके रूपमें कथाका प्राचीनतम रूप ऋग्वेदमें यम-यमी, पुरुरवा-उर्वशी, सरमा-पणिगण जैसे लाक्षणिक संवादों; ब्राह्मणोंके पर्णकाद्रव जैसे रूपात्मक आख्यानों; उपनिषदों-के सनत्कुमार-नारद जैसे ब्रह्मर्षियोंकी भावमूलक आध्यात्मिक व्याख्याओं एवं महाभारतके गंगावतरण, श्रृंग, नहुष, ययाति, शकुन्तला, नल आदि जैसे उपाख्यानोंमें उपलब्ध होता है। इस सन्दर्भमें बौद्ध जातकों, अर्धमागधीके भाष्यों एवं स्वतन्त्र रूपमें लिखित कथा-कोषोंको भी भुलाया नहीं जा सकता है। यह सत्य

---

१. तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥
श्रीमद्भागवत १०।३१।९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि प्राचीन ग्रन्थोंमें सिद्धान्त-निरूपण, तत्त्वनिर्णय एवं दर्शनमें भी गूढ़ और गम्भीर समस्याओंके समाधान हेतु कथाओंका सहारा लिया गया है। इन कथाओंका स्थापत्य आधुनिक कहानीके स्थापत्यसे बिल्कुल भिन्न है, पर तत्त्वकी दृष्टिसे दोनोंमें समानता है। समाज और व्यक्तिके जीवनकी विकृतियोंपर जितना प्रहार कथा-कहानियों द्वारा किया जा सकता है, उतना अन्य किसी विधा द्वारा नहीं। कथाकी इस सार्वजनीन लोकप्रियताके कारण आलोचकोंने लिखा है—

"साहित्यके माध्यमसे डाले जानेवाले जितने प्रभाव हो सकते हैं, वे रचनाके इस प्रकारमें अच्छी तरहसे उपस्थित किये जा सकते हैं। चाहे सिद्धान्त-प्रतिपादन अभिप्रेत हो, चाहे चरित्र-चित्रणकी सुन्दरता इष्ट हो, किसी घटनाका महत्त्व-निरूपण करना हो अथवा किसी वातावरणकी सजीवताका उद्घाटन ही लक्ष्य बनाया जाय, क्रियाका वेग अंकित करना हो या मानसिक स्थितिका सूक्ष्म विश्लेषण करना इष्ट हो—सभी कुछ इसके द्वारा सम्भव है"।[1]

वस्तुतः कथा स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमें जीवनके किसी एक तत्त्व, मर्म अथवा लक्ष्यकी एक ही घटनात्मक स्थिति अभिव्यक्त होती है। प्राचीन कथाओंमें घटना, कथोपकथन, सूक्ष्मता, शील, मानसिक जटिलता, तनाव आदिका सद्भाव भी विद्यमान है। स्थापत्यकी दृष्टिसे प्राचीन कथाओंका शिल्प रूपरेखामुक्त कहा जा सकता है। इन कथाओंमें पौरसौन्दर्य मानना तर्कसंगत है—एक पूरा चरित्र, एक पूरा व्रत, कोई वर्जना, कोई आचार समाविष्ट रहता है। जातीय संस्कृतिके आधारभूत चरित्र एवं व्यक्तित्वोंका गठन इन मांसल कथाओंमें निहित है। घटनाओं तथा दुर्घटनाओं; तीव्र कार्य व्यापार और कुतूहलके द्वारा चरमविन्दु तक ले जानेवाले

---

१. जगन्नाथ प्रसाद—कहानीका रचनाविधान, पृ० ४-५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रत्याशित क्रिया-कलाप सम्बद्ध रहते हैं, जिससे जीवनके उभय-पक्षोंपर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। भौतिक वातावरण बाह्य-चित्र उपस्थित करता है और मानसिक वातावरण मनका। भौतिक और मानसिक वातावरणके समन्वयमें कथाकी चारुता छिपी रहती है। प्राचीन कथाकार जीवन-सम्बन्धी कोई तथ्य प्रस्तुत करता है, वह किसी परिस्थिति-विशेषका उद्‌घाटन कर समस्या-विशेषका समाधान अंकित कर देता है। इसी तथ्यका स्पष्टीकरण डॉ० लक्ष्मीनारायणलालने निम्न प्रकार किया है—

"कहानी-कलाका मेरुदण्ड वास्तविक जीवन है, काल्पनिक लोक नहीं। वास्तविक जीवन देश-काल और जीवनकी विभिन्न सत्-असत् परिस्थितियोंसे निर्मित होता है, अतएव इन तत्त्वोंका एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानीमें वातावरण उपस्थित करना है। कहानीकी कथावस्तु और उसके संचालक पात्रोंका सीधा सम्बन्ध उक्त स्थितियोंसे होता है"।[1]

स्पष्ट है कि प्राचीन कथाकारोंने कथामें सजीवता और स्वाभाविकता लानेके लिए वातावरणके चित्रणका भी प्रयास किया है। यत: घटनाओं और पात्रोंकी कल्पना किसी वातावरणमें ही की जा सकती है। जीवन-सम्बन्धी तथ्यका समावेश चरित्र और संवादात्मकतामें सम्भव है। कथाकार घटनाओंके साथ चरित्रोंका उद्‌घाटन भी करते जाते हैं। पात्र-नियोजनके समय निम्नलिखित तथ्योंका ध्यान अवश्य रखा गया है—

(१) स्वाभाविकता

(२) सजीवता या व्यक्तित्व-सम्पन्नता

(३) कथाके मूलभावके प्रति अनुकूलता।

---

१. 'हिन्दी कहानी' में रा० प्रकाशदीक्षित एम० ए० द्वारा उद्‌धृत, पृ० ४६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन कथाओंमें पात्रोंकी योजना मूलभावके अनुकूल हुई है तथा पात्रोंका व्यक्तित्व चरित्रके माध्यमसे व्यक्त हुआ है। चरित्रका विश्लेषण प्रत्यक्ष (Direct or Analytical) प्रणालीके अन्तर्गत है। कथाकार पात्रके मुखसे ही चरित्रके सम्बन्धमें बहुत कुछ कह देता है। पात्रोंकी मानसिक स्थिति अथवा अन्य चारित्रिक विशेषताओंका उद्घाटन कथाकार स्वयं भी करता गया है। संकेतात्मक चरित्रके स्थानपर वार्तालापों और घटनाओं द्वारा चरित्रका विश्लेषण होता चला गया है।

यह यहाँ ध्यातव्य है कि प्राचीन कथाओंमें आत्मनिष्ठ जटिल भावोंकी अत्यधिक विवृत्ति, मानसिक संवेदनाओंके विस्तृत विवरण एवं जीवनके उन्नायक तत्त्वोंका संकेत नहीं मिलता है। भावों और विचारोंका वात्याचक्र भी उपलब्ध नहीं है। अतः प्राचीन कथा-साहित्यमें आदर्श चरित्रोंकी स्थापनापर ही विशेष बल दिया गया है। वस्तुतः वह स्थिरताका युग था, जिसमें मनुष्य आस्थावान् था, वस्तुओंके प्रति, उनके पारस्परिक सम्बन्धोंके प्रति और बाह्य संसारमें सत्यको प्रकट करनेवाली घटनाओंके प्रति लोगोंके हृदयमें एक सामान्य धारणा विद्यमान थी। दृष्टिकोण सभी व्यक्तियोंका बहिर्निष्ठ था। समस्त जीवन एक राजमार्गपर सुविधापूर्वक गतिशील बना हुआ था। ऐसी स्थितिमें आत्मनिष्ठ प्रवृत्ति, अन्तर्मुखी मनोवृत्तिको जागृत होनेका अवसर नहीं देती। साहित्यकी समस्त विधाओंमें कथात्मक विधा ही ऐसी है, जो जीवनके प्रकाश और अन्धकारको समानरूपसे प्रस्तुत करती है। जीवनके सार्थक रूपका उद्घाटन कथाद्वारा ही सम्भव है।

उपन्यासकी रचना भले ही उन्नीसवीं शतीसे आरम्भ हुई हो, पर कथाका सूत्रपात ई० सन्से सहस्रों वर्ष पूर्व ही हो चुका था। उदाहरण और दृष्टान्तके रूपमें लिखी गयी कथाओंमें भी चरित्रके विविध पक्ष उपलब्ध होते हैं। आजके कथासाहित्यके समान कथा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारकी प्रतिभाकी किरणें पात्रोंकी चेतनाकी प्रत्येक तह तक प्रवेश न कर सकीं हैं तथा विघटना और वस्तुका अभिव्यक्तिकरण कथाकी प्रक्रियामें सम्पन्न हुआ है।

'पुराने घाट, नयी सीढ़ियाँ' में कथानक पुराने हैं, पर शिल्प आधुनिक है। वस्तुको वर्णनीय और प्रेषणीय बनानेके लिए मैंने केवल कथावस्तुके ऊपर जमे हुए ऊबड़-खाबड़ अंशोंको दूर कर दिया है और उन्हीं अंशोंको ग्रहण किया है, जो कथाओंको सार्थकता प्रदान कर सकते हैं। कथाकी वस्तु वास्तविक जगत्की घटनाएँ न रहनेपर भी जीवनसे किसी-न-किसी प्रकार सम्बद्ध हैं। शब्दोंका निर्वाचन इस ढंगसे किया है, जिससे वे अधिक-से-अधिक व्यञ्जक हो सकें तथा विधायक कल्पना अपनी पूरी शक्तिसे काम कर सके।

प्राचीन घटनाओंकी योजना नवीन शैलीके आधारपर इस प्रकारकी है कि पाठक उनके मध्यमें प्रतिष्ठित हो सके। आघातों और प्रतिघातोंके प्रति खुला रह सके और उनको लेकर मानवोचित प्रतिक्रियाओंकी जाँच कर सके। देवाङ्गना, भूत-वेताल, पशु-पक्षी, नागकुमार आदि अतिमानवीय और दिव्य पात्रोंका सद्भाव भी क्रिया-प्रक्रिया उत्पन्न करनेमें सहायक हो सके, इसका ध्यान रखा गया है। नयी सीढ़ियाँ पड़नेवाले विविध प्रभावोंकी कितनी अभिव्यञ्जना करती हैं, इसका निर्णय पाठकोंपर ही छोड़ा जाता है। मानवको किसी भी वस्तु, चेतन या अचेतनके सम्पर्कमें लाकर उसके भावों, विचारों, अनुभूतियों और आचरणोंको पाठक देख-सुन सके, यह प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत कथासंग्रहमें ग्यारह कथाएँ हैं और सभीकी कथावस्तु पुरातन हैं। जिस प्रकार नदीका जल नवीन घड़ेमें रखनेपर नवीन और सुन्दर प्रतीत होने लगता है, उसी प्रकार पुरातन तथ्योंको नवीन कलेवरमें व्यक्त करके नवीनता लानेका प्रयास किया है। कथाकारोंने जीवनको जिस दृष्टिकोणसे देखा है, उस दृष्टिकोणकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिव्यञ्जना अवश्य की गयी है, पर साथ ही विचार और भावनाओंमें परिवर्तन लानेका भी पर्याप्त प्रयास किया गया है। प्रतिपाद्य विषय, घटना, कार्य, चरित्र, वातावरण और प्रभावका निरूपण भी यथास्थान होता चला गया है।

पुरातन घाटोंको नयी सोढ़ियोंद्वारा सजानेकी चेष्टा की गयी है। जीवनके गुण-दोषात्मक पक्षोंका उद्घाटन किया है। विमाताकी ईर्ष्या, प्रेमका महत्त्व, पिताका वात्सल्य, नारीकी ममता, संयम, त्याग आदि जीवनमूल्योंकी स्थापना करनेका प्रयास किया है। पुरातन आत्माको नये कलेवरमें सजानेके इस प्रयासने उक्त कथाओंमें मनोरञ्जनके साथ जीवनमूल्यों और क्रियाव्यापारोंको व्यञ्जित किया है। विवाहकी समस्या प्राचीन कालके समान आज भी जटिल बनी हुई है। इस समस्याका समाधान वर्तमान वातावरणके आलोकमें किया है।

परिवारके विघटनका प्रश्न आजके समान ही प्राचीन कथाकारोंके समक्ष था, अतः विघटित और संघटित परिवारोंके परिणाम कथाओंद्वारा अभिव्यक्ति किये हैं। आजीविका और शिक्षाका प्रश्न आजसे भी भयंकर प्राचीन कालमें उपस्थत था। 'इन्टरव्यू' किस प्रकार सम्पन्न होते थे तथा प्रतिभा और मेधाका परिज्ञान किस तरह प्राप्त किया जाता था, यह उक्त कथासे स्पष्ट है।

जीवन और जगत्को विभिन्न दृष्टिकोणोंसे कथाकारोंने देखा है और अपनी अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना सीधे रूपमें की है। जहाँ चरित्रोंमें एक ओर आदर्श पात्र प्राप्त होंगे, वहाँ दूसरी ओर आततायी, दुष्ट, चोर, लुटेरे भी मिलेंगे। एक ही व्यक्ति परिस्थितिविशेषमें किस प्रकार साधु, असाधु बन जाता है, यह भी उक्त कथाओंसे स्पष्ट है। पात्र वर्गविशेषका प्रतिनिधित्व करनेपर भी वैधानिक गुणोंसे युक्त हैं। अन्धविश्वास, मिथ्यात्व, क्रोध, लोभादि विकारोंका अस्तित्व भी चरित्रोंमें समवेत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस संग्रहकी सभी कथाओंमें समस्याओं और उलझनोंको स्पष्ट रूपसे उपस्थित किया गया है। इनमें प्रतिपादित जीवनमूल्य आज भी समाज और व्यक्तिके जीवनका परिष्कार करनेमें समर्थ हैं। चरित्रकी सृष्टिके लिए व्यापक आधार-फलक अपेक्षित है, अतः पात्रों-के चरित्र प्रेम, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, संघर्षकी व्यञ्जना करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि पात्र हमारे समाजके बीचके प्राणी हैं, तथा उनसे हमारा किसी-न-किसी प्रकारका लगाव है।

"पुराने घाट, नयी सीढ़ियाँ" में पाठक नयी सीढ़ियोंके सहारे घाट—तीर्थपर पहुँच शीतल-जल पान करके अपनी तृषाका शमन करेंगे। इस संग्रहकी समस्त कथाओंका उत्स प्राकृत कथाएँ हैं। जो लघु झरना ऊबड़-खाबड़ भूमिमें प्रवाहित हो रहा था, जिसका मधुर-शीतल जल पाषाणखण्डोंके मध्य असमतल रूपमें विकीर्णित था, उसे चट्टानों और पाषणखण्डोंको हटाकर समतल भूमिपर लानेका प्रयास किया है। प्राचीन संस्कृतिको आधुनिक परिप्रेक्ष्यमें उपस्थित कर वर्तमान भारतको इन कथाओं द्वारा जीवनी शक्ति देनेकी चेष्टा की गयी है। पाठक स्वयं घाटपर मज्जन-पानकर उक्त कथनकी सत्यताका अनुभव कर सकेंगे।

इस संग्रहके प्रकाशनके हेतु प्रयास करनेवाले प्रो० डॉ० दरबारी-लाल कोठिया एम० ए० पी-एच० डी०, न्याय-दर्शनाचार्य, प्राध्यापक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, काशीका मैं आभार प्रकट कर उनके ऋणसे उऋण नहीं होना चाहता हूँ। प्रो० कोठियाजीका स्नेह मेरे ऊपर अनुज तुल्य है, वे सदा मेरे अभ्युदयके लिए सचेष्ट रहते हैं, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करनेके लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। केवल नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम करता हूँ। अहिंसा-मन्दिर दिल्लीके स्वत्वाधिकारी श्री लाला राजकृष्ण-प्रेमचन्द्रजीके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनकी कृपासे यह संग्रह प्रकाशित हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सका। इसके मुद्रक प्रिय भाई बाबूलालजी फागुल्ल महावीर प्रेस, वाराणसीका भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने इसके मुद्रणमें आत्मीयता-पूर्वक तत्परता दिखलायी है। साहित्यसाधनामें सहयोग देनेवाली अपनी अर्धाङ्गिनी श्रीमती सुशीलादेवीका भी आभारी हूँ, जिनकी कार्यतत्परताके कारण गृहस्थीकी चिन्तासे मुक्त हूँ। उन आचार्योंके प्रति भी नतमस्तक हूँ जिनकी रचनाओंसे कथासूत्र ग्रहणकर इन कहानियोंका कलेवर गठित किया है।

णमो सव्वजिणाणं

एच० डी० जैन कालेज, आरा
मगध विश्वविद्यालय
अक्षय-तृतीया, वि०सं०२०२७

नेमिचन्द्र शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराने घाट : नयी सीढ़ियाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेयकी भभूत

ऋषभदत्ताकी बड़ी वहन सुन्दरीका विवाह वर्द्धमाननगरके सेठ सहदेवके साथ हुआ। सहदेव रूप, गुण और कलाका आगार था। पत्नी भी उसके मनके अनुरूप प्राप्त हुई थी। जब सहदेवकी भार्या गर्भवती हुई तो उसे नर्मदानदीकी चंचल तरंगोंमें स्नान करनेका दोहद उत्पन्न हुआ। वर्द्धमाननगरसे नर्मदानदी बहुत दूर थी, अतः भार्याने सहदेवसे अपने इस दोहदका जिक्र नहीं किया। 'दोहद पूर्ण न होनेसे वह शनैः शनैः कृश होने लगी। उसका मुख विवर्ण हो गया तथा उसके शरीरकी स्थिति चिन्त्य हो गयी।

सहदेवने एक दिन प्रेमपूर्वक अपनी पत्नीसे पूछा—"प्रिये! क्या कारण है, जिससे तुम्हारी इस प्रकारकी स्थिति हो गई है। तुम प्रतिदिन दुर्बल होती जा रही हो, भोजन भी बन्द होगया है। यदि यही स्थिति कुछ दिनों तक रह जायगो तो तुम्हारा जीवित रहना भी कठिन है। तुम अपने मनकी बात मुझसे क्यों नहीं कहती, कौन-सा कारण है, जिससे तुम्हारी यह स्थिति होती जा रही है।"

पत्नी—"नाथ! मैं इस भयसे अपने मनकी बात नहीं कह रही हूँ कि आपके द्वारा मेरी असंभव दोहद इच्छा पूर्ण हो सकेगी या नहीं? असंभव बातको कहकर अपने हितैषियोंको संकटमें डालना उचित नहीं। जो व्यक्ति अपनी और अपने परिवारकी सीमाओंका विचार किये बिना काम करता है, वह संकटमें फँस जाता है और उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है।"

सहदेव—'देवि'! जलमें बिहार करनेवाले प्राणी प्रत्येक हल-चलके साथ नये मार्गकी रचना करते हैं। लक्ष्यकी ओर बढ़नेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधक संघर्षको महत्त्व देता है, जीवन जितना कठोर होता है व्यक्ति उतना ही ऊँचा उठ जाता है। जो संघर्षसे बचकर पूर्व निर्मित मार्गपर ही चलनेका प्रयास करता है, वह जीवनमें कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता। नदी, सरोवर और गड्ढोंमें पड़ा भूतलका जल संघर्ष करता है, सूर्य किरणोंसे संतप्त होता है तो वह रविरश्मियोंके सहारे ऊपर उठ जाता है, सारी गन्दगी और मैल नीचे रह जाते हैं। राजा हो या रंक, ब्राह्मण हो या शूद्र, विद्वान् हो या मूर्ख जो कठोर श्रम करता है, संघर्ष करता है और दुर्गम दुर्लङ्घ्य स्थानमें भी मार्ग तैयार कर लेता है वह उन्नतिके गिरि-शिखरपर चढ़ जाता है। परिश्रमसे संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं। असंभव और असाध्य शब्द तो कायरोंके शब्दकोषमें निवास करते हैं। अतः तुम अपने मनकी इच्छा व्यक्त करो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।"

पत्नी—"स्वामिन्! मेरे मनमें नर्मदाकी चंचल लहरोंमें निरन्तर स्नान करनेकी भावना उत्पन्न हुई है। इस दोहदके पूर्ण न होनेसे मेरा शरीर क्षीण हो रहा है तथा शरीरके साथ मेरी अन्य शक्तियाँ भी लुप्त होने लगी हैं। यद्यपि मैं यह समझतो हूँ कि व्यक्तित्व-शुद्धिकी दृष्टिसे इस स्नानका कुछ भी महत्त्व नहीं है, तो भी यह दोहद-इच्छा मेरे परम्परागत विश्वासोंका समर्थन कर रही है।"

जीवनका अर्थ है शरीर और आत्माका सम्बन्ध। जहाँ शरीर आत्माके लिये होता है, आध्यात्मिक विकासमें सहयोग प्रदान करता हैं, वहाँ जीवन प्राणवान् बन जाता है। इसके विपरीत जहाँ शरीर अपने आपमें साध्य बन जाता है, वात्माके विकासकी उपेक्षा की जाती है, वहाँ चेतनके स्थानपर जड़की पूजा आरम्भ हो जाती है। दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि जीवनके स्थानपर मृत्युकी पूजा होने लगती। अतः क्रियाशीलता और विवेकको अपनाये रखना ही कार्यसिद्धिका मूलमन्त्र है।

पत्नीके दोहदको पूर्ण करनेके लिये सहदेवने अपने मित्रों सहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्थान किया। उसने प्रसन्नतापूर्वक जलयानोंकी व्यवस्था की और नाना प्रकारके वैभव सहित नर्मदाके लिये चल दिया। वह अपने साथियों सहित जिस नगरमें पहुँचता, वहीं अत्यन्त अभ्युदयपूर्वक भगवानकी पूजा करता। चैत्यालयोंके जीर्णोद्धारकी व्यवस्था करता और चतुर्विधसंघको समृद्ध बनाता। इस प्रकार सुखपूर्वक चलता हुआ, वह नाना वन और अमराइयोंसे सुशोभित रेवानदीके निकट पहुँचा। सुन्दरी इस स्थानके दर्शनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसका आत्मविश्वास बढ़ गया, जीवनके रेगिस्तानमें पुन: जलधाराका दर्शन हुआ। नर्मदाके तटपर पहुँचकर उसका हृदय शीतलतासे भर गया। आँखोंके सामने स्वच्छ नीला शीतल जल छलकने और लहराने लगा। मर्मव्यथाके पर्दे हटने लगे, दक्षिण पवन देश-विदेशके पुष्पोंका गन्ध उड़ा लाया था, न जाने कैसी गन्ध सुन्दरीके मनको विभोर कर रही थी। उदित होते हुए रविकी रश्मियाँ नर्मदाकी तरंगोंके साथ क्रीडा कर रही थीं। चारों ओर सौन्दर्यके भँवर उठ रहे थे, दृष्टि ठहर नहीं पाती। सम्मोहनके इस लोकमें समस्त रागिणियाँ बज उसके मानस संगीतमें मूर्छित होती जाती थी। सुन्दरीका मन न मालूम किन कल्पना-लहरोंके साथ उलझ रहा था। उसके कुन्दोज्ज्वल देहपर तेजपराक्रम उभरता जा रहा था। उसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ प्राणकी उसी एक ऊर्जस्वल धारामें विलीन हो गयी थीं।

यह भूमि सहस्रों देवभूमियोंसे अधिक रम्य और पावन थी। यहाँका एक-एक अणु अपूर्व, अद्भुत नावीन्यसे मुग्ध और सुन्दर था। सरिताके फेनच्छाय कुंडोंमेंसे गुरु-गम्भीर नाद करती हुई धारा उफन रही थी। तटवर्ती काननकी गुम्फित निबिड़तामें होकर दूर तक नदीका प्रवाह चला गया था। मार्गमें स्थित सैकड़ों ऊँचे-नीचे पाषाण-गह्वरोंमें वह महाघोष खण्ड-खण्ड होता सुनायी पड़ रहा था।

प्रात:काल प्रसन्नतासे भरकर नाना प्रकारके सुन्दर-वस्त्राभूषणोंसे सज्जित हो सुन्दरी अपने पति सहदेव और उनके साथियोंके साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मज्जन, क्रीडा एवं विनोद करनेके लिए महानदी रेवाके तटपर पहुँची। वहाँ नदीकी गम्भीर लहरोंको देखकर उसका मन शान्त हो गया, उसकी यह शान्ति उपलब्धिजन्य नहीं, तृप्तिजन्य थी।

प्रतिदिन स्नान करते हुए एक महीना पौषके लघुकाय दिनके समान सहज ही निकल गया। सुन्दरीके तन-मन दोनों स्वस्थ हैं, उसे अपार तृप्तिका अनुभव हुआ है। नर्मदाके शीतल जलमें उसे ऐसी तृप्ति प्राप्त होती है जैसे किसी साधकको साधनामें या गायकको गीतकी टेकके दुहरानेमें। कषायके उद्वेग और दैहिक स्फूर्तिके साधनोंने उसे कृतार्थ बना दिया है।

स्थानकी रमणीयताने सहदेवको आकृष्ट किया। यहाँके कण-कणने उसके मन और अन्तरात्माको संतुष्ट कर दिया। इस तटपर नाना देशोंके व्यापारी भी पधारे, जिससे क्रय-विक्रयका सुअवसर प्राप्त हुआ। इस समय सहदेवको अपने मालमें बहुत लाभ हुआ। यह सत्य है कि जब अनुकूल समय आता है तब सभी विभूतियाँ स्वमेव प्राप्त हो जाती हैं। भाग्यके प्रतिकूल रहनेपर संचित भी नष्ट हो जाता है। सहदेवका शुभोदय विभूति प्राप्तिका कारण बना हुआ है। अतः अद्भुत वैभव प्राप्तकर उसका मन वहींपर बस जानेका करने लगा।

उसने अपने साथियोंके समक्ष प्रस्ताव रखा—"यह स्थान मुझे सुन्दर प्रतीत होनेके साथ शुभ मालूम पड़ता है। यहाँ आते ही मेरा वह सामान बिक गया है जो वर्षोंसे सड़ रहा था। जिसकी रकम डूब चुकी थी, वह वसूल हो गई है। अतएव मेरा विचार है कि यहाँ एक नगर बसाकर हमलोग रहने लगें।"

वीरदेव—"श्रेष्ठिवर्य ! आपका विचार सुन्दर है, मैं भी आपके इस प्रस्तावका अनुमोदन करता हूँ। आप यहाँ एक नगर बसाइये तथा इस नगरको एक प्रमुख व्यावसायिक नगर बना दीजिये। यहाँ यातायातकी सभी सुविधाएँ वर्तमान हैं। जलपोतोंके साथ स्थल-मार्गसे भी सामान लानेमें कठनाई प्रतीत नहीं होगी। यहाँ भूमि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी पर्याप्त लम्बी चौड़ी पड़ी हुई है। पशुओंके लिए चरागाहोंकी भी यहाँ कमी नहीं है। जल-प्राप्तिकी पूरी सुविधा है, अतः व्यावसायिक दृष्टिसे यह स्थान नगर बसानेके लिये सर्वथा उपयुक्त है।"

सहदेवने नर्मदपुर नामका नगर बसानेके लिए नाना देशों और नगरोंसे व्यापारियोंको वुलाया। उसने अनेक प्रकारके कर्मकर, सामन्त, सैनिक, शिल्पी आदिको वहाँ वुला लिया। नर्मदपुर सभी दृष्टियोंसे अच्छा नगर वन गया। यहाँ सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं। न तो नगरवासियोंको ही किसी प्रकारका कष्ट था और न व्यापारियोंको ही। व्यापारी दिनोंदिन समृद्ध होते जा रहे थे। खेती भी अच्छे रूपमें उत्पन्न होने लगी थी और पशु-सम्पत्ति भी समृद्ध होने लगी थी। सबसे बड़ी घटना यह घटित हुई कि नर्मदपुरकी पश्चिम दिशामें एक स्वर्णकी खान निकल आई, जिससे व्यवसायमें पर्याप्त उन्नति होने लगी। श्रमिकोंको कार्य मिलने लगा और आर्थिक दृष्टिसे सभी सुखका अनुभव करने लगे। यह सत्य है कि जो भी जीवनमें सार्थक है, वह बिना श्रमका मूल्य चुकाये नहीं मिलता। स्वप्न मुफ्तमें मिलते हैं, सत्य नहीं मिलता। सत्यप्राप्तिके लिये श्रम अपेक्षित होता है।

सुन्दरीका गर्भ पुष्ट होने लगा। उसकी मातृ-साधना सफलताकी ओर बढ़ने लगी। सहदेव व्यापारी और श्रमिक वर्गका नेता बन गया। वह पुरुषार्थ, शौर्य-वीर्य, विद्या-बुद्धि एवं बलके सहारे सर्वहारादलका भी अग्रणी हो गया। थोड़े ही सययमें उसे अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हो गईं। उसे अपनी उपलब्धियोंके विराट् परिच्छेदके भीतर भावी सन्तानका अभ्युदय दिखलाई पड़ रहा था। पहली बार उसकी पिता बननेकी महत्त्वकांक्षा पूर्ण होने जा रही थी। वह सोचता—"अब मेरी गोदमें धराका वह सौन्दर्य बिखरेगा, जिसके लिये स्वर्गके देवता भी लालायत हैं। उस दिन सचमुच उन्हें मुझसे ईर्ष्या होगी, जिस दिन सुन्दरीके उदरसे आलोकपुंजका आविर्भाव होगा।" समुद्रके भीतर जैसे उत्ताल तरंगोंका मंथन होता है, वैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो उसके हृदयमें अनेक भावनाओंकी तरंगें उठ रही थीं ।

वह दिन भी आ पहुँचा । आज सुन्दरी और सहदेवकी चिराकांक्षित अभिलाषा पूर्ण हुई । भवनमें एक कन्याके रुदनकी ध्वनि सुनायी पड़ी । कन्या बहुत ही सुन्दर रूपलावण्यमें अद्वितीय थी और उसके शरीरसे तेज निकल रहा था ।

ज्योतिषियोंको बुलाया गया, कन्याके ग्रह-नक्षत्र दिखलाये गये । ज्योतिषियोंने पत्रा खोला, जन्मपत्री बनाई और कहा—"कन्या बहुत भाग्यशालिनी है । इसके जन्मसे माता-पिताका अभ्युदय होगा ।"

नर्मदाका दोहद होनेके कारण कन्याका नाम भी 'नर्मदा' रखा गया । नर्मदाकी चंचल तरंगोंके समान उसकी चुलबुलाहट सभीका मन आकृष्ट करती थी । सहदेव और सुन्दरीने कन्याको लक्ष्मी समझा और उसका लालन-पालन भी पुत्रके समान ही किया । कन्याके गर्भमें आते ही धन-सम्पत्तिकी वृद्धि हुई थी । अतएव माता-पिता बहुत प्रसन्न थे ।

: १ :

पाँच वर्षकी अवस्था प्राप्त होते ही कन्याका विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न किया गया । प्रतिभाशालिनी बालिका अध्ययनमें विशेष रुचि लेती थी । नर्मदाके अध्यापिका-अध्यापक उसकी प्रशंसा करते हुए उसे एक विलक्षण बुद्धिमती मानते थे । सुवर्णके समान उसका रूप-सौन्दर्य था और सरस्वतीके तुल्य बुद्धि ।

नर्मदासुन्दरी जब वयस्का हुई तो उसके रूप-सौन्दर्यका यश सुनकर अनेक श्रेष्ठिपुत्र आने लगे । सहदेवने यह निश्चय किया कि कन्याका विवाह समानधर्मीके साथ ही होना चाहिए । असमानधर्मीके साथ कन्याका विवाह होनेसे कन्या सुखी नहीं हो सकती है । क्षणभंगुर सुखके लिये धर्म बेचना ठीक नहीं । जो माता-पिता अपनी कन्याका विवाह किसी प्रलोभनवश असमानधर्मीके साथ कर देते हैं, वे धर्मके रहस्यसे अनभिज्ञ हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनमानस दो प्रकारकी विचार धाराओंमें विभक्त है। कुछ लोग अध्यात्म और अहिंसाकी चर्चा करते हैं और कुछ भौतिकवाद और हिंसाकी। अहिंसक व्यक्तिका आचरण परम पवित्र होता है, वह अपनी इन्द्रियोंका निग्रह करता है। अहिंसा द्वारा त्याग-संयमके जीवनका विकास होता है और हिंसाके द्वारा भोगवादका। भोगोपभोगकी प्रचुर सामग्री और सुविधा प्राप्त करनेके लिये व्यक्ति संग्रह और शोषणकी ओर बढ़ता है, साथ ही जहाँ भोग और वासनाको जीवनका लक्ष्य मान लिया जाता है, वहाँ व्यक्ति सदाचार, सचाई और ईमानदारीका उल्लंघन करते जरा भी नहीं हिचकिचाता; क्योंकि उसका मन वास्तविकता, सदाचार आदि सद्गुणोंमें नहीं लगता। उसे वास्तविकता विषयवासनामें मिलती है। यह मानवका बहुत बड़ा वैचारिक पतन है। बुराइयोंकी ओर बिना रुके लुढ़कनेकी यह वह फिसलन है जो व्यक्तिको अवनतिके रसातल तक ले जाये बिना नहीं छोड़ती। व्यक्तिका भोगवाद और सुविधावादमें फँसना ही हिंसक विचार है। विषय-वासना और भोगलोलुपता ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ है जिनका निकाल फेंकना व्यक्तिके लिये अनिवार्य है। जो सुख अहिंसा, सत्य, शील सदाचार जैसे गुणोंकी प्राप्तिमें है, वह भोग और वासनामें कदापि नहीं।

हिंसामें, जितनी बुरी प्रवृत्तियाँ हैं, सभी सम्मिलित हैं—राग, द्वेष और स्वार्थमयी प्रवृत्तियाँ हिंसा हैं। वह सूक्ष्म हो या स्थूल, टालने योग्य हो या अनिवार्य, आवश्यक हो या अनावश्यक, समाज-राजतन्त्र और अर्थनीतिसे सम्मत हो या असम्मत, हिंसा है। समाजशास्त्रमें हिंसाके दो रूप बन जाते हैं—नैतिक और अनैतिक। आवश्यक हिंसा—विरोध और उद्योग जनित समाजमें अपरिहार्य है, इसे समाजशास्त्रियोंने नैतिक रूप दिया है। अनैतिक हिंसा समाजके लिये अभिशाप है, यह समाजको विशृंखलित करती है। वास्तविक दृष्टिसे किसी भी प्रकारकी हिंसा नैतिक नहीं हो सकती। जीवनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्वार्थमयी प्रवृत्ति कम-से-कम हो। व्यक्ति जीवनमें उन प्रवृत्तियोंको अपनाये, जिन प्रवृत्तियोंमें स्वार्थ साधनकी भावना अत्यल्प रहती हो।

सहदेवकी विचारधारा और आगेकी ओर बढ़ी और वह गम्भीर विचारोंमें निमग्न होता हुआ सोचने लगा—"कन्याका विवाह समानधर्मीके साथ करनेमें सबसे बड़ा हेतु सांस्कृतिक उत्थानका है। असमान धर्मियोंके बीच स्थायी प्रेम नहीं हो सकता है, दोनोंमें निरन्तर कलह होता रहता है। आजकल हमलोग भौतिकताको महत्त्व देते हैं, जिसका परिणाम अशान्ति, संघर्ष और दिनरात कष्ट उठाना है। जीवनको केवल भौतिक साधनोंका कारण 'मानना पतन है। धन-लिप्सामें अन्धा बना व्यक्ति येन-केन प्रकारेण वैभवका अंबार खड़ा करनेमें जुटा रहता है। इस अत्यधिक आसक्तिने इसके विवेक-में कुण्ठा पैदा कर दी है। सत्-असत् नापनेमें उसे अर्थके अतिरिक्त अन्य मापदण्ड नहीं दिखता। पूँजीवादी मनोवृत्ति जहाँ एक ओर मानवके वैयक्तिक और पारिवारिक जीवनका विघटन करती है, वहाँ दूसरी ओर भाई-भाईको खूनका प्यासा भी बना देती है, पिता-पुत्रके बीच वैमनस्य और रोषकी भयावह दरार पैदा हो जाती है। यह जीवन कोई वास्तविक जीवन नहीं, जहाँ व्यक्ति अर्थकीट बन दिन-रात अर्थसे चिपटा रहता है। जीवनोत्थानके लिये समानधर्मी साथीका मिलना अत्यावश्यक है।

सहदेवके पास महेश्वरने आकार प्रार्थना की कि मेरे साथ नर्मदा-सुन्दरीका विवाह कर दिया जाय। महेश्वर हिंसाको हितकर समझता और नर्मदा अहिंसाको। यद्यपि दोनोंकी जाति एक थी, पेशा भी एक था और रहन-सहन भी प्रायः एक समान थे। सहदेवने पहले ही यह धारणा बना ली थी कि विवाह समान जाति, धर्म और गुण-वालोंके समान होना चाहिए। असमानता सर्वदा कष्टप्रद होती है, पति-पत्नीका जीवन समत्वमें ही विकासको प्राप्त करता है। अतएव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने महेश्वरके साथ नर्मदाका विवाह करनेसे इंकार कर दिया। उसने स्पष्ट रूपमें कह दिया कि समत्वके बिना विवाह संभव नहीं है। पति-पत्नीकी भिन्न विचारधारा होनेसे उन दोनोंमें कलह-की सम्भावना बनी रहेगी। जीवनके दो आदर्श होनेपर दम्पत्तिके जीवनका विकास सम्भव नहीं है।

सहदेवके इस उत्तरको सुनकर महेश्वर आवाक् रह गया। उसे अपने वैभव, रूप लावण्य और सम्मानका अहंकार था। वह समझता था कि कोई भी व्यक्ति मुझे अपनी कन्या देनेमें सौभाग्य समझेगा। आचारकी विभिन्नता विवाह-सम्बन्धमें बाधक होगी, यह तो उसने कभी सोचा भी नहीं था।

महेश्वरको यह अपना अपमान प्रतीत हुआ। वह इस समय सार्थवाहोंका प्रधान था। जिधर व्यापारके लिये वह जाता, उसके साथ सैकड़ों सार्थवाह चलते। व्यवसायी होनेके साथ वह शूरवीर भी था। उस जैसा कुशल धनुष-वाणधारी और खड्ग चलानेमें प्रवीण दूसरा व्यक्ति नहीं था।

नर्मदाका सौन्दर्य उसके मनको बार-बार आकृष्ट कर रहा था। वह सुन्दरी इस भूतलका चन्द्रमा है। ऐसा सुन्दर पुष्प किस सरोवरमें विकसित हुआ है, यह अनुमान गम्य नहीं है। उसका सौन्दर्य-प्रवाह देश और कालकी सीमाओंके ऊपर होकर है। और रूप, वह तो अपने आपमें ही सीमा है। उसकी मधुर वाणी तो अमृतके समान है। ऐसी सुन्दरीके साथ विवाह किये बिना जीवन निस्सार है। मेरी योग्यताको धिक्कार है, वैभवको धिक्कार है, इस रमणीके बिना जीवन व्यर्थ है।

आज महेश्वर विशेष उदास है। किसी कार्यमें उसका मन नहीं लग रहा है! सन्ध्या हो गई है, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना चारों ओर विकीर्ण है। भूमण्डल रजतमय हो गया है। नर्मदाके विशाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल-विस्तारपर हंसयुगलोंका विरल क्रीडारव रह-रहकर सुनाई पड़ता है। देवदारुवन और रजनीगन्धाका सुगंध लेकर वासंती वायु जनमानसको आन्दोलित कर रही थी। आज प्रकृतिके इस मधुमय वातावरणने महेश्वरकी विकलताको अधिक बढ़ा दिया है। भीतरसे पवन जितना ही अधिक तरल, कोमल और चंचल हो रहा था, बाहरसे उतना ही अधिक कठोर, स्थिर और विमुख दिखलायी पड़ रहा था। महेश्वरने सोचा—"इस रमणीको प्राप्त करनेके लिये मुझे सर्वस्व त्याग करना पड़े, तो भी कोई बात नहीं। मैं अपना धन-वैभव छोड़ सकता हूँ। अपनी परम्पराओंसे आगत प्यारी आराधनाको भी छोड़ सकता हूँ। यदि मैं इस रमणीको प्राप्त करनेके लिये अपनी परम्परागत हिंसाको छोड़नेका अभिनय कर सकूँ, तो मेरा विवाह अवश्य उस रमणीसे हो सकता है। मैं उस रमणीको किसी भी मूल्यपर प्राप्त करनेको तैयार हूँ।"

इस प्रकार सोच-विचार कर उसने अपने मनमें एक विचार स्थिर किया और अगले दिन सहदेवको अपने कपट व्यवहार द्वारा प्रसन्न कर नर्मदाके साथ विवाह करनेकी स्वीकृति भी प्राप्त कर ली।

: २ :

विवाहकी तैयारियाँ की जा रही हैं। प्रातःकाल नाना राग, गन्ध और उबटनोंसे उसे मज्जित किया गया है। विभिन्न प्रकारके कमलपरागोंसे अंगराग किया गया है। विभिन्न वाटिकाओं और उपवनोंसे पुष्पावचय कराया गया है। मंगल-वाद्योंसे सारा नर्मदपुर मुखरित है। तोरण, द्वार, गोपुर, मंडप और वेदियोंसे तटभूमि रमणीय हो उठी है। स्थान-स्थानपर बालाएँ अक्षत, कुंकुम, मुक्ता और हरिद्रासे चौक पूर रही हैं। बारांगनाएँ मंगल-गीत गाती हुई उत्सवके आयोजनमें संलग्न हैं। कहीं पूजा-विधान चल रहे हैं तो कहीं हवन-यज्ञ। सारा वातावरण आनंदमंगलसे युक्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नैसर्गिक सुन्दरी नर्मदा आज अलंकृत होनेसे अनुपम प्रतीत होती है। उसके ललाट, वक्षस्थल और भुजाओंपर मनोयोगपूर्वक पत्रलेखाएँ लिखी गयी हैं। अनेक हारों, आभरणों और कण्ठिकाओंसे उसे सजाया गया है। स्वर्गकी अप्सराएँ उसके सामने नत हैं। इतना सौन्दर्य शायद ही एक स्थान पर देखा गया हो।

महेश्वरको भी शोभित किया गया है। उसके शरीरका संस्कार भी अनेक प्रकारके सुगंधित पदार्थों द्वारा सम्पन्न हुआ है। दिव्य वस्त्राभूषणके साथ उसका सौन्दर्य अनुपम प्रतीत हो रहा है। जो महेश्वरको देखता है, वह उसे एकटक दृष्टिसे देखता रह जाता है।

परिणयकी बेला आ पहुँची। पण्डितों और पुरोहितोंने मन्त्रोच्चारण आरम्भ किये। हवनके सुगन्धित धूमसे दिशाएँ व्याप्त हो गईं। विभिन्न वाद्योंकी स्वर-लहरियाँ रमणियोंके मृदु-मन्द कंठोंसे मिलकर अपूर्व स्वर उत्पन्न कर रही थीं। नर्मदाका शीतल मृदुल हाथ महेश्वरके हाथसे जोड़ दिया गया। इस पाणिग्रहणके अवसर पर चारों ओरसे मंगल और आशीर्वचनोंकी ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। दिशाएँ मंगलकामनाओंसे व्याप्त हो गईं। आज दो आत्माएँ एकाकार होने जा रही हैं, दोनोंका हर्ष-विषाद सदाके लिये एक रूपमें परिणत हो रहा है।

पिता सहदेवने दान, मान और सम्मानसे आगत बारातियोंका स्वागत-सत्कार किया। अपने आतिथ्य द्वारा सबको सन्तुष्ट कर दिया। दहेजमें प्रचुर धन दिया और नाना प्रकारके वस्त्राभूषण समर्पित किये। वृद्धजन, पुरोहित, सार्थवाह, सामन्त, नेता आदि सभी इस संयोगको प्रशंसा कर रहे थे। उनके मुखसे आशीष ध्वनि निकल रही थी कि जिस प्रकार चन्द्रिका सर्वदा चन्द्रमाके साथ निवास करती है, उसी प्रकार यह नर्मदा सुन्दरी महेश्वरके साथ सुशोभित हो। माता-पिताने पुत्रीको अनेक प्रकारकी शिक्षा दी और समझाया—"बेटि! अब तुम्हारा घर महेश्वरका है। कन्या वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तम मानी जाती है, जो अपने पितृकुलका नाम उज्ज्वल करे। तुम सर्वदा सास-ससुर आदि गुरुजनोंकी सेवा करना, पतिकी आज्ञाके अनुरूप चलना और समस्त परिजनोंको सन्तुष्ट रखनेका प्रयास करना।"

नर्मदासुन्दरीने सिर झुकाकर गुरुजनोंकी शिक्षा स्वीकार की। मंगलाचारके पश्चात् वारातको विदा किया गया। कई दिनों तक चलनेके पश्चात् वे दम्पति वर्द्धमानपुरमें आये। महेश्वरकी माता ऋषिदत्ताने अपने भवनको सज्जित कराया। तोरण बँधवाये, बन्दन-मालाएँ लटकाई गईं और मंगलतूर्य बजाये जा रहे थे और वधूके स्वागतका पूरा प्रबन्ध किया गया था। आज ऋषिदत्ता बहुत प्रसन्न थी, उसकी अन्तरात्मा तृप्त हो गई थी। वह रवितुल्य सुन्दरी वधूको प्राप्तकर कृतार्थ थी। अब उसे अपना जीवन सार्थक प्रतीत हो रहा था। उसे भवनमें रणित नूपुरोंकी ध्वनि सुनाई पड़ रही थी।

नर्मदासुन्दरी इस नये परिवारमें आकर अन्य कुलबन्धुओंके समान कार्यसंलग्न थी। पति-पत्नीमें धार्मिक-दार्शनिक विचार-धाराओंको लेकर वाद-विवाद हो जाता था। एक दिन महेश्वरने कहा—"सुन्दरि! तुम अपने श्रमण-धर्मकी प्रशंसा करती रहती हो। बताओ हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह-संचयका त्याग करनेसे क्या व्यापार चलेगा? व्यापार करनेके लिये उक्त सभी पाप करने पड़ते हैं। धनार्जन करना कोई सामान्य बात नहीं है। इसके लिये छल-प्रपंच करना आवश्यक है। जो धर्मात्मा बनना चाहता है, उसे चाहिए कि वह व्यवसाय त्यागकर वनमें जाकर तपश्चरण करने लगे।"

"जीवदया पालने और सत्यव्यवहार करनेसे क्या दैनिक जीवनके कार्य सुचारुरूपसे चल सकते हैं। जीवनको व्यावहारिक होना चाहिए। जिसके पास शक्ति है, वह कायरताका आचरण नहीं करता। यह तो पागलोंकी रीति-नीति है कि वे जीवदया और ब्रह्मचर्यकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बातें कहकर लोगोंको बहकाते हैं, जीवनके यथार्थवादी दृष्टिकोणसे पृथक् करते हैं। मेरी दृष्टिमें जीवनका सत्य स्वेच्छया भोग भोगना और उपलब्ध पदार्थोंका यथोचित उपयोग करना है।"

"जो वीतरागी देव है, वह न तो किसीसे प्रसन्न होगा और न किसीसे असन्तुष्ट। जो उसकी सेवा करेगा, वह कुछ प्राप्त नहीं कर सकता है और जो इस देवकी निन्दा करेगा, उसे कोई दण्ड नहीं मिल सकता है। इस स्थितिमें वीतरागी देवकी उपासना हमारे किस कामको है।"

नर्मदा—"नाथ! आपने अभी जीवनके यथार्थ लक्ष्यको नहीं समझा। जीवनका लक्ष्य शाश्वत सुख-शान्तिके लिये प्रयत्न करना है। हमारा इतना ही लक्ष्य नहीं है कि सांसारिक भोग भोगते हुए जीवनको समाप्त कर दें। मानव-जीवनका लक्ष्य आत्मोत्थान या आत्मोद्धार है। इस लक्ष्यके अनुसार ही हमें सांसारिक कार्योंमें प्रवृत्ति करनी चाहिए। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह-संचयरूप पापोंके सेवनसे कोई सुखी नहीं हो सकता। यदि इन पापोंका सेवन ही धन-संचयका कारण होता तो चोर, लुटेरे भी धनिक बन गये होते। धन-संचयका कारण शुभोदय है। जिस व्यक्तिके शुभ कर्मका उदय है, उसे अनुकूल सामग्रीकी प्राप्ति होती है और अशुभोदय आनेपर अनुकूल सामग्री नष्ट हो जाती है और प्रतिकूल कारण-कलाप एकत्र हो जाते हैं।"

"पाप कभी सुखका कारण नहीं बन सकते। इनके सेवनसे अन्तरात्मा कलुषित हो जाती है और व्यक्ति अपने निज स्वरूपको भूले रहता है। यह मोहोदयका परिणाम है कि आपके मुखसे इस प्रकार की बातें निकल रही हैं। सात्त्विक प्रवृत्तिको प्रत्येक समझदार व्यक्ति सुखप्रद मानता है। जो पापका सेवन करता है, उसीको राजदण्ड, समाजदण्ड और जातिदण्ड प्राप्त होते हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"जो आपने वीतरागी देवकी उपासनाके सम्बन्धमें तर्क उपस्थित किया है, वह निरर्थक है। वीतरागी किसीको कुछ देता लेता नहीं। पर उनकी भक्ति करनेवाला अपनी भावनाके तारतम्यके अनुसार स्वयं ही शुभाशुभ फल प्राप्त कर लेता है। कर्ता-भोक्ता स्वयं यह आत्मा है, यह जिस प्रकारके कर्म करता है, वैसा ही आस्रव होता है और तदनुसार बन्ध।"

"एक अन्य बात यह भी है कि भक्ति करनेका उद्देश्य कुछ प्राप्त करना नहीं है, इसका लक्ष्य तो आत्मशुद्धिकी प्रेरणा प्राप्त करना है। हम जिस प्रकारके देवकी भक्ति करेंगे, उसी प्रकारकी हमारी परिणति हो जायगी। वीतरागता ही मुक्तिका साधन है और इसी वीतरागताको प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है। कषायको घटाने या कषायको क्षीण करनेपर ही वीतरागता प्राप्त होती है। अतः वीतरागीकी भक्ति ही उपादेय है।"

इस प्रकार नर्मदासुन्दरीसे जीवनोत्थानकी बातें सुनकर श्वसुरगृहके सभी व्यक्ति सन्तुष्ट हुए और उसका कुलवधूकी तरह सम्मान करने लगे।

एक दिन नर्मदासुन्दरी अपने भवनकी तीसरी मंजिल पर बैठी हुई पान चबा रही थी। उसने पानकी पीकको नीचेके चौराहेपर थूका। पानकी यह पीक एक ईर्यासमितिसे गमन करते हुए साधुके ऊपर पड़ गई। साधुका शरीर दूषित हो गया और उसे क्रोध आ गया। उसने अभिशाप दिया कि जिसने मेरे ऊपर यह गन्दी वस्तु गिरायी है, वह इसी जन्ममें नाना प्रकारकी विपत्तियोंको प्राप्त होगा।

जब साधुकी यह आवाज नर्मदासुन्दरीने सुनी तो वह तत्काल प्रासुक जल लेकर नीचे आई और साधुका शरीर स्वच्छ किया। उसने चरणोंमें गिरकर साधुसे प्रार्थना की—"वीतरागी प्रभो! मेरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपराधको क्षमा कीजिए। मैंने आपका अपमान करनेकी दृष्टिसे पानका रस नहीं गिराया है। यह मेरी अज्ञानताके कारण आपके ऊपर पड़ गया है, अतः आप क्षमा कीजिए।"

साधु—"वत्से ! क्षमा करनेकी कोई बात नहीं। पता नहीं मेरे मनमें क्रोध क्यों आ गया। मैं तो स्वयं पश्चात्ताप कर रहा हूँ। यह भी मेरे किसी कर्मका उदय था, जो इस रूपमें परिणत हुआ।"

"वचन अन्यथा नहीं हो सकते, दिया गया अभिशाप अब मृषा नहीं हो सकता। उसका एक ही उपाय है कि जनकल्याण किया जाय। जनकल्याणके कार्योंके करनेसे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा होती है और आत्मा पवित्र हो जाती है।"

साधु चला गया और नर्मदा अपने अशुभ कर्मोंकी निर्जराके लिये दान, पूजा, शील और तपाराधनामें प्रवृत्त हुई। रोगियों, दुःखियों और असहायोंकी सेवामें लग गयी। उसने चैत्यालयोंमें पूजनकी व्यवस्था कराई। मुनियों और तपस्वियोंको आहारदान दिया। राहगीरोंके लिए प्याऊशालाओंका प्रबन्ध किया। तन, मन और धनसे उसने लोक-सेवाका व्रत ग्रहण किया। वह वीतरागी देवोंकी उपासनामें अपना अधिकाधिक समय व्यतीत करने लगी। भक्ति ही सुख और शान्ति देने वाली है। साधारण मानव भी प्रभु-भक्तिके प्रभावसे अपना कल्याण कर सकता है। वीतरागी प्रभुकी सेवा-भक्तिसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है।

: ३ :

महेश्वरदत्त उद्यानमें क्रीडा कर रहा था। आज उसके अन्तरमें कोई चिन्ता समाहित है। वह स्वयं ही नहीं समझ पाता है कि क्यों रह-रहकर मन उदास हो रहा है। कार्य करनेमें चित्त क्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं लगता है। वह नर्मदाके साथ कन्दुकक्रीडा कर रहा था, पर बीच-बीचमें ध्यान अन्यत्र चला जाता था, जिससे उसका शान्त मन अशान्त हो जाता।

नर्मदाने विनीत भावसे पूछा—"स्वामिन्! क्या कारण है कि आपका मन आज कन्दुकक्रीड़ामें नहीं लग रहा है। कौन-सी आपको चिन्ता है, जिससे रह-रहकर आप चौंक जाते हैं। कृपया मुझसे अपनी कोई बात छिपाइये नहीं, स्पष्ट कह दीजिए। शायद मैं आपकी सहायता कर सकूँ।"

महेश्वरदत्त—"जो अपने पितामह-पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति-का उपभोग करता रहता है, वह तो निष्फल जीवन है ही, पर जो निरन्तर विषयासक्त हो घर पर ही रहता है, वह भी कूपमण्डूक बन जाता है। व्यापारमें निरन्तर गतिशील रहना ही जीवनकी यथार्थता है। जिस झरनेका जल सतत प्रवाहित होता रहता है, उसीका जल स्वच्छ और पेय माना जाता है, पर निरन्तर सड़ने-वाले तालाबका जल अपेय बन जाता है। अस्वास्थ्यकर हो जाता है। जीवनकी भी यही स्थिति है; गतिशीलताके कारण जीवन क्रिया-शील है और निष्क्रियताके कारण जड़।"

उसने व्यापारके हेतु यवनद्वीप चलनेकी तैयारी कर दी। अन्य सार्थवाहोंको भी साथ चलनेकी आज्ञा दे दी गयी। सभीके यान तैयार होने लगे। विभिन्न प्रकारका सामान यानोंमें भरा जाने लगा। जिस-जिस प्रकाके सामानकी बिक्री यवनद्वीपमें हो सकती थी, उस-उस प्रकारका सामान एकत्र किया गया। जब सभी प्रकार-की तैयारियाँ समाप्त हो चुकीं और गमन करनेकी तिथि निकट आई आई तो नर्मदाने अपने पति महेश्वरदत्तसे प्रार्थना की—"नाथ! पतिके वियोगमें पत्नीका कुशलतापूर्वक रह सकना बहुत कठिन है। आप यवनद्वीपको जा रहे हैं, मैं आपके बिना एक क्षण भी नहीं रह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकती हूँ। अतएव आप मुझे अपने साथ ले चलनेकी अनुमति दीजिए। मैं आपकी सब प्रकारसे सेवा करूँगी। समय-कुसमय आपको उचित परामर्श भी दूँगी।"

महेश्वरदत्त—"प्रिये! तुम परदेशके कष्टोंसे अपरिचित हो, इसी कारण साथ चलनेका आग्रह कर रही हो। परदेशमें नाना प्रकारके कष्ट होते हैं। वहाँकी भाषा न जाननेसे तो न मालूम कितने प्रकारकी कठिनाइयाँ उठानी-पड़ती हैं। मैं अकेला तो किसी प्रकार सह लूँगा, पर तुम्हारी जैसी सुन्दरीको साथ लेकर चलना उचित नहीं। मार्गमें चोर डाकू मिलते हैं, जिनका धनुर्वाणसे सामना करना होता है।"

नर्मदा—"प्रभो! आपके साथ चलनेसे मुझे आनन्दके अतिरिक्त कुछ भी कष्ट नहीं होगा।"

महेश्वरदत्त—"सुन्दरी! तुम यहीं पर रहकर सास, ससुर और परिजनोंकी सेवा कर अपने कर्त्तव्यका पालन करो।"

नर्मदा—"नाथ! मैं आपके वियोगमें प्राण धारण करनेमें असमर्थ हूँ। मछली जलसे वियुक्त होने पर जीवित रह सकती है, पर मैं आपके बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती हूँ। यह आप निश्चय समझ लीजिए कि यहाँसे आपके जानेके पश्चात् मेरे प्राण भी आपके साथ चलेंगे। शरीरका चलना तो मेरे हाथमें नहीं है, पर प्राणोंका चलना तो मेरी इच्छाके अधीन है। आप जानते हैं कि नारीके लिये पति ही गति है, पति ही शरण है और पति ही सर्वस्व है। पतिके अभावमें नाना प्रकारकी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है।"

महेश्वर—"सुन्दरि! समुद्र अत्यन्त भीषण है। इसमें चलनेपर यान सकुशल पहुँच सकेगा कि नहीं, यह आशंकाकी बात है। अतः तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार उपयुक्त नहीं है। साथ चलनेके दुराग्रहको छोड़ दो, हठ करनेसे किसे कष्ट नहीं उठाना पड़ता।"

२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेश्वरदत्तके उक्त कथनको सुनते ही नर्मदा रोने लगी। "नारीणां रोदनं बलम्" प्रसिद्ध है। जब अनुरोध और प्रार्थनासे कार्य नहीं हो सकता है, तो रो धोकर ही अपना कार्य कराती है।

महेश्वरसे नर्मदाका रोना नहीं देखा गया। नर्मदाके आँसुओंने उसके हृदयको पिघला दिया और उसे कहना पड़ा—"चलो साथ, जो सुख-दुःख होगा, साथ-साथ भोगा जायगा। तुम्हारे स्नेहको ठुकराकर जाना साधारण बात नहीं है।"

अधिक समयके लिये भोजन-पानकी व्यवस्था कर ली गयी। यानको लंगरोंसे वेष्ठित कर दिया गया। जलयानके लंगर खोल दिये, पाल तान दिये और जलयान समुद्रकी लहरोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। यानकी गति तेजीसे बढ़ रही थी और नाना प्रकारके मगर, मच्छ और घड़ियालोंके साथ उसका संघर्ष होता जा रहा था। समुद्रकी भीषणताको देखकर नर्मदाने कहा—"स्वामिन्! समुद्रकी भीषणताके कारण ही आचार्योंने संसारकी उपमा समुद्रसे दी है।"

"नगर, वन, पर्वत सहित पृथ्वी कहाँ चली गयी? क्या रवि, शशि और नक्षत्र आदि भी चलचर हैं, जो जलमें डूबते हैं, निकलते हैं। इतना विराट् समुद्र अभी तक नहीं देखा था, यहाँ तो जल-राशिके अतिरिक्त अन्य कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता।"

महेश्वर—"देवि! भय मत करो, मेरे पास स्थित होकर इस अपूर्व समुद्रका अवलोकन करो।"

इस प्रकार परस्पर मधु आलाप करते हुए कई दिन व्यतीत हो गये। जलयान अपनी गतिसे समुद्रकी छातीको चीरता हुआ बढ़ रहा था।

एक दिन मध्य रात्रिके समय कोई व्यक्ति मनोहर स्वरपूर्वक गाना गा रहा था। उसका स्वर सुनकर महेश्वरने नर्मदासे पूछा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"नर्मदे, तुम इसके रूपका वर्णन कर सकती हो। कितना मधुर स्वर है, इस मधुर स्वरके अनुसार इसका रूप भी अद्भुत् होना चाहिए।"

नर्मदा—"स्वामिन् ! मैं इसके स्वरके आधारपर इसके रूपका विश्लेषण कर सकती हूँ। यह श्यामवर्णका है, परस्त्री लम्पट है तथा युवतियोंके मनको चुरानेवाला है। इसके गुह्य स्थानमें प्रवालके समान मस्सा भी है।"

इस वर्णनको सुनकर महेश्वर सोचने लगा—"क्या मेरी पत्नी पुँश्चली है, जो इस व्यक्तिकी गुह्य बातोंको भी जानती है ?"

उसने प्रत्यक्षरूपसे पूछा—"प्रिये ! तुम इसके स्वरूपको कैसे जानती हो ?"

नर्मदा—"गुरुमुखसे मैंने जिन शास्त्रोंका अध्ययन किया है उन शास्त्रोंमें बताया गया है कि स्वरके अनुसार व्यक्तिके रूप और आकृतिका निर्धारण किस प्रकार किया जा सकता है। स्वर और आकृतिमें कार्य-कारण सम्बन्ध है, अतः जिसे कार्य-कारण सम्वन्ध-की जानकारी रहती है, वह स्वरसे आकृति और आकृतिसे स्वरका ज्ञान प्राप्त कर सकता है।"

महेश्वरको नर्मदाके उक्त कथनसे सन्तोष नहीं हुआ। उसके मनमें आशंका प्रविष्ट हो गयी और वह सोचने लगा—"जबतक किसी व्यक्तिके साथ किसी रमणीका विशेष सम्पर्क न हो, तबतक वह उसके गुह्य स्थानके मस्सेकी बात कैसे जान सकती है, अवश्य ही मेरी स्त्री पुँश्चली है। इस व्यक्तिकी समस्त बातें मालूम हैं। अतः सम्भव है कि इसके साथ इसका अनुचित सम्बन्ध हो। संसार में समस्त रहस्योंको जाना जा सकता है, पर महिला-हृदयको जानना कठिन है। यह हृदय तो इतना रहस्यपूर्ण है कि बड़े-बड़े ज्ञानी भी नारीके समक्ष अपनेको अज्ञानी समझते हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी विचारधारा पुनः आगे बढ़ी—"उस धूर्तने गाना गाकर नर्मदाको अपने पास बुलानेका संकेत किया है। निश्चय ही यह धूर्त, परस्त्री लम्पट व्यक्ति इसके हृदयमें निवास करता है। यह मेरे साथ इसीलिये आई है कि स्वच्छन्द होकर अपने इस जारके साथ विहार कर सके।"

"यह धूर्त प्रत्येक सन्ध्या और मध्यरात्रिमें अपना गाना गाकर इस सुन्दरीको बुलानेका संकेत करता है। जिस प्रकार चन्दनद्रव्यका त्याग कर मक्खियाँ अशुचिद्रव्यके स्पर्शको ही सर्वस्व समझती हैं, उसी प्रकार नारियाँ भी रूप-यौवनयुक्त पतिका त्याग कर धूर्त और विटोंका सहवास करती हैं। नारियाँ झूठे स्नेहका प्रदर्शन करती हैं, कपटाचरण द्वारा मनका अनुरंजन करती हैं, पर उनके हृदयके वास्तविक भावको कोई भी नहीं जान सकता है।"

वह सोचने लगा—"इस पुँश्चलीके साथ अब मेरा रहना सम्भव नहीं है। अतः किसी तरह इसका परित्याग करना चाहिए। यदि मैं इसका वध करूँगा तो स्त्री-हत्याका पाप लगेगा, जो ठीक नहीं। ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे यह अपने किये दुष्कर्मका फल स्वयं प्राप्त करे।"

इस प्रकार ऊहापोह करनेके पश्चात् उसने निश्चय किया कि इस समुद्रके मध्यमें अत्यन्त विस्तृत भूतरमण नामक द्वीप है। इसमें मनुष्य निवास नहीं करते और न वहाँ भोजनादिकी वस्तुएँ ही उपलब्ध हैं। अतः उस निर्जन द्वीपमें इसका परित्याग कर देनेसे यह अपने किये गये कर्मोंका फल स्वयं प्राप्त करेगी।

उसने घोषणा की कि मधुर जलसे परिपूर्ण महाऊर्घं नामक जलका कुण्ड भूतरमण द्वीपमें है, अतः वहाँसे जल लेकर तब हम लोग आगे बढ़ेंगे।

प्रातःकाल होनेपर जलयान भूतरमण द्वीपमें पहुँचा और वहाँ लंगर डाल दिये गये। सभी साथी जल लेनेके लिये चल पड़े।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महेश्वरदत्तने नर्मदासे कहा—"प्रिये ! जबतक अन्य साथी जल लेकर आते हैं तबतक तुम्हें मैं यहाँके मनोरम उद्यानोंका परिभ्रमण करा देना चाहता हूँ। यहाँकी भूमि बहुत ही सुन्दर है और आगे चलनेपर प्रकृतिका रमणीय साम्राज्य व्याप्त मिलेगा। हम लोग उस रम्य दृश्यका अवलोकन कर कृतार्थ हो जायेंगे। वहाँ हमें सुस्वादु फल और सुगंधित पुष्प मिलेंगे।"

आगे बढ़ने पर आम, नारियल, जामुन, नीबू, नारंगी, दाडिम, द्राक्षा आदिके वृक्ष और लताएँ उपलब्ध हुईं। पर आश्चर्यकी बात यह थी कि वहाँ एक भी मनुष्य दिखलायी नहीं पड़ता था। वह स्थान वीरान था, बिल्कुल एकांत और सुनशान था।

एक स्थान पर लतामण्डप देखकर नर्मदाने अपने प्राणेश्वरसे निवेदन किया—"प्रियतम ! मैं बहुत थक गई हूँ। अतः मेरी इच्छा यहाँ विश्राम करनेकी हो रही है। यद्यपि यह स्थान वीरान है पर है अत्यन्त रमणीय। इस कदलीघरकी छाया कितनी मनोहर है, यहाँ बैठते ही शीतलताका अनुभव होता है। इस प्रकार निवेदन करती हुई नर्मदाने एक लतामण्डपके नीचे पल्लव और पुष्पोंकी शय्या तैयार की। थोड़े समय तक विश्राम करनेके हेतु वह लेट गई और उसे निद्रा आ गई।"

नर्मदाको सोते देखकर महेश्वरदत्त बहुत प्रसन्न हुआ। उसके हृदयमें क्रूरताकी भावना पहलेसे ही व्याप्त थी। अतः वह उस सुन्दरी-को वहीं सोती हुई छोड़कर चल दिया। अपने स्थानपर आकर उसने जलपोतके लंगर खोल दिये। पाल ताननेके कारण जलपोत बड़ी तेजीसे समुद्रका वक्षस्थल चीरते हुए आगे बढ़ने लगे। सभी साथियों-के साथ महेश्वरदत्त आनन्दित होता हुआ चला जा रहा था।

जब नर्मदासुन्दरीकी नींद टूटी और अपने पास महेश्वरदत्त दिखलाई नहीं दिया तो उसका हृदय आशंकासे भर गया। उसने उठकर इधर-उधर महेश्वरकी तलाश की, जब वह उसे नहीं दिख-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाई पड़ा तो, तो उसका धैर्य टूट गया। उसने रोना-कलपना प्रारम्भ किया। वह अबला त्रस्त हिरणीके समान इधर-उधर विचरण करने लगी। उसके चीत्कारको सुनकर वन-उपवनके पशुओंके हृदय भी विदीर्ण होने लगे। वे भी इस रुदन करती हुई बालाके ऊपर दयालु हो रहे थे।

इधर महेश्वरदत्तके साथियोंने उससे पूछा—"आपकी पत्नी कहाँ रह गई, वह क्यों नहीं दिखायी पड़ती है?"

महेश्वरदत्त—"जब मैं उपवनकी ओर बढ़ा तो वहाँ एक भयंकर राक्षस मिला, जो मेरी प्राणेश्वरीका भक्षण कर गया। वह तो मेरी ओर भी झपटा था, पर मैं उससे किसी प्रकार बचकर निकल आया। उस राक्षसके आतंकके कारण ही तो मैंने यहाँसे अपने जलपोतको शीघ्र ही रवाना कर दिया है। शायद आप लोग आश्चर्य कर रहे होंगे कि इस द्वीपमें दो-चार दिन हम लोगोंने निवास क्यों नहीं किया। हमारे नाविक भी दिन-रात नाव चलानेके कारण थक गये हैं। अतः यहाँ विश्राम करना आवश्यक था। पर उस राक्षसकी आकृतिको देखकर मुझे अभी भी भय लग रहा है। इसी कारण जलयानको तीव्रगतिसे आगे बढ़ाया जा रहा है।"

नर्मदासुन्दरीके करुणक्रन्दनको उस निर्जन प्रदेशमें कोई भी सुननेवाला नहीं था। वह रोती हुई मूर्छित हो जाती। जब मूर्छा दूर हुई तो पुनः रोने लगी। प्रतिक्षण उसका प्रलाप वृद्धिगत होता जा रहा था। कभी वह शून्य वन-वीथिकाओंमें दौड़ने लगती, कभी समूहसे भ्रष्ट हुई करिणीके समान इधर-उधर दौड़ लगाती। इस प्रकार उसको रुदन करते हुई सन्ध्या हो गई। सूर्य भी अस्ताचलकी ओर गमन करनेका उपक्रम कर रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि नर्मदाके विलापको सुननेमें असमर्थ होनेके कारण सूर्य पश्चिम समुद्रमें अस्त होने जा रहा है।

जब सूर्यका उदय हुआ तो नर्मदाकी स्थिति पूर्ववत् ही थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने किसी प्रकार रोते-कलपते रात्रि व्यतीत की। सूर्य यह जानने-के लिये पुनः उदयको प्राप्त हुआ कि पतिवियोगमें दुःखी वह बाला अभी जीवित है या मर चुकी है। जिन चन्द्रमा और नक्षत्रोंने उस विरहिणी बालाको कष्ट दिया था, वे भी अपने पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये अस्त हो रहे थे।

नर्मदासुन्दरी रह-रहकर अपने प्राणाधार महेश्वरको पुकारती थी। वह कहती कि आपने किस अपराधके कारण मेरा त्याग किया है। आप अत्यन्त दयालु और धर्मात्मा हैं, फिर मुझे इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? नाथ, मेरे अपराधोंको क्षमाकर आप सामने आइये और मुझे धैर्य बँधाइये।

जब नर्मदासुन्दरीने देखा कि विलाप करनेसे कोई लाभ नहीं। अतः वह धीरे-धीरे शान्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करने लगी, पर कभी-कभी उसका हृदय उस दुःखसे विदीर्ण होने लगता था। एक दिन उसने आकाशवाणी सुनी—"सुन्दरि ! तुम्हारा पति तुम्हें बुद्धिपूर्वक यहाँ छोड़कर चला गया है। अब तुम व्यर्थ ही उसके लिए रुदन करती हो। उसकी प्राप्ति होनेमें अभी बहुत समय है। तुम्हें अनेक परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होना पड़ेगा तभी तुमको उसकी प्राप्ति होगी।"

इस वाणीको सुनकर वह सुन्दरी आश्चर्यचकित हो गई और उसे वस्तुस्थिति समझनेमें विलम्ब नहीं हुआ। वह सोचने लगी—"मुनिश्रापके कारण ही मुझे यह विपत्ति प्राप्त हुई है। अथवा इसमें मुनिका क्या अपराध, यह मेरे पूर्वकृत कर्मोदयका फल है। मनुष्य पूर्व जन्ममें जैसे शुभाशुभ कर्म करता है, उन्हींके अनुसार उसे अच्छे और बुरे फल प्राप्त होते हैं। क्या मैं इस विपत्तिसे ऊबकर प्राणघात कर लूँ, पर प्राणघात तो महापाप होता है। प्राणघात करनेसे दुःखों का अन्त नहीं होगा, बल्कि दुःखोंकी परम्परा और बढ़ती जायगी। अतएव यदि मैं जम्बूद्वीपमें किसी प्रकार पहुँच जाऊँ तो अवश्य ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आर्यिका दीक्षा धारण कर लूँगी। इस प्रकार मनमें निश्चयकर वह पञ्चनमस्कार मन्त्रका चिन्तन करने लगी।

"विपत्ति और दुःखोंका निराकरण पञ्चनमस्कार मन्त्रके चिन्तन से होता है। इस मन्त्रका स्मरण करते ही, दुःख काफूर हो जाते हैं और संसारके सभी सुख उपलब्ध होने लगते हैं। आत्मोत्थानका साधन वीतरागता है, जो वीतरागी है, राग-द्वेषसे रहित है, वही शाश्वत सुखको प्राप्त कर सकता है। जो साधनालीन तपस्वी है, वह सुकुमाल मुनिकी तरह भयानकसे भयानक उपसर्ग आनेपर भी विचलित नहीं होता। अतएव मैं भी अपने व्रताचारमें दृढ़ होऊँगी और आत्मचिन्तन करती हुई अपने इस समयका यापन करूँगी।"

: ४ :

समय परिवर्तनशील है। नर्मदासुन्दरीके भाग्यने पलटा खाया। शून्यद्वीपके दुःखोंका अन्त निकट आ गया। वह धर्मध्यानमें लीन रहती थी, पञ्चनमस्कार मन्त्रंका चिन्तन करती थी तथा प्रतिदिन भावभक्ति करती हुई शरीर धारणके हेतु फलाहार करती थी। इस प्रकार उसे उस द्वीपमें निवास करते हुए पर्याप्त समय बीत गया। अकस्मात् एक दिन जलाभाव हो जानेसे वीरदासका जलयान भूत-रमण नामक शून्यद्वीपमें पहुँचा। निस्सन्देह इस द्वीपके जलकुण्डका नीर अमृतके समान सुस्वादु था। निर्जन होनेपर भी फलादि ग्रहण करनेके लिए जब-तब जलयान वहाँ आते रहते थे। आज वीरदासका शिविर इस द्वीपमें स्थित था, उसके साथी जल भरनेके लिये गये हुए थे और वह वृक्षसमूहकी शोभाका अवलोकन करता हुआ वहाँ आया, जहाँ नर्मदासुन्दरी ध्यान लगाये हुए अवस्थित थी। उसने उसे देव-कन्या या नागकन्या समझा।

वीरदास नर्मदाके पास पहुँचा और उसे देखते ही आश्चर्य-चकित हो गया। उसने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि यहाँ उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भतीजी नर्मदा मिलेगी। प्रथम उसके मनमें आशंका हुई कि नर्मदाके रूपमें यह कोई व्यन्तरी या किन्नरी तो नहीं है। सम्भवतः मुझे धोखा देनेके लिए इसने यह रूप धारण किया है। नर्मदा तो अपने पति महेश्वरके साथ यवनद्वीपको गई हुई है, वह यहाँ कहाँसे आ सकती है। अवश्य यह कोई छल-प्रपंच है।

साहस एकत्र कर वीरदासने पूछा—"देवि! तुम कौन हो, यहाँ किस उद्देश्यसे निवास करती हो?"

नर्मदा—"तात! मैं भाग्यसे प्रताड़ित नर्मदपुरके व्यवसायी सहदेवकी पुत्री और वर्द्धमानपुरके सार्थवाह माहेश्वरदत्तकी पत्नी हूँ। मुझ भाग्यहीनाको मेरा पति न मालूम किस कर्मोदयका दण्ड देनेके लिये यहाँ सोते छोड़कर चला गया है। अब मैं यहाँ फलाहार करती हुई तपश्चरण पूर्वक अपना समय व्यतीत कर रही हूँ।"

वीरदासकी आवाजको पहचानकर नर्मदा अपने चाचाके चरणोंमें लिपट गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। यतः आत्मीय व्यक्तियोंके मिलनेपर दुःख पुनः नया हो जाता है। पहाड़ी झरना पत्थरकी चट्टानसे अवरुद्ध रहता है, पर जैसे ही वह चट्टानको तोड़ देता है, पुनः अत्यधिक वेगपूर्वक प्रवाहित होने लगता है। इसी प्रकार जो दुःख किसी कारणवश नीचे दबा रहता है, वह आत्मीय स्वजनोंके मिलनेपर एकाएक पुनः फूट पड़ता है। नर्मदाको वीरदासने आश्वासन दिया, उसे नाना प्रकारसे सान्त्वना देकर समझाया। कहा—"बेटि! धैर्य धारण करो और यह बतलाओ कि तुम्हारी यह स्थिति किस कारण हुई है?"

नर्मदा—"तात! पता नहीं किस अपराधके कारण मेरे पति मुझे यहाँ सोती हुई छोड़कर चले गये।" उसने यहाँ आने तकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने बताया कि जब मैं अपने पतिके विरहमें भ्रमण कर रही थी तो आकाशवाणी सुनकर मैंने तथ्यकी जानकारी प्राप्त की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त वृत्तान्तको सुनकर वीरदासके मनमें वेदना हुई और उसने नर्मदाको धैर्य देकर स्नान, उबटन अलंकरण, भोजन एवं दुग्धपान आदि कराया। इस प्रकार भोजन आदिकी व्यवस्था होनेसे नर्मदा-सुन्दरी स्वस्थ हो गयी।

वीरदासने अपने सेवकोंको आदेश दिया—"नर्मदाकी प्राप्ति होनेसे मेरे मनोरथ सफल हो गये, अतः अब यहींसे अपने देशको लौट चलना चाहिए। आगे चलनेसे कोई लाभ नहीं।"

सेवक—"स्वामिन्! हम लोग बहुत आगे चले आये हैं। यहाँसे बब्बरकूल पास ही है। अतः अब वहाँ तक चले बिना लौट चलना उचित नहीं।"

अनुकूल वायुकी प्रेरणाके कारण जलयान कुछ ही दिनोंमें सुन्दर बब्बरकूलके निकट पहुँच गया। सामानको उतारा जाने लगा। समुद्रतटपर जलयानके लगते ही, व्यापारी सामान लेनेके लिए आ गए। यह नगर भी धन, जनसे सुशोभित बब्बर नामका था और यहाँ पर मणि, कनक, रत्न आदि पदार्थोंकी प्रचुरता थी। नगरकी शोभा अद्भुत थी। इसकी अट्टालिकाएँ आकाशको छूती थीं और तिमंजिले चौमंजिले भवन हृदयको सन्तुष्ट कर देते थे। इस नगरका व्यवस्थापक इन्द्रसेन नामक व्यक्ति था। इसके यशसे सभी दिशाएँ उज्जवल थीं। धन-धान्यसे समृद्ध होनेके साथ यह शासक अत्यन्त पराक्रमी और वैभवशाली था। यहाँकी जनता सभी प्रकार सुखी और प्रसन्न थी।

इस नगरमें वारांगनाओंका एक मोहल्ला था, इस मोहल्लेमें सातसौ गणिकाएँ निवास करती थीं और इन सबकी स्वामिनी हरिणी नामकी गणिका थी। सभी गणिकाएँ धनार्जन करती थीं ओर उस धनका एक निश्चित अंश हरिणीको देती थी। हरिणी अपनी आयका चतुर्थांश राजाको करके रूपमें देती थी। जब हरिणी को यह ज्ञात हुआ कि जम्बूद्वीपका कोई धनी सार्थवाह आया है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो उसने अपनी दो दासियोंको बहुत सुन्दर मूल्यवान वस्त्र देकर भेजा और कहलवाया कि आज मेरे घरका आतिथ्य स्वीकार कीजिए। यह राजाज्ञा है, इसे स्वीकार करना आवश्यक है।

वीरदास—"मुझे आपकी स्वामिनीसे मिलनेकी आवश्यकता नहीं। हमारे कुलकी यह परम्परा है कि किसी भी वेश्याके घर नहीं जाना। तुम्हारी स्वामिनीको धनकी आवश्यकता है, अतः तुम आठसौ द्रम्म लेकर चली जाओ।"

हरिणीको वीरदासका वर्ताव बहुत ही बुरा लगा। जब दासियाँ वीरदासको आमन्त्रित करने आईं, तो उनकी दृष्टि नर्मदा पर पड़ी। नर्मदाके अपूर्व सौन्दर्यको देखकर वे आश्चर्य चकित हो गईं और उन्होंने इस बातकी चर्चा अपने स्वामिनीसे की।

हरिणीने दासियोंको नर्मदाको फुसलाकर भगा लानेके लिए भेजा वे नर्मदाके निकट पहुँची, पर वह उनकी बातोंमें न फँसी। वे दासियाँ किसी प्रकार वीरदासके पास गईं और नौकरोंको उत्कोच के रूपमें स्वर्णमुद्राएँ देकर उन लोगोंने वीरदासकी मुद्रा ले ली।

एक दिन जब वीरदास बाहर गया हुआ था कि हरिणीकी दासियाँ नर्मदासुन्दरीके पास पहुँची और कहने लगीं—"वीरदास हमारी स्वामिनीके यहाँ है, उन्होंने यह पत्र आपके पास भेजा है तथा पत्रमें उनकी मुद्रा अंकित है।"

नर्मदासुन्दरीको उन दासियों पर आशंका तो पहलेसे ही थी, पर वीरदासकी मुद्रा देखकर उसे विश्वास करना पड़ा। वह उनके साथ चल दी। वे उसे हरिणीके यहाँ ले गयीं।

नर्मदासुन्दरीको वहाँ पहुँचने पर बहुत निराशा हुई। उसने पूछा—"मेरे तात कहाँ पर हैं ?"

हरिणी—"तुम्हारे तातकी यहाँ क्या आवश्यकता है ? यहाँ तो तुम्हारी जैसी सुन्दरीकी आवश्यकता है जो अपने रूपके जादूसे सूर्यको भी परास्त कर सकती है। तुमने यह रूप कहाँसे प्राप्त किया है ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नर्मदा—"तुम चुप रहो ! मेरे समक्ष अनर्गल बातें करना ठीक नहीं। तुमने धूर्तता पूर्वक मुझे यहाँ धोखेसे बुलाया है।"

नर्मदाने अपनेको असहाय समझकर रोना-धोना आरम्भ किया। वह विलाप करती हुई कहने लगी—'हाय तात ! आपने मेरा शून्य-द्वीपसे उद्धार किया। मैंने समझा कि मेरी विपत्तिका अन्त हो गया, किन्तु अभी भी मेरी विपत्ति शेष है। इस नरकसे मेरा किस प्रकार उद्धार होगा ? ये रूपका सौदा करनेवाली वारांगनाएँ शीलका महत्त्व क्या समझें।"

नर्मदाने अनेक प्रकारसे विलाप किया। उसके करुण क्रन्दनसे पशु-पक्षी भी द्रवीभूत हुए, पर क्रूरहृदया हरिणी न पसीजी। वह उसे वेश्या बनानेके लिये बाध्य करती रही।

हरिणी बोली—"सुन्दरि ! मानुषीका जन्म दुर्लभ है। तारुण्य क्षणभंगुर है, विशिष्ट सुखका अनुभव करना ही इसका फल है। वह समस्त वेश्याओंको ही प्राप्त होता है, कुलवधुओंको नहीं। विशिष्ट प्रकारका भोजन प्रतिदिन खानेसे वह जिह्वाको सुख नहीं देता, प्रतिदिन नया-नया भोजन चाहिये। इसी प्रकार नये-नये पुरुष नये-नये भोगसुखको प्रदान करते हैं।"

"वेश्याएँ स्वच्छन्द विचरण करती हैं, अमृतके समान मद्यपान करती हैं, वेश्यावस्था साक्षात् स्वर्गकी भाँति मनोहर है। जो रमणी इस अवस्थाका अनुभव एकवार कर लेती है, वह फिर इस सुखका त्याग नहीं कर सकती।"

"तुम रतिके तुल्य सुन्दरी हो। राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार सभी तुम्हारे चरणोंके दास बन जायेंगें। तुम्हारे अधीन होकर वे तुम्हें अपार धन देंगें। इस मोहल्लेकी सभी वेश्याएँ आधा धन मुझे देती हैं, तुम मुझे विशेष प्रिय हो, अतः मैं तुमसे केवल चतुर्थांश ही लिया करूँगी।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नर्मदा—"तुम अत्यन्त नीच कुक्कुरी हो। निर्लज्ज होनेके कारण तुम्हें इस प्रकारकी बातें करते हुए शर्म नहीं आती। भले घरकी बहू-बेटियोंको फँसा कर लाना और उनसे वेश्यावृत्ति कराना कहाँ तक उचित है? तुम्हें इन नीच कर्मोंका फल अवश्य प्राप्त होगा। याद रखो, तुम्हें अपने कर्मोंके फलस्वरूप इसी जीवनमें नरक-वेदना भोगनी पड़ेगी। तुम्हारा शरीर गल जायगा और तुम्हें अपने पापका प्रायश्चित्त करना होगा।"

हरिणीने उसे नाना प्रकारकी यातनाएँ देना प्रारम्भ किया। उसने विट पुरुषोंको बुलाकर बलपूर्वक उसके सतीत्व अपहरणकी व्यवस्था की, किन्तु पुण्योदयसे नर्मदा अपने सतीत्वमें अटल बनी रही। वह दिन-रात पंचनमस्कार मन्त्रका स्मरण करती हुई, भोजन-पान छोड़कर भगवत्-ध्यानमें लीन रहने लगी।

इसी मोहल्लेमें करिणी नामकी वेश्या भी रहती थी। उसे नर्मदा पर दया आई और उसने हरिणीसे निवेदन किया कि नर्मदा को भोजन बनानेके लिये मेरे यहाँ नियुक्त कर दिया जाय। मैं इसे तब तक समझा-बुझाकर यथार्थ मार्ग पर भी लानेका प्रयास करूँगी।

हरिणीने करिणीकी बात स्वीकार कर ली और नर्मदा पाचिका का कार्य करने लगी। अब वह प्रभुचरणोंका ध्यान करती हुई अपने बनाये हुए भोजनमेंसे शरीरधारणके हेतु भोजन ग्रहण करती। इस प्रकार उसका जीवन व्यतीत होने लगा।

: ५ :

वीरदासको नर्मदासुन्दरीके चले जानेसे बहुत दुःख हुआ और उसने उसकी सर्वत्र तलाश की। जब उसे नर्मदासुन्दरीका पता न चला तो वह उस नगरके राजाके पास पहुँचा और कहने लगा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"देव, मेरी बेटीका कोई अपहरण करके ले गया है। उसकी प्राप्तिके लिये उसके वजनके बराबर सोना देनेके लिये तैयार हूँ। कृपया अपने गुप्तचरों द्वारा मेरी बेटीका पता लगवानेका कष्ट कीजिएगा।"

राजाने लगातार तीन दिनों तक नगरमें घोषणा कराई कि जो व्यक्ति नर्मदाका पता बतलायेगा या उसे ले आयगा, उसे नर्मदाके वजनके बराबर सोना दिया जायगा।

जब नर्मदाका कुछ पता नहीं लगा तो वीरदास निराशचित्त हो मूर्छित हो गया। इसी समय उसके साथी वहाँ आये और उन्होंने चन्दनद्रव छींटकर उसे चेतन किया। नर्मदाके न मिलनेसे वीरदास-की स्थिति बहुत खराब हो गई है, वह कभी रुदन करता है, कभी चिन्ताके कारण लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगता है और कभी विलाप करता हुआ कहता है—"बेटी, तुम मुझे शून्यद्वीपमें प्राप्त हो गईं, अब कहाँ पर हो, क्यों नहीं मुझे आकर सान्त्वना देती हो। क्या मैंने जन्मान्तरमें किसीकी बेटीका अपहरण किया था, जिसके कारण यह कष्ट मेरे ऊपर आया है। हाय, हाय, मैं नर्मदाके बिना कहीं मुँह दिखाने लायक भी नहीं हूँ।"

वीरदासने नाना प्रकारसे विलाप किया। उसके साथियोंने भी उसे समझाया कि विलाप करना निरर्थक है। अब तो धैर्य धारणकर इस वियोगजन्य कष्टको सहना पड़ेगा। यह संभव हो सकता है कि हमलोग एक बार अपने द्वीपको लौट जायँ, पश्चात् यहाँ पुनः आवें और नर्मदाकी तलाश करें। इस समय तो नर्मदाका मिलना सम्भव नहीं है।

निराश होकर वीरदास अपने घर चला आया। उसे यह विश्वास था कि सुमेरुपर्वत विचलित हो सकता है, सूर्य पश्चिम दिशामें उदयको प्राप्त कर सकता है, समुद्रमें अग्नि उत्पन्न हो सकती है, पर नर्मदा अपने शीलको खण्डित नहीं कर सकती।

नर्मदपुर निवासियोंको जब नर्मदाके अपहरणका समाचार मिला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सभी सन्ताप करने लगे। नगरवासियोंको नर्मदाके रूप, शील और गुणोंका स्मरणकर आन्तरिक वेदना हो रही थी। वे इस कल्पनासे अत्यधिक दुःखी होते थे कि शीलवती नर्मदाको कोई कष्ट दे रहा होगा, उसे मारन-ताडन आदि अनेक प्रकारके कष्ट मिल रहे होंगें।

: ६ :

हरिणीकी मृत्युके पश्चात् गणिकाओंके समक्ष यह समस्या उत्पन्न हुई कि अब गणिकाओंकी स्वामिनी कौन बने। सभी गणिकाएँ श्रृङ्गार कर एकत्र होने लगीं। आज निर्वाचनका दिन था और यह निर्वाचन कार्य 'पंचकुल' द्वारा सम्पन्न होनेको था। 'पंचकुल' ने उन गणिकाओंके रूप, सौन्दर्य और यौवनको देखा, सभी एकसे एक बढ़कर थीं। इसी समय धूल-धूसरित, रूखे बालवाली, मैले शरीरसे युक्त और रतिसम सुन्दरी नर्मदा उन्हें दिखलायी पड़ी। वे नर्मदाके इस अपूर्व लावण्यको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। वे यह भूल गये कि उन्हें न्यायसंगत निर्णय करनेका कार्य मिला है। श्रृङ्गार को हुईं सभी रूप-सुन्दरियाँ उन्हें फीकी जँची। उन्होंने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—

"इस गणिकाको स्नान कराकर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करो, गणिकाके पदपर अभिषेक होगा। इस जैसा सौन्दर्य, लावण्य और और तारुण्य कहीं नहीं प्राप्त है। प्रधान गणिका बननेकी समस्त योग्यताएँ इसके पास हैं।"

उन्होंने नर्मदासे निवेदन किया—"देवि ! आजसे राजाने तुम्हारे लिपे हरिणींका भवन, परिवार, परिचारक, वैभव और मान्यता प्रदान की है। तुम स्वेच्छया इन वेश्याओंका अनुशासन करती हुई इस वैभवके साथ निवास करो। आजसे यह समस्त वैभव तुम्हारा और तुम इस गणिका मोहल्लाकी स्वामिनी हो।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नर्मदा पंचकुलके इस प्रस्तावको सुनकर अत्यधिक दुःखी हुई। वह सोचने लगी कि पूर्वकृत कर्मोंका ही यह विपाक है, जिससे इस प्रकारके नीच कर्मको करनेके लिए मुझे प्रेरित किया जा रहा है। उसने अपने मनमें नाना प्रकारसे पश्चात्ताप करते हुए करिणीसे कहा—

"सखि, तुम मेरी अत्यन्त प्रिय और हितचिन्तिका हो। मेरे मनकी समस्त परिस्थितिको जानती हो। अतएव तुम उक्त पदपर प्रतिष्ठित हो जाओ। जो व्यक्ति आया करें, उनकी तुम्हीं सेवा करना। मैं आपके यहाँ किसी कोनेमें छिपी पड़ी रहूँगी।"

नर्मदाका अनुरोध करिणीने स्वीकार कर लिया और नर्मदा पूर्व-वत् धर्मध्यान करती हुई काल यापन करने लगी।

एक दिन शृङ्गार कर एक धनिक युवक आया और पूछने लगा—"तुम्हारी स्वामिनी कहाँ गई है ?"

करिणी—"महानुभाव, मैं इस समय प्रधान गणिकाके पदपर प्रतिष्ठित हूँ। आप मुझे पहचाननेमें भूल कर रहे हैं।"

नवयुवक—"नवोदय सूर्यके समान जिसके तेजस्वी अंग और साक्षात् लक्ष्मी या रतिके समान जिसकी कमनीय काया थी, वह कहाँ चली गई है। मैं तो अनिन्द्य सुन्दरीसे मिलने आया हूँ।"

करिणी—"आप भूल रहे हैं, मैं वही हूँ, जिसकी प्रतिष्ठा प्रधान गणिकाके पदपर हुई है।

नवयुवक—"उसके जैसा मनोरम रूप तुम्हारा नहीं है, तुम अवश्य उससे भिन्न हो।"

करिणी—"क्या आप गवारू आदमीकी-सी बातें करते हैं, आप अपनी भूलको सँभालिये।"

नवयुवक—"जब यह बात है, तो मैं जाता हूँ।"

करिणी—आपको जैसा अच्छा लगे, कीजिए।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते समय उसने मार्गमें स्वर्णमुद्राएँ देते हुए एक परिचारकसे पूछा "सच-सच बतलाओ, वह रानी कहाँ है ?"

परिचारक—"वह छिपकर रहती है, कुलवन्ती सती नारी होनेके कारण वह पुरुषोंसे घृणा करती है। उसको प्राप्त करना संभव नहीं है।"

वह निराश होनेके कारण क्रोधाग्निसे प्रज्वलित होने लगा। अतः उसने नर्मदाके शीलको धूलिसात् करनेका निश्चय किया। वह शासकके पास गया और बोला—"देव! आप मुझे आदेश दीजिए कि मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?" राजा—"कुमार! आप अपने इच्छानुसार मेरा जो भी प्रिय कार्य कर सकते हैं, कीजिए।"

कुमार—"देव! इस नगरमें एक ऐसी नारी है, जो त्रिलोककी सुन्दरी है और देवाङ्गनाओंके रूप-सौन्दर्यको भी तिरस्कृत करती है। वह किसीको भी अपना रूप-वैभव समर्पित करनेको तैयार नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रजापतिने उसका निर्माण आपके लिए ही किया है। अतः, महाराज! रूप, यौवन, राज्य और धनसे क्या लाभ, यदि वह सुन्दरी प्राप्त न हुई। आपका अन्तःपुर उसी रमणीरत्नसे सुशोभित हो सकता है।"

राजा—"कुमार! वह रमणीरत्न कौन है? जिसकी आपने अबतक प्रशंसा की है।"

कुमार—"हरिणीके पदपर प्रतिष्ठित प्रधान गणिका।"

यह समाचार नर्मदासुन्दरीको भी अवगत हुआ। वह सोचने लगी—"चक्रवाक जलमें पड़नेवाले अपने प्रतिबिम्बको चक्रवाकी समझकर आशान्वित होता है, पर चंचल तरंगें उस प्रतिबिम्बको भी शीघ्र ही विघटित कर देती है। विधाता बड़ा ही निपुण है। मैं जबतक एक दुःखसमुद्रसे पार नहीं हुई, तबतक द्वितीय पहाड़ टूट पड़ा। यहाँका बब्बरराजा अत्यन्त क्षुद्र, क्रोधी, अधर्मी, नारकी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महापापी और क्रूर है। इससे अपने शीलकी रक्षा करना बहुत कठिन है। अतएव मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, किससे अपने मनके दुःखको कहूँ, कुछ समझमें नहीं आता। यह सत्य है कि प्राणोंकी अपेक्षा शील अधिक मूल्यवान् है।"

"अरे! भाग्य तूने मुझे इतना सौन्दर्य क्यों दिया? यह सौन्दर्य ही तो मेरी विपत्तिका कारण बना हुआ है।

इस प्रकार सन्ताप करती हुई नर्मदा शीलरक्षाके लिए विचलित हो उठी। एकाएक उसे धनेश्वरका कथानक स्मरण हो आया।

"वसन्तपुर नगरमें धनपति सेठका पुत्र धनेश्वर रहता था। वह दुर्भाग्यवश दरिद्र हो गया और दरिद्रतासे पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख प्राप्त करने लगा। एक दिन उसने सोचा कि परदेशगमन करने-पर ही यह दारिद्र्य नष्ट हो सकता है। वह अपने विचारानुसार अपने परिवारकी व्यवस्था कर दूर देश चला गया और वहाँ एक गाँव में गाय चरानेका काम करने लगा। इस कार्यसे उसने कुछ ही महीनोंमें पर्याप्त धन संचित कर लिया और अब उसने व्यापार करना प्रारम्भ किया। व्यापार द्वारा धन कमानेपर वह सोचने लगा कि विदेशमें कितना भी धन रहे उससे क्या लाभ! धनकी उपयोगिता स्वदेशमें है, क्योंकि वहींपर सम्मान, आदर और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, अतएव अब यहाँसे अपने देशको चलना चाहिए। पर मार्ग-में चोर लुटेरे बहुत हैं, उनसे यह धन किस प्रकार सुरक्षित पहुँच सकेगा। अतः उसने ग्रहबाधित पागलका-सा वेष बनाया और समस्त धनसे रत्न खरीद लिए तथा चिल्लाता हुआ कि, "मैं रत्न लिए जाता हूँ, मैं रत्न लिए जाता हूँ", जाने लगा। चोरोंने उसका पीछा किया और पकड़ लिया तथा पूछा कि रत्न तुम्हारे पास कहाँ हैं? उसने अपनी गठरी दिखाई! चोरोंने समझा कि यह पागल है, इसी कारण यह बक रहा है। जिसके पास रत्न होंगें वह कहता थोड़ा ही चलेगा। रत्न छिपाकर रखनेकी वस्तु है, कहनेकी नहीं। इस उपाय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से धनेश्वर सकुशल रत्न लेकर अपने घर पहुँच गया।" अब मुझे भी इसी प्रकार पागलों जैसा व्यवहारकर अपने शील-रत्नकी रक्षा करनी है।

: ७ :

राजा इन्द्रसेनने अपने दण्डधरोंको गणिकाओंके मोहल्लेमें भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर रानी नर्मदाको राजा द्वारा बुलाये जानेकी चर्चा की। नर्मदाने स्नान, अलंकरण किया और सुन्दर वस्त्राभूषण पहन-कर राजाके यहाँ चलनेको प्रस्तुत हो गयी। वह शिविकामें आरूढ़ हो चल दी। जब मार्गमें एक पुष्करणीके निकट पहुँची तो जल पीनेके हेतु वहाँ गयी। इस सरोवरके निकट एक गड्ढा था, उसमें वह जान-बूझकर गिर गयी। उसने अपने शरीरपर कीचड़ लपेट लिया और अंडबंड बकना शुरू किया। कभी वह गाली बकती, कभी रोती और कभी अपने वस्त्रोंकी प्रशंसा करती। कभी वह राजाकी प्रशंसा करती, उसका गुणगान करती और कभी राजाको गाली देती। उसकी स्थिति प्रमत्त जैसी हो गयी।

दण्डधारियोंने अन्तःपुरमें नर्मदाको पहुँचा दिया, पर उन्मत्ता-वस्थाके कारण सभी अन्तःपुरवासी उसके व्यवहारसे खिन्न थे। कभी तो वह लोगोंकी ओर झपटती, जिससे डरकर लोग भाग जाते। कभी किसीको मारती, कभी हँसती और कभी गाली देती।

परिचारकोंने राजासे निवेदन किया कि वह सुन्दरी पागल है। वह अन्तःपुरमें उपद्रव मचा रही है। कभी वह किसी रानीके ऊपर कीचड डालती है, कभी पुष्प तोड़कर उछालती है और कभी अर्ध-नग्नावस्थामें परिभ्रमण करती है।

राजाने पागलपनको दूर करनेवाले व्यक्तियोंको बुलाया। मन्त्र-तन्त्र और झाड़-फूँक शुरू हुई, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उसका पागलपन उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। अब उसका अन्तःपुर निवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना भी कठिन हो गया। अतः उसे अन्तःपुरसे मुक्त कर दिया गया।

नर्मदासुन्दरी अपने शरीरपर कीचड़ लपेटकर एक खप्पर लिए हुए घर-घर भिक्षा माँगते हुए विचरण करने लगी। अपनी उन्मादावस्थाको दिखलानेके लिए कभी वह नाचती, कभी रोती, कभी गाती और कभी हँसती थी।

एक दिन उसे जिनदेव नामक श्रावक मिला। इस श्रावकसे उसने अपने मनकी समस्त व्यथा कह सुनाई। उसने बतलाया कि शीलव्रतकी रक्षाके हेतु पागलपनका स्वाँग उसे करना पड़ रहा है। वास्तवमें वह बिल्कुल ठीक है। इस संसारके विलासी व्यक्तियोंके कारण उसका मन ऊब चुका था और वह श्रमणदीक्षा लेनेके लिये उत्सुक थी।

जिनदेव वीरदासका मित्र था। उसने नर्मदाको वीरदासके यहाँ सकुशल पहुँचा दिया। यहाँ आकर नर्मदा सोचने लगी—"वासनाका पंक व्यक्तिकी अन्तरात्माको दूषित कर देता है, पर जब इस पंकसे साधनाका पंकज विकसित होता है, तो व्यक्ति अपने उत्थानका मार्ग प्राप्त कर लेता है। जीवनका सत्य साधनामें है, वासनामें नहीं। विषय-कीट अपना तो पतन करता ही है, सम्पर्की व्यक्तिको भी पापके गर्तमें गिरा देता है। वास्तवमें कषाय त्याग करनेपर ही प्रभुत्वका मद छूटता है, छिपाव या दुराव नहीं रहता, हिंसा और संघर्ष नहीं रहते और पराधीनतासे छुटकारा प्राप्तकर स्वातन्त्र्यकी प्राप्ति हो जाती है। संसारकी मृगमरीचिका व्यक्तिको पीड़ित रखती है।

शील आत्माका धन है, इस धनकी रक्षाके लिये देहका भी त्याग किया जा सकता है। शीलके रक्षित रहनेपर सभी गुण रक्षित रहते हैं। शीलके प्रभावसे अनेक प्रकारकी विभूतियाँ प्राप्त होती रहती हैं। विद्या, मन्त्र औषधि आदिकी सिद्धि शीलके कारण होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारीकी सबसे बड़ी सम्पत्ति शील है। अतः मैंने अपने इस धनकी रक्षा अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंको सहनकर भी की है।"

नर्मदासुन्दरी संसारके विषयसुखोंसे ऊब चुकी थी। उसे जगत् की स्वार्थपरता प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ रही थी। अतः उसने एक दिन आचार्य महाराजके समक्ष पहुँचकर अपना पञ्चमुट्ठी केशलुञ्चन किया और 'णमो अरहंताणं' कहकर आर्यिका दीक्षा प्राप्त करनेकी याचना की।

दीक्षित नर्मदा जनकल्याण और आत्मकल्याणमें प्रवृत्त हो गई। उसने घर-घर जाकर सोयी नारी-जातिको जगाया। ज्ञानका अलख जगाकर बहनोंको ज्ञानी-ध्यानी बननेके लिए प्रेरित किया। उसने बतलाना आरम्भ किया कि नारी भी पुरुषके समान अविवाहित रहकर लोकसेवा कर सकती है। जीवन शोधनमें वह किसीसे पीछे नहीं रह सकती। पुरुष-समाज स्वयं ही नारीके सतीत्वका अपहरण करता है। वह स्वयं पाप या दुराचारकर नारीके ऊपर पाप आरोपितकर अपनेको निर्दोष बतलाता है।

अतएव नारियोंको अपने ऊपर स्वयं विश्वास करना होगा। जब हम बाहरकी प्रवृत्तियोंसे हटकर अपने भीतरका दर्शन करने लगते हैं, तो हमें अपार आनन्द प्राप्त होता है। बहनोंको अपनी दृष्टिमें परिवर्तन करना होगा, बहिर्मुखी होनेके स्थानमें उसे अन्तर्मुखी बनना होगा। मनकी पवित्रता और ज्ञानका आलोक ही जीवनका चरम ध्येय होना चाहिए।

जबतक प्रेयको भस्म बनाकर उसका व्यवहार नहीं किया जायगा तब तक श्रेयकी उपलब्धि नहीं हो सकती। प्रेयका होलिकादाह ही श्रेयका मंगलप्रभात है। प्रेयकी भभूत मर्दनसे ही अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका विकास होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यमुनापुत्री

पंच पहाड़ियोंके मध्य बसा हुआ और गर्म झरनोंसे ओत-प्रोत राजगृह नगर गिरिव्रजके भग्नस्तूपोंपर खड़ा है। ये भग्नस्तूप भूमिसात् होनेके पूर्व भारतीय सभ्यताके कनक-कंगूरोंकी भाँति शोभित थे। यहाँ घटित हुआ कंस और जरासंधका संयोग आँधी और आगका संयोग था। जरासंधका आतंक देशपर इतना अधिक था कि विक्रान्त कुरुओंको भी कृष्णको शरण देनेका साहस नहीं हुआ और देवकीनन्दनको सारा देश लाँघकर पश्चिम समुद्र तटपर द्वारका बसानी पड़ी।

गिरिव्रजके प्राचीन प्राचीरोंके वाहर उत्तरकी ओर शिशुनागवंशने अपना राजप्रासाद निर्मित किया है। इसके चारों ओर अनन्त धनी, मानी, सेठ, साहुकार निवास करते हैं। इस नगरीका बिम्बसार या श्रेणिकने पर्याप्त विस्तार किया। श्रेणिक जितना शक्तिशाली था, उससे कहीं अधिक राजनीतिज्ञ। वज्जियोंके आठ गणोंमें विदेहके लिच्छवियोंका प्रवलतम स्थान था। श्रेणिकने चेटककी कन्या चेल्लनाके साथ अपना विवाह सम्वन्ध स्थापितकर वैशाली गणतन्त्रको अपना सहजमें सहायक बना लिया। अब मगध, कौशल और विदेहमें एक नये जीवनका संचार हुआ।

तीर्थंकर महावीरका प्रथम धर्मोपदेश राजगृहके क्रोडमें अवस्थित विपुलाचलपर हुआ था। आज भी यहाँ उनके धर्मोपदेशकी गूँज सुनायी पड़ती है। सोयी मानवता प्रबुद्ध हुई थी। उन्होंने संसारके वाहरकी खोज न कर उसके भीतरकी खोज की थी। प्रत्येक व्यक्ति परकी बुराई देखता है, अपनी नहीं। स्वयंकी बुराईके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदृश बुराईको जो मेरु सदृश समझ लेता है, वही अपने भीतरको देख सकता है। जीवनकी प्रतिष्ठाका आधार अर्थ—धन-वैभव नहीं है, प्रतिष्ठाका औजार है—त्याग, संयम और चरित्र। जो त्याग और अध्यात्मप्रधान सांस्कृतिक परम्पराओंको भूलकर भौतिक प्रवाहके अनुस्रोतमें वहने लगता है, वह यथार्थ जीवनमूल्योंके प्रति उपेक्षा करता है। भगवान् महावीरने जगत्को पहचाननेकी अपेक्षा अपनेको पहचाननेपर जोर दिया। आत्मतत्त्वकी अनुभूति करनेवाला ही अहिंसा और संयमकी साधना कर सकता है। वर्गभेद, जातिभेद या विद्या-बुद्धिकृत भेद कृत्रिम हैं। संसारके सभी प्राणी योग्यताकी अपेक्षा समान शक्तिवाले हैं, अतएव समताद्वारा सभीको तुल्य समझ प्रेमका व्यवहार करना आवश्यक है।

इसी राजगृहमें चन्दनबाला गणिनीका संघ आया हुआ है। इस संघमें सुव्रता नामक एक आर्यिका है। यह आर्यिका अत्यन्त तेजस्विनी, बुद्धिमती और तपस्विनी है। संघमें प्रतिदिन मध्याह्न-कालके समय प्रवचन होता है जिस प्रवचनका प्रमुख विषय व्यक्तित्व निर्माण रहता है। गणिनीका कथन है कि त्याग और संयम द्वारा ही जीवनका वास्तविक निर्माण सम्भव है। श्रद्धालु व्यक्ति ज्ञानोपासना करता हुआ अपनी पाशविक वृत्तियोंका शोधन करता है, श्रम और सदाचारसे व्यक्तित्व सुगठित करता है। दान, शील, तप, और सद्-भावना ये चारों ही व्यक्तित्व प्रतिष्ठानके आधार हैं। प्रकृतिने स्व-भावसे ही मनुष्यमात्रको दानी बनाया है। जो केवल बटोरता है, बाँटना नहीं जानता, उसके जीवनमें आनन्द नहीं आ सकता है। संचयका उद्देश्य जहाँ मात्र संचय होता है, दान नहीं, वहाँ व्यक्तित्व का उत्थान नहीं हो सकता। जो अपने ही स्वार्थों और अपनी ही मान्यताओंमें बँधा रहता है, वह व्यक्ति दान नहीं दे सकता और अहंकी परिधिमें आबद्ध हो जानेके कारण दास बना रहता है। अतः दान देनेसे वस्तुओंके प्रति ममता घटती है, सच्चा सन्तोष मिलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। करुणा, सहानुभूति, दया प्रभृति, मानवतापोषक गुणोंका उदात्तीकरण दान द्वारा ही संभव है।

शीलमें ज्ञातृत्व, कर्त्तृत्व और भोक्तृत्व इन तीनों गुणोंका समावेश पाया जाता है। नैतिकतासे अनैतिकता, अहिंसासे हिंसा, प्रेमसे घृणा, क्षमासे क्रोध, उत्सर्गसे संघर्ष एवं मानवतासे पशुता-पर विजय प्राप्त करना शीलके अन्तर्गत है। तपका अर्थ है असत् प्रवृत्तियों और इच्छाओंका निरोध करना। कष्टसहिष्णु बन व्रतोप-वास द्वारा आत्माके कालुष्यको दूर करना तपका रहस्य है। जीवनके व्यवहारोंका त्याग करके सच्चे हृदयसे सभीके प्रति निर्मल भावना रखना सद्भावके अन्तर्गत है। इस प्रकार गणिनी अपने प्रवचनमें व्यक्तित्व-निर्माणके सम्बन्धमें तथ्योंका प्रतिपादन कर रही थीं।

एक दिन सुव्रता चर्याके निर्वाह हेतु धनपाल सेठके घर गयी। इस सेठकी पत्नीका नाम शोभा था। शोभा सार्थक नामवाली थी, वह रूप-गुणमें भी शोभा थी और परिवारकी देखभालमें भी। सेठ धनपाल अपनी इस पत्नीको पाकर धन्य था। उसके परिवारका सारा बोझ शोभाके ऊपर था।

शोभा इस सुव्रता आर्यिकाके अनुपम रूप-सौन्दर्यको देखकर मुग्ध हो गई। वह सोचने लगी—"यह रूप, वैभव और ऐसा कठोर व्रत, यह विरोधाभास किस प्रकार समवेत हुआ है?'

भिक्षाचर्या सम्पन्न होनेके अनन्तर शोभा सुव्रतासे कुछ धार्मिक प्रश्नोंके उत्तर पूछती है।

शोभा—"'धर्म' का वास्तविक स्वरूप क्या है? मानव-जीवनमें इसकी साधना किस प्रकार की जा सकती है?"

सुव्रता—"वस्तुके स्वभावको धर्म कहते हैं। आत्माका स्वभाव रत्नत्रयरूप है, यह अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप है। अतः विकृतियोंसे आत्माको बचाये रखना उसकी धार्मिक प्रवृत्ति है। जिस प्रकार पानीको गर्म कर देनेसे उसमें विकृति आ जाती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी प्रकार कषायोद्रेक होनेसे आत्मा विकृत होती है। आत्माका यह विकार ही अधर्म है। अतएव रत्नत्रय, अहिंसा और उत्तम-क्षमादिरूप धर्म है। जो अपना कल्याण करना चाहता है, उसे अहिंसाधर्मकी साधना करनी चाहिए। परस्पर भाई-भाईका-सा व्यवहार करना और दूसरोंको ठीक अपने समान समझना तथा उनके विपरीत आचरण न करना अहिंसा है। पाखण्ड और धोखाका अन्त अहिंसक आचरण द्वारा ही संभव है। विश्वप्रेम द्वारा ही व्यक्ति और समाजके बीच अधिकार और कर्त्तव्यकी शृंखला स्थापित हो सकती है। व्यक्ति सामाजिक हितकी रक्षाके लिए अपने स्वार्थका त्याग कर सहयोगकी भावनाका विकास कर सकता है।

मानवका जीना अधिकार है, पर दूसरोंको जीवित रहने देना उसका कर्तव्य भी है। अहिंसाके आधारपर ही सहयोग और सह-कारिताकी भावना स्थापित की जा सकती है। अहिंसा ही एक ऐसा अस्त्र है, जिसके द्वारा एक बून्द रक्त बिना बहाये वर्गहीन समाजकी स्थापना सम्भव है। अहिंसा ही समताभाव उत्पन्न कर सकती है। सहानुभूति, प्रेम, दया, सेवा, त्याग और संयमकी प्रवृत्ति अहिंसाके द्वारा समाजमें आ सकती है।

अहिंसाका विकसित रूप सत्य, अचौर्य, शील और अपरिग्रह है। अहिंसाका आचरण उक्त व्रतोंके आचरण द्वारा ही सम्भव है। आचार्योंने इच्छाओंके नियन्त्रणपर बल दिया है, अतः इच्छाओंके नियन्त्रित होनेसे ही अपरिग्रहकी वृत्ति आती है। जबतक असीमित इच्छाएँ बनी रहेंगी, तबतक जीवनमें अहिंसक वृत्तियाँ पनप नहीं सकती हैं।

न्यायपूर्वक भरणपोषण करना और अपने योगक्षेमके लायक वस्तुओंको ग्रहण करना अपरिग्रहका सिद्धान्त है। श्रमपूर्वक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आजीविका अर्जन करना और अर्जनके उपायोंमें अहिंसाको अपनाना जीवन-शोधनका उपाय है।"

शोभा सुव्रताकी प्रखर वाणीसे अत्यधिक प्रभावित होती है। उसके दिव्य तेज और ओजस्वी वाणीको सुनकर वह मुग्ध हो जाती है। उसे ऐसा अनुभव होता है कि यह त्रिलोकका सौन्दर्य लेकर भी क्यों इस युवावस्थामें दीक्षित हुई हैं। इसके दीक्षित होनेका कोई रहस्य होना चाहिए। अतएव शोभा पुनः पूछती है—"देवि ! आपने इस प्रकारका अनुपम रूप-लावण्य कहाँसे पाया ? किस पुण्योदयका प्रभाव है, जिससे आपने इस युवावस्थामें संयमकी दीक्षा ग्रहण की है। जो अवस्था सांसारिक विषयोंके सेवनके लिये थी, जिसमें नाना प्रकारके भोगोंका सेवन किया जाता है, उस अवस्थामें यह विरक्ति क्यों उत्पन्न हो गयी ! आजतक आप जैसी सुन्दर युवतीको विरक्त होते हुए नहीं देखा। मेरे मनमें आपका परिचय जाननेकी तीव्र उत्कण्ठा है।"

सुव्रता—"श्राविके ! तपस्वियोंका परिचय जाननेकी आवश्यकता नहीं। मृत्यु समय-कुसमयको नहीं देखती, वह तो अवसर प्राप्त कर चली आती है। इसके लिये किसीको प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है। सुन्दर और असुन्दर सभीकी किसी-न-किसी दिन मृत्यु होती है। मृत्युके लिये रूपवान, कुरूप, धनी, निर्धन, मूर्ख, विद्वान् सभी समान हैं। उसकी दृष्टिमें कहीं भी विषमता नहीं आती। मरनेके पश्चात् सभीको अपने-अपने कर्मानुसार गतियोंमें जन्म लेना पड़ता है और गतियोंके अनुसार सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।"

शोभा—भगवती ! आपका कथन यथार्थ है, पर मेरा मन आपका परिचय ज्ञात करनेके लिये उत्सुक है। अतः, कृपया अपना परिचय बतलाकर हम लोगोंको भी संयमकी ओर प्रवृत्त कीजिए। उदाहरण मिलने पर ही व्यक्ति अपने पुरुषार्थमें प्रवृत्त होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: २ :

वत्सदेशमें कौशाम्बी नामकी नगरी है। इस नगरीमें उदयन नामका राजा अपनी प्रिय पत्नी वासदत्ता सहित राज्य करता था। उदयनके समान ही वासदत्ताकी भी ललित कलाओंके प्रति अत्यधिक रुझान थी। वासवदत्ता वीणावादनमें अत्यन्त प्रवीण थी। चित्रा-लेखन कलासे भी वह अभिज्ञ थी। उदयनकी राज-सभामें संगीत-नृत्यका आयोजन निरन्तर होता रहता था। इस कलागोष्ठीमें दूर-दूरके कलाकार भाग लेते थे और अपनी कलाका प्रदर्शन कर उदयन-का अनुरंजन करते थे। उदयनकी कलाप्रियताका यह परिणाम था कि प्रजा भी कलाके प्रति अपनी अभिरुचि रखती थी।

उत्सव या त्यौहारके समय प्रजा भी कलागोष्ठियोंका आयोजन करती थी। इस नगरीमें ऋषभदेव नामक एक धनी-मानी सेठ रहता था। यह कलाकार तो था ही, पर कलाकारोंको आश्रय भी देता था। इसका विश्वास था कि जिन स्थानोंपर शास्त्र और कलाओंकी चर्चा नहीं होती, वे स्थान मनहूस हैं। कला और साहित्य द्वारा ही व्यक्तिका व्यक्तित्व विकसित होता है। कलाकार विनीत और सभ्य तो होता ही है, पर सरस हृदय भी होता है। जब कलाकारकी साधना विकासकी ओर बढ़ती है, तो उसका चंचल चित्त केन्द्रित हो जाता है। जो आनन्द तपस्वीको अपनी साधनामें प्राप्त होता है, वही आनन्द कलाकारको कलाकी सिद्धिमें उपलब्ध होता है। ऋषभदेव इस नगरका प्रतिष्ठित और समृद्ध व्यापारी था। उसने व्यापार-व्यवसायमें पर्याप्त धनार्जन किया!

ऋषभदेवके आठ पुत्र हुए। कन्या न होनेसे उसके मनमें आन्तरिक दुःख था। उसने कन्या अभावकी चर्चा अपने मित्रोंसे की और कन्या-प्राप्तिका उपाय पूछा।

मित्रोंने शास्त्र और पुराणोंके प्रमाण देते हुए कहा—प्राचीन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालसे एक मान्यता चली आ रही है कि नदियोंकी उपासना करनेसे पुत्रोंका लाभ होता है। गंगा और यमुनाकी उपासनाका प्रचार पुराना है। साधनाकी पावनताका सम्बन्ध भी विश्वासपर अवलम्बित रहता है। जिस व्यक्तिका विश्वास जिस प्रकारका होता है, उसका फल भी वैसा ही उसे प्राप्त होता है। अतः यह निश्चित है कि शुभाशुभ कर्मफलकी प्राप्ति कर्मोदयके अनुसार होती है। साधनामें विश्वासका स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहता है।"

ऋषभदेवने यमुनाकी उपासना आरम्भ की। वह निराहार हो यमुनाके जलमें स्थित होकर पञ्चनमस्कार मन्त्रका जाप करता था। वह सर्वदा प्रभुभक्तिमें समय लगाता और विविध प्रकारके फल-पुष्पों द्वारा यमुनाका अर्चन करता। वह ज्ञानके प्रतीक दीपकको भी चढ़ाता तथा हाथ जोड़कर प्रतिदिन प्रार्थना करता कि कन्या-लाभ हो। कन्याके सम्बन्धमें उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ तुरन्त व्याप्त हो जातीं और वह उसके विवाहके सम्बन्धमें भी कल्पना कर लेता।

एक दिन ऋषभदेवकी उपासना मूर्तिमान रूपमें प्रकट हुई। उसकी पत्नीको एक सुन्दरी कन्याका लाभ हुआ। प्रकाशपुञ्जसे ऋषभदेवकी गोद भर गयी। उसने इस लक्ष्मीकी प्राप्ति होनेसे अपने भाग्यको सराहा। आज उसकी चिरकांक्षित अभिलाषाएँ सफल हुईं। उसने याचकोंको मुँहमाँगा दान दिया। सभीने सेठके भाग्यकी प्रशंसा की।

कन्याकी प्राप्ति यमुनाकी उपासनाके कारण हुई थी और वह कन्या यमुनाकी तरंगोंके समान चंचल एवं लावण्यवती थी। अतएव उसका सार्थक नाम तरंगवती रखा गया। माता इस अनुपम सुन्दरी कन्याको प्राप्त कर अपनेको कृतार्थ मान रही थी। अब उनके परिवारको धन-जनका सौख्य प्राप्त हो गया था। कन्या शनैः-शनैः वृद्धिगत होने लगी। उनका लालन-पालन भी सतर्कतापूर्वक किया जाने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब वह पाँच वर्षकी हुई तो उसका विद्यारम्भ संस्कार सम्पन्न किया गया। कुशाग्रबुद्धि होनेके कारण इसे गणित, लेखन, वाचन, गान, वीणावादन, रसायनशास्त्र, पुष्पावचय आदि कलाओंमें प्रवीणता प्राप्त हो गयी। ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन और व्याकरण जैसे शास्त्रोंका पाण्डित्य प्राप्त करनेमें भी उसे समय नहीं लगा।

एक दिन शरद् ऋतुके अवसरपर यह कन्या अपने अभिभावकों-के साथ वनविहारके लिए गई और वहाँ क्रीडा करते हुए एक हंसमिथुनको देखकर उसे अपने पूर्वभवका स्मरण हो आया। उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे यह हंसमिथुन कभी उसका साथी रहा हो। जिस प्रकारकी क्रीडाएँ यह हंसदम्पति कर रहा है, वैसी ही क्रीडाएँ कभी मैंने भी की हैं। वह सोचने लगी—

"अंगदेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस नगरीमें गंगा नदीके किनारे एक चकवा-चकवी रहते थे। एक दिन एक शिकारी आया। उसने जंगली हाथीको मारनेके लिए बाण चलाया, पर वह बाण भूलसे चकवाको लगा। चकवाकी मृत्यु देखकर चकवी बहुत दुःखी हुई और उसके वियोगमें छटपटाने लगी। वह कभी इस पेड़ पर जाती और कभी उस पेड़ पर। उसके मनको तनिक भी शान्ति प्राप्त नहीं थी। अपूर्व बेचैनी और विकलता थी।

शिकारीके मनमें भी अत्यधिक ग्लानि और पश्चात्ताप था। वह भीतर ही भीतर दुःखी हो रहा था और अपने पापी मनको धिक्कार रहा था। उसने लकड़ियाँ एकत्र कर उस मृत चकवेका दाह-संस्कार किया। प्रेम विह्वल चकवीने जब अपने साथी चकवेको जलते हुए देखा तो उससे रहा नहीं गया और वह भी प्रेमवश उसी चितामें जल मरी। उस चकवीका जीव हो मैं तरंगवतीके रूपमें उत्पन्न हुई हूँ।"

पूर्वभवकी इस घटनाके स्मरण आते ही उसके हृदयसे प्रेमका बीज अंकुरित हो गया और उसके मानसमें अपने प्रियसे मिलनेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीव्र उत्कण्ठा जागृत हो गयी। एक क्षण भी उसे अपने पूर्वभवके प्रियतमके बिना युगके समान प्रतीत होने लगा।

तरंगवतीका प्रेम श्रद्धामय था, वासनाजन्य नहीं। उसके प्रेममें स्वार्थ त्यागकी भावना समाहित थी। वह निश्छलभावसे आत्म-समर्पण कर सकती थी, देना जानती थी, लेना नहीं। नारीका विशुद्ध प्रेम उद्दीप्त लालसाका विकृतरूप नहीं होता उसमें सच्चा त्याग, संयम, आनंद और शान्ति सब कुछ समाहित रहती है। इस प्रकारका उच्च कोटिका प्रेम अधिकारका स्त्रोत होता है, वह शक्तिका उद्गम माना जाता है। यह वस्तुतः वह सीमेन्ट है जो दम्पतिको जीवन पर्यन्त स्नेह और साहचर्यमें जोड़े रहता है।

: ३ :

तरंगवती अपने पूर्वजन्मके पतिको प्राप्त करनेके लिए सचेष्ट रहने लगी। सर्वप्रथम उसने पात्रता प्राप्त करनेके लिए उपवास एवं आत्मचिन्तन द्वारा अपनी आत्माको शुद्ध किया। विशुद्ध आत्मा ही प्रेमकी उदात्त भूमिको प्राप्त कर सकती है। जो आत्मा पाप-कालुष्यसे अधिक कलंकित है, उसमें उदात्त प्रेमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। जीवन स्वयं छलना है, इसका गुणात्मक परिवर्तन किये बिना अभीष्टकी प्राप्ति सम्भव नहीं। प्रेमकी पीरका मनके ऊपर जितना गहरा आघात होता है, उतना अन्य किसी चोट या घावका नहीं। बाहरी घावके भरनेमें समय कुछ भले ही लग जाय, पर औषधोपचार सफल हो जाते हैं, किन्तु भीतरकी प्रेमकी चोट कभी भी अच्छी नहीं होती। उसका घाव सदा हरा बना रहता है। औषधोपचार भी व्यर्थ हो जाते हैं।

तरंगवती जितना अधिक सोचनेका प्रयास करती है, उसका मन उतना ही अशान्त होता जाता है। उसे प्रियके अभावमें न तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजन रुचिकर लगता है, न वस्त्राभूषण ही। उसकी स्थिति उस घायल हरिणीके समान है, जो अपने प्रियतमसे मिलनेके लिए छटपटाती हैं, पर असमर्थताके कारण उस तक नहीं पहुँच पाती।

प्रियकी प्राप्तिके लिए उसने कई प्रकारके प्रयास किये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। प्रियके वियोगके कारण उसका शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होने लगा। भोजनसे भी उसकी अरुचि हो गयी और उसे प्रत्येक सुख-भोगके पदार्थ निस्सार प्रतीत होने लगे। अब उसका ध्यान अपने पूर्वजन्मके प्रेमीमें ही लगा रहता था। वह उसीको प्राप्त करनेके लिए नाना प्रकारके मनसूबे बांधा करती, पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। उसके समस्त प्रयत्न बालूसे तेल निकालने या मरुभूमिमें कृषि उत्पन्न करनेके समान निष्फल हो रहे थे।

उसने अपने मनकी व्यथा अपनी अन्तरंग सखि सारसिकासे निवेदित की। सारसिकाने प्रिय प्राप्तिके लिए किये जाने वाले उपायोंमें पूर्वजन्मकी घटनाओंको स्मरण दिलानेवाले चित्रपटको सर्वाधिक उपयोगी बताया। फलतः तरंगवतीने एक ऐसा चित्रपट तैयार किया, जिसमें एक सरोवरके तटपर चकवा-चकवी आनन्द-पूर्वक विचरण करते हैं। शिकारीके बाणद्वारा चकवा मारा जाता है, शिकारी उसका दाह-संस्कार कर रहा है और चकवी भी उस जलती अग्निमें अपने प्राण दे देती है।

तरंगवतीने चित्रको सभी प्रकारसे सुन्दर और मनोज्ञ बनाया। उसकी तूलिकाके कौशलको देखकर बड़े-बड़े चित्रकार आश्चर्यमें पड़ जाते थे। सारसिकाने पूछा—"बहन! चित्र बनानेकी क्या प्रक्रिया है? किन-किन उपकरणोंसे आपने इतना सुन्दर चित्र बनाया है?"

तरंगवती—"वर्णोंका संयोजन चित्रकलाकी सफलताके लिए पहली बात है। रंगोंके पश्चात् दूसरा तत्त्वभाव प्रकटीकरणका है। जितने सजीव और आकर्षक ढंगसे भावोंकी अभिव्यंजना की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है, चित्र उतना ही सुन्दर और ग्राह्य बन जाता है। चित्रकार अंगप्रत्यंगको सुन्दर बनानेके लिए अपने मनके भावोंको जिसप्रकार यथार्थरूपमें चित्रित करता है, उसी प्रकारकी सफलता उसे प्राप्त होती हैं।"

"यहाँ यह स्मरणीय है कि रेखाओंसे भावोंके संचारमें विशेष सहायता प्राप्त होती है। खड़ी रेखा आशा, जीवन-उत्साह आदिका एवं पड़ी रेखा मृत्यु, नश्वरता, स्थिरता आदिका बोध कराती है। रेखाओंसे लय भी प्रदर्शित किये जाते हैं तथा इनसे रूप या आकृतिकी भी रचना होती है। रंगों द्वारा सौन्दर्य बोध उपस्थित करना भावपूर्ण चित्रोंके लिए आवश्यक है। इस चित्रमें रंगोंके औचित्यके साथ रेखांकनका विशेष ध्यान रखा गया है।"

सारसिका—"बहन ! तुमने इस कलाका अभ्यास कबसे किया है ? इस कलाका तुम्हारा गुरु कौन है ?"

तरंगवती—"जब मैंने आर्यिकाके निकट शिक्षा प्राप्त की, तब उन्होंने ही मुझे चित्रकलाका प्रयास कराया। माताजी संगीत, चित्र और काव्यकलाकी बड़ी पण्डिता थीं। उन्होंने इन कलाओंके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका भी निरूपण किया था।"

"विरहके समयको व्यतीत करनेके लिए चित्रकला बड़ा भारी सहारा है। जब चित्र-निर्माणमें मन रम जाता है, तो उस समय विरह-वेदनाको हम भूल जाते हैं। कई महीनोंसे मैं चित्र-रचना द्वारा ही अपने मनको बहलाती हूँ। अन्यथा यह विरहका पहाड़ तो मुझे अब तक चूर-चूर कर डालता। मनबहलावके जितने साधन हैं, उनमें चित्रकला और संगीतकला प्रमुख हैं। संगीत कलाके लिए आरंभिक उत्साह अपेक्षित है, पर चित्रकलाके लिए मनके संवेग ही प्रेरित करते हैं। जब हृदय किसी वेदनासे आच्छादित रहता है, तो संगीतके प्रति उसकी रुझान नहीं भी होती; किन्तु चित्र बनानेमें उपकरणोंका आधार वर्तमान रहता है, जिससे विरही भी अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन उसमें रमा सकता है। प्राचीन आख्यानोंसे सिद्ध है कि विरही नारियाँ नदी, सरोवर, पर्वत, पशु-पक्षी आदिके चित्र बनाकर अपनी विरह-वेदनाको हलका करती रहती थीं।"

सारसिका—'बहन ! तुम्हारे विचार बहुत सुलझे हुए हैं, पर विरहीको कलाओंसे सान्त्वना नहीं मिल सकती। मेरा अनुभव है कि कलाभ्याससे विरहकी वेदना और अधिक वृद्धिगत होती है।"

तरंगवती—"सखि ! बात तो तुम ठीक कह रही हो, पर जब तक आराध्यका संयोग नहीं होता, तब तक किसी प्रकार आशा बनाये रखनेके लिए उक्त उपकरणोंका आश्रय ग्रहण किया जाता है।

सारसिका उस चित्रपटको लेकर नगरके प्रमुख बाजारों, चौराहों और सड़कपर घूमने लगी, उसपर चित्रपटमें अंकित घटनाओंका सम्बन्ध जाननेवाला कोई नहीं मिला। कई युवक आते और चित्रपटके सौन्दर्यकी प्रशंसा कर चलते बनते। घटनाओंका विश्लेषण अथवा उस चित्रपटके दर्शन द्वारा किसी तरहकी प्रतिक्रिया अंकित हो सके, इस प्रकारका कोई व्यक्ति नहीं आया। हाँ, कुछ नवयुवकोंने अपने मनकी ऊट-पटांग व्याख्या करते हुए यह अवश्य कहा कि सम्भवतः यह चित्रपट किसी प्रेमिकाने अपने पूर्व जन्मके प्रेमीको प्राप्त करनेके लिए अंकित किया है।

एक दिन नगरमें कार्त्तिकी पूर्णिमाका महोत्सव सम्पन्न किया जा रहा था। नागरिक इस महोत्सवमें संलग्न थे। सारसिका चित्रपटको लिए हुए प्रमुख चौराहेपर खड़ी थी। सहस्रों आने-जानेवाले व्यक्ति उस चित्रको देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए आगे बढ़ जाते थे, किन्तु किसीके मनमें कोई विशेष प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं होती थी। कुछ समय पश्चात् धनदेव सेठका पुत्र पद्मदेव अपने मित्रों सहित उसी चौराहेपर आया। उस चित्रको देखते ही उसका हृदय प्रेम-विभोर हो गया और उसे अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वभवका स्मरण हो आया। पूर्वजन्मकी समस्त घटनाएँ साकार होने लगीं, एक-एककर सभी दृश्य उसे याद आने लगे। उसने अपने मित्रसे कहा—"मित्रवर, पता लगाइये कि इस चित्रको किसने बनाया है? इसको बनानेवाली कोइ युवती होनी चाहिए। मैं उस युवतीसे मिलनेके लिए अधीर हूँ।"

मित्रने सारसिकासे सारा वृत्तान्त अवगत किया और बतलाया—"इस चित्रको नगरसेठ ऋषभसेनकी पुत्री तरंगवतीने बनाया है। यह उसकी कुशल तूलिकाका फल है।"

पद्मदेवको अब निश्चय हो गया कि तरंगवती ही उसके पूर्वजन्मकी पत्नी है। इस प्रियतमाकी प्राप्तिके बिना जीवन अपूर्ण है। पूर्वजन्मके प्रेमी-प्रेमिका यदि वर्तमान जन्ममें पुनः मिल जायँ, तो उनका प्रेम घनीभूत हो जाता है। हाय 'मेरी चकवी कितनी सुन्दर और भावुक थी। मेरी मृत्युके पश्चात् उसने भी अपने प्राणों को अग्निमें समर्पित कर दिया।' अब तो मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता हूँ।

पद्मदेव बड़ी कठिनाईसे घर वापस आया और चारपाईपर पड़ गया। उसका मन न तो घरके कार्योंमें लगता और न दुकानके। वह दिन-रात चारपाईपर पड़ा हुआ गर्म-गर्म सासें लेता रहता। उसका शरीर भी विरह-वेदनाके कारण क्षीण हो रहा था। उन्मत्तता बढ़ती जा रही थी। अब माता-पिताको उसके प्राण संकटमें जान पड़ते थे। अतः पिताने उसके मित्रोंसे उसके मनोव्यथाको जानना चाहा। जब पिता धनदेवको यह ज्ञात हुआ कि पुत्र नगरसेठ ऋषभसेनकी कन्या तरंगवतीसे प्रेम करता है और उससे विवाह करनेके लिए कृतसंकल्प है, तो धनदेवको अपार कष्ट हुआ। वह सोचने लगा—"नगरसेठ और मुझमें आकाश-पाताल जैसा अन्तर है, उनकी मेरे साथ क्या तुलना। मेरा तो साहस भी नहीं होता कि मैं उनसे अपने पुत्रकी इच्छा व्यक्त करूँ। सम्बन्ध समान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वित्त, कुल और विद्यावालोंमें ही ठीक होता है।"

जब पद्मदेवकी अवस्था और अधिक खराब होने लगी और उसके प्राणधारणमें भी आशंका उत्पन्न हो गयी तो पिता धनदेवको विशेष चिन्ता हुई और उसने साहस एकत्र कर ऋषभदेवसे अपने पुत्रकी स्थितिका निवेदन किया।

ऋषभदेवने अपनी इस गुणी, रूपवती, विदुषी और प्राणप्रिय कन्याका विवाह धनदेवके पुत्र पद्मदेवके साथ करनेमें अपमानका अनुभव किया। वह सोचने लगा—"मैं नगरसेठ हूँ, मेरी कन्याका विवाह तो किसी बड़े सेठके पुत्रसे होना चाहिए। धनदेवकी क्या स्थिति है, जो वह छोटे मुँह बड़ी बात करता है। उससे अधिक सम्पन्न व्यक्ति तो मेरे यहाँ नौकर हैं।"

ऋषभदेवने धनदेवसे स्पष्ट कह दिया कि असम्भव बातके लिए दुराग्रह करना अनुचित है। बात सोचकर करनी चाहिए।

: ४ :

तरंगवतीको जब यह मालूम हुआ कि उसका पूर्वजन्मका प्रेमी इसी नगर निवासी सेठ धनदेवका पुत्र पद्मदेव है, तबसे उसकी विरहावस्था और बढ़ती जा रही है। उसके विरहका उन्माद बढ़ रहा था। सखी सरसिका उसे बराबर सान्त्वना देती, समझाती कि धैर्य रखो, एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम दोनोंका सम्बन्ध अवश्य होगा।

तरंगवतीको जब यह मालूम हुआ कि पिताने पद्मदेवके प्रस्तावको ठुकरा दिया है, तो उसके मनमें और अधिक निराशा हुई। उसका आशा-तन्तु टूटने लगा और अब उसे अपने जीवित रहनेकी आशा भी नहीं रही।

इधर पद्मदेवकी अवस्था और बिगड़ने लगी। प्रेमका उन्माद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था और उसे बेचैन बना रहा था। तरंगवतीको जब अपनी सखी द्वारा पद्मदेवकी इस अवस्थाका समाचार मिला, तो वह अत्यधिक चिन्तित हुई और अपने प्रेमीसे मिलनेका निश्चय किया। एक रातको वह अपने घरके सारे ऐश्वर्य और वैभवोंको छोड़ चल पड़ी अपने प्रियसे मिलनेके लिए।

मध्यरात्रिमें वह पद्मदेवसे मिली और दोनोंने निश्चय किया कि यहाँ रहकर हमारे प्रेमका निर्वाह नहीं हो सकता है। अतः नगर छोड़कर हम लोग बाहर चलें, तभी हमारा यह जन्मान्तरका प्रेम निभ सकेगा। उन दोनों प्रेमियोंने अपना नया जीवन आरम्भ करनेके लिए नगर त्याग कर दिया और वे चल पड़े वनकी ओर। घनान्धकार, चारों ओर सूनसान भयंकर अटवी, पर वे दोनों जीवन-साथी एकाकी मार्ग तय करते चले जा रहे थे। कहाँ जायँगे और क्या करेंगें, इसका कुछ भी निश्चय नहीं था। निरुद्देश्य प्रेम-पिपासाको शान्त करनेके लिए भटकते चले जा रहे थे।

प्रातःकाल एक घने जंगलमें पहुँचे। निर्जन प्रान्त, दूर-दूर तक बस्तीका नाम नहीं। झींगुरोंकी झंकार, लोमड़ियोंका हाँव-हाँव और पक्षियोंकी चहचहाटके अतिरिक्त वहाँ और कुछ भी सुनाई न पड़ता था। दोनों पथिक मार्गकी क्लान्तिके कारण थककर चूर हो गये थे, पर प्रेममिलनके कारण दोनों सन्तुष्ट थे। इस थकावटको वे प्रेमका उपहार मानते थे।

उन्होंने नीरवताको भंग करनेवाले एक झरनेकी कल-कल-छल-छलकी ध्वनि सुनी और उस ध्वनिका अनुकरण करते हुए वे झरनेके पास पहुँचे। आज उनके मनमें न किसीका भय था और न किसी प्रकारका आतंक। दोनों निर्द्वन्द्व थे, दो शरीर एक प्राण। उनकी चिराकांक्षा आज पूर्ण हुई थी, अतः हर्षातिरेकके कारण वे उन्मत्त जैसे थे। झरनेके मीठे जलको पीकर शान्तिका अनुभव किया और जंगली वृक्षोंके फल खाकर अपनी क्षुधा शान्त की। जब दिन ढल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया और सूर्यका सन्ताप कम हुआ, तो उन्होंने पुनः आगे बढ़नेका उपक्रम किया। वे दोनों पुनः चलने लगे। चलते-चलते वे सन्ध्या-कालमें एक भिल्लोंकी बस्तीके निकट पहुँचे। दोनोंने एक वृक्षके नीचे निश्चिन्त होकर पल्लवोंकी शय्या तैयार की, और वहाँकी सूखी पत्तियोंको जलाकर प्रकाश किया। सन्ध्या समय भी जंगली फलों द्वारा जीवनचर्याका निर्वाह किया।

बस्तीके मध्य कात्यायनी देवीका मन्दिर था। यह देवी भिल्लों द्वारा आराध्या और पूज्या थी। वे इस देवीकी विशेष पूजा कर अपनी मनोकामनाओंको पूर्ण करते रहते थे। भिल्लोंका पेशा लूट-पाट करना डाका डालना और जंगलसे लकड़ी या अन्य सामान लाकर बेचनेका था। इस पेशेकी सफलताके लिए वे देवीको प्रसन्न करते थे। एक दिन भिल्लराजने अपने साथियोंको आदेश दिया कि देवीकी विशेष पूजा होनी चाहिए। इस विशेष पूजामें नरबलिका आयोजन किया जाय।

उस भिल्लराजने अपने साथियोंको आदेश दिया कि नरबलिके लिए किसी सुन्दर, स्वस्थ और तरुण युवकको पकड़ कर लाया जाय। देवीको प्रसन्न करनेका उपाय नरबलिके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।

भिल्ल सैनिक योग्य पुरुषकी तलाश करते हुए वहाँ आये, जहाँ ये दोनों प्रेमी विश्राम कर रहे थे। पद्मदेवके सौन्दर्यको देखते ही उनके मनमें आशंका उत्पन्न हुई कि यह देव है या मनुष्य। ये दोनों अवश्य स्वर्गके देव-देवांगना हैं। यहाँ परिभ्रमणके लिए आये हैं। वनविहारके लिए यह स्थान है भी बहुत सुन्दर। अतः इनका यहाँ आना सार्थक है। हमें बलिदानके लिए पुरुषकी आवश्यकता है, देवकी नहीं।

जब उन्होंने पद्मदेव और तरंगवतीकी क्रियाएँ मनुष्योंके समान देखीं, तो उनके मनमें महान् आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे—"इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तिसे अधिक सुन्दर अन्य कोई व्यक्ति बलिदानके लिए प्राप्त नहीं हो सकता है। यह सुन्दर, तरुण, रूपवान् और गुणी है। लगता है कि भगवतीने स्वयं ही इसे यहाँ भेजा है। आज हमारी पूजा सार्थक हो जायगी। भगवती कात्यायनी प्रसन्न होकर हमारी समस्त मनोकामनाओंको पूर्ण करेंगी।"

बहुत देर तक वे रति और कामदेवके तुल्य इस जोड़ेका सौन्दर्य देखते रहे। इनके अवलोकनसे उनके मनको अपार सन्तोष प्राप्त होता था। सत्य है कि पुण्यात्माओंका दर्शन भी सुखप्रद होता है। जिसके दर्शनसे आनन्दकी प्राप्ति हो, वह निश्चितरूपसे पुण्यात्मा है। भिल्लसैनिकोंने आपसमें परामर्श किया—'इतने सुन्दर युवकको बलि हेतु पकड़ा जाय अथवा नहीं ?' उनका क्रूर हृदय भी विचलित होने लगा।

कोई अन्य युवक उन्हें बलिदानके लिए मिल न सका। विलम्ब होनेसे भिल्लराज असन्तुष्ट हो रहा था। उसने यह आदेश दिया कि मध्याह्नके पूर्व अभीष्ट युवकका यहाँ आ जाना आवश्यक है। पूजाके कार्यमें बिलम्ब करना उचित नहीं।

इस आज्ञाके कारण सैनिक त्रस्त थे, अतः उन्होंने निरुपाय हो नेत्रोंको आनन्दित करवाले पद्मदेवको पकड़ लिया और उसको बांधकर भिल्लराजके पास ले आये।

जब तरंगवतीने इस नयी विपत्तिको देखा तो उसका हृदय फूट पड़ा वह कलप-कलपकर रोने लगी। उसके इस करुण-क्रन्दनको सुननेवाले पेड़-पौधेके अतिरिक्त पशु-पक्षी भी थे। निर्जनमें सहायताकी कामना करना तो मरुभूमिमें जलकी कामना करनेके तुल्य था।

तरंगवतीके सिसकने, चीत्कार करने एवं उसके नेत्रोंसे निकलनेवाली आँसुओंकी धाराने पाषाण-शिलाओंको भी द्रवित कर दिया। पशु-पक्षी मौन होकर सहानुभूति प्रकट करने लगे। मनुष्य तो आखिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य है, उसमें हृदयका प्राधान्य रहता है। भले ही वह क्रूर कार्य करता हो, लूट-पाट करता हो, या प्राणियोंकी हत्यायें करता हो; किन्तु जब करुणाका अवसर आता है तो चोर-लुटेरे भी द्रवीभूत हो जाते हैं। उनका पाषाण हृदय भी पिघल जाता है और उनके मनमें भी दया ममता उत्पन्न हो जाती है।

एक सहायक चोरका मन द्रवीभूत होगया। उसने सर्वप्रथम भिल्लराजसे पद्मदेवको बन्धनमुक्त कर देनेका अनुरोध किया। जब भिल्लराजने इस प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया, तो उसने अपने अन्य साथियोंका दल संगठित कर भिल्लराजको युद्ध करनेके लिए ललकारा। आपसमें फूट पड़ते देखकर भिल्लराजने सहायक चोरकी बातोंको स्वीकार कर लिया और पद्मदेवको बन्धनमुक्त कर दिया।

पुण्यात्माओंको उचित सहाय्य प्राप्त हो जाता है। जब शुभोदय रहता है तो अनुकूल सामग्रियोंकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता। सहायक चोरने बन्धनमुक्त करनेके साथ उस दम्पतिको अटवीसे भी पार कर दिया। वे दोनों अनेक नगर और गावोंको पार करते हुए एक सुन्दर नगरीमें पहुँचे।

: ५ :

ऋषभदेव और उनकी पत्नी कन्याके चले जानेसे अत्यन्त चिन्तित हैं, उनका मन किसी कार्यमें नहीं लगता। रह-रहकर उन्हें अपनी पुत्रीकी याद सन्ताप दे रही है। आठ पुत्रोंके पश्चात् यमुनाकी उपासनासे किसी प्रकार कन्यारत्नकी प्राप्ति हुई। कन्या वयस्क भी हो गई, उसके लालन-पालनका सुख भी प्राप्त किया; किन्तु उसकी विवाह सम्बन्धी इच्छाको न समझनेके कारण आज हमारी यह दुर्गति हो रही है। बेटी तरंगवती धनदेवके पुत्र पद्मदेवको प्यार करती थी। आज दासीसे ज्ञात हुआ है कि पद्मदेवके साथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका पूर्वजन्मका सम्बन्ध है। उसने अपनी सखी द्वारा अपने पूर्वजन्मके प्रेमीका पता लगा लिया था। कन्या तरंगवती बड़ी ही गुणवती, सुशील और कलाकार है। वह चित्रनिर्माणमें भी अत्यन्त पटु है, इसी कारण उसने चित्रमें पूर्वभवावलीका अंकन कर चित्रपट बनाया और चित्रपटको नगरके प्रमुख चौराहेपर टँगवाया, अनेक युवकोंने वह चित्रपट देखा, पर पूर्वजन्मकी घटनाओंके संकेतको कोई नहीं समझ सका। उसने नगरके अतिरिक्त अनेक बड़े-बड़े नगरों और ग्रामोंमें भी दासियोंके हाथ चित्रपट भेजा, पर कहीं कुछ भी पता न चला। अन्तमें इसी नगरके साधारण सेठ धनदेवके पुत्र पद्मदेवको चित्रपट देखते ही अपनी पूर्वभवावली याद हो गयी और उसने भी प्रत्युत्तरमें एक अन्य चित्रपट तैयार किया, जिसमें पूर्वभवावलीको पुष्ट करनेवाली झटनाओंका अंकन किया गया था। इस प्रकार उन दोनोंको अपने पूर्वजन्मके सम्बन्धोंकी जानकारी हो गयी थी। वे इस बातसे सुपरिचित हो गये थे कि वे पूर्वजन्ममें भी दम्पति थे। अतः इस जन्ममें भी उनका विवाह होना चाहिए।

धनदेवसे तलाश करने पर ज्ञात हुआ कि तरंगवतीके बिना पद्मदेवका जीवित रहना शक्य नहीं था, इसी प्रकार तरंगवतीका भी धनदेवके बिना जीवित रहना असंभव था। उन दोनोंको यह निश्चय हो गया कि यहाँ रहते हुए, हमलोगोंका विवाह नहीं हो सकेगा। अतएव वे दोनों यहाँसे कहीं चले गये हैं। उनका पता लगाना आवश्यक है, बेटी तरंगवतीके बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। कितनी साधनाके बाद बेटीकी प्राप्ति हुई थी, हमने अपने वैभव और पदके अहंकारमें आकर अनर्थ कर डाला। यदि बेटी तरंगवतीकी प्राप्ति नहीं हुई, तो हम इस संसारमें जीवित नहीं रह सकेंगे। पता नहीं किस आधारमें प्राण अभी भी टिके हुए हैं। इन प्राणोंको शीघ्र ही इस शरीरसे निकल जाना चाहिए, अतः यह आन्तरिक व्यथा अब सही नहीं जाती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार ऋषभदेव और उसकी पत्नी विलख-विलखकर रोते रहे। उनकी आँखोंके सामने अन्धकार था। अब उन्हें कोई रास्ता दिखलाई नहीं पड़ता।

जब सेठ ऋषभदेवने अपना व्यापार व्यवसाय भी बन्द कर देना चाहा और समस्त कार्य-व्यापारोंसे अपनेको पृथक् कर लेना चाहा, तो उनके मुनीमको विशेष चिन्ता हुई। इधर सेठ ऋषभदेवके मन न लगानेसे कार्यव्यवसाय भी ठप्प होने लगा था। अतः एक दिन एकान्त स्थानमें जाकर मुनीमने सेठ ऋषभदेवसे अनुरोध किया—"स्वामिन्! आप इतने चिन्तित क्यों रहते हैं? आपके मन न लगनेके कारण व्यापारमें भी घाटा हो रहा है। कई स्थानों की गद्दियाँ फैल हो रही हैं, आपकी यह उपेक्षा परिवार, व्यवसाय, समाज, देश और राष्ट्रके लिए घातक हैं। जिन राष्ट्रीय कार्योंका सम्पादन आपके द्वारा हो रहा था, वे राष्ट्रीय कार्य भी अब बिगड़ते चले जा रहे हैं। कृपया अपने मनकी व्यथा बतलाइये, जिससे उसके दूर करनेका उपाय किया जा सके।"

ऋषभदेव—"मैंने सोचा कुछ था और हुआ कुछ। 'मेरे मन कछु और है, विधिके मन कछु और' की कहावत चरितार्थ हुई। मैं बेटी तरंगवतीका विवाह किसी नगरसेठके वैभवशाली पुत्रके साथ सम्पन्न कर निश्चिन्त होना चाहता था। इस नगरके धनदेवने अपने पुत्र पद्मदेवके लिए मेरी बेटीकी मँगनी की थी, पर मैं समान वैभव न होनेके कारण उसकी उक्त प्रार्थनाको स्वीकार न कर सका। मुझे यह पता नहीं था कि बेटी तरंगवती पद्मदेवसे प्यार करती है। प्रेमकी पीरसे पीड़ित हो चुकी है और उसके हृदयका घाव इस स्थितिको प्राप्त हो गया है कि वह पद्मदेवके स्नेहकी मलहमके बिना भर नहीं सकेगा।"

"मेरी मूर्खताके कारण वह घर छोड़कर न मालूम कहाँ चली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयी। आज वह जीवित भी होगी, या कहीं, उसने प्राण दे दिये होंगें। दिन-रात मेरा मन जलता रहता है। मैं जितनी सान्त्वना देनेकी चेष्टा करता हूँ, मन उतना ही व्याकुल होता जाता है। मेरा क्षुद्र वैभव उसके अकलुष प्रेमकी स्रोतस्विनीमें बह गया। मेरा वैभवका अहंकार उसकी दृढ़ताकी चट्टानसे चकनाचूर हो गया।"

मुनीम—"स्वामिन् ! आप धैर्य धारण कीजिए। मैं देश-विदेश, ग्राम-नगर, वन-अरण्य सर्वत्र चरोंको भेजकर कुमारीकी तलाश करता हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कुमारीको पन्द्रह दिनोंके भीतर यहाँ ले आया जायगा।"

आँधी-वर्षाकी रुद्र, प्रलयंकारी रातोंमें भी दूत दौड़ते-भागते चले जा रहे हैं। कई दिनों तक लगातार घोड़ोंकी पीठपर चलकर वे योजनों पृथ्वी रौंद आये, महा विजनोंकी खाक छान आये। जहाँ कभी मानवपुत्र शायद ही गया हो, ऐसे दुर्गम स्थानोंमें घूम आये, पर कुमारी तरंगवतीका पता न चला। उन्होंने अलंघ्यको लाँघा, दुर्निवारको हठपूर्वक पार किया, आकाशकी अनन्त नीलिमाको चीरा, पर निराशा ही हाथ लगी।

कुलमाष नामक दूत घोड़ेपर तीरके वेगके समान चला जा रहा था। उसे स्वयं नहीं मालूम कि अबतक कितने वन-नगरोंको वह पार कर चुका है। वह कहाँसे कहाँ आ गया है, और अभी उसे कितना मार्ग और चलना है। जब वह गजपुरमें पहुँचा, तो उसे वहाँ विचित्र दृश्य दिखलायी पड़ा। उसने देखा कि एक वृक्षके नीचे एक युगल सोया हुआ है। इस युगलके शरीरसे तेज निकल रहा है तथा इसकी रक्षा नाग-नागिनी कर रहे हैं। कुलमाषको इस विचित्र दृश्यको देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। चोर-डकैत या अन्य किसी भी घातक प्राणीमें इतना साहस नहीं था कि कोई भी उस युगलके पास तक पहुँच सके। रक्षक नाग-नागिनीके शरीरसे विष-ज्वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निकल रही थी, वे दोनों सतर्क होकर उस युगलका पहरा दे रहे थे। अभी एक पहर रात्रि अवशिष्ट थी। अतः उसने अपने घोड़ेको रोका और उस युगलके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगा। नाग-नागिनी के भयसे वह भी उन तक नहीं पहुँच पाया। दूर ही एक अन्य वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करने लगा।

जब उषाकाल आया, लालिमा सर्वत्र व्याप्त हो गई, तो वह युगल अगड़ाइयाँ लेता हुआ उठा। नाग-नागिनी उसके निकट पहुँचे और नतमस्तक हो, पहाड़ी मार्गकी ओर चले गये। कुलमाषकी दृष्टि जब तरंगवतीपर पड़ी तो उसकी प्रसन्नताका पारावार न रहा। वह हर्षविभोर हो गया और अँधमुदी आँखोंसे उसकी ओर देखता रहा। वह स्तब्ध था, समझ नहीं पा रहा था कि क्या करें।

साहस एकत्र कर युगलके निकट पहुँचा और विनीत स्वरमें कहने लगा—"कुमार पद्मदेव, जिस दिनसे आपलोग कौशाम्बीसे चले आये हैं, उसी दिनसे कौशाम्बीकी श्री लुप्त होने लगी है। ऋषभदेव बेटी तरंगवतीके अभावमें छिन्न लताके समान हैं। उनके नेत्रोंके आँसू कभी सूख नहीं पाते। धनदेवकी अवस्था भी उसी प्रकारकी है। अब ऋषभदेवने यह निश्चय कर लिया है कि तरंगवतीका विवाह वे तुम्हारे साथ प्रसन्नतापूर्वक करनेको तैयार हैं। कृपया अब आप लोग शीघ्र ही मेरे साथ चलिए, जिससे कौशाम्बी अपना खोया हुआ वैभव पुनः प्राप्त कर सके।"

आज कौशाम्बीका सौन्दर्य चरमसीमा पर है। नगरीको पूर्णतया सज्जित किया गया है। चारों ओर ध्वज, बन्दनवार लगाये गये हैं। पुष्पमालाएँ चारों ओर लटक रही हैं। चंदन, कुंकुमसे छिड़काव किया गया है। आज सेठ ऋभदेवकी चिराभिलषित मनोकामना पूर्ण होने जा रही है। वे अपनी पुत्रीका कन्यादान कर कई ऋणोंसे उऋण हो जायँगे। आज उनके मनमें अपार हर्ष है। उनका संवेदनशील हृदय पिघल रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंखध्वनि हुई, तूर्य भेरी आदि वाद्य बज उठे। मंगलाचार किया गया, प्रतिहारियोंको दान-मान-सम्मानसे सन्तुष्ट किया गया। तरंगवतीके सुकुमार हाँथोंको अनेक आशीर्वादोंके साथ कुमार पद्म-देवने अपने हाँथोंमें ले लिया है। पाणिग्रहणकी सभी क्रियायें सम्पन्न की जा रही हैं। सर्वत्र हर्षके झरने फूट रहे हैं। तरंगवतीका विधि-वत् ग्रहण राग-ममकारके संयोगका उद्घोष कर रहा है।

: ६ :

प्रकृतिके अणु-अणुमें नवचेतना व्याप्त है। सहस्रदल कमल विकसित हो रहे हैं। पुष्पोंका सौरभ और सुषमा जनमानसको आत्मविभोर बना रहे हैं। सौन्दर्यका विराटतम रूप व्याप्त है। कोकिलकी मधुर कूज और आम्रमंजरीकी मीठी गन्ध किसे अपनी ओर नहीं खींचती। इस मोहक वसंतने सभी नवदम्पतियोंका मन चुरा लिया है। पद्मदेव भी अपनी पत्नी तरंगवतीके साथ वनविहार के लिए चल दिया। ये दम्पति केलिसरोवरमें केलि करने लगे। वीणा, मृदंग, मंजीर और नूपुरोंकी स्वरावलियोंपर झरनोंकी लहरों-का संगीत उतरने लगा। अन्तरके कितने ही लोक एक साथ जाग उठे। वायुके तरंगोंसे भी तन्वंगी बालाएँ संगीतके तालोंपर नृत्य कर वासनाके वैभवका आनन्द ले रही थीं। उनके अर्धनिमीलित नयन एवं रूप-लावण्यकी देहयष्टि विरागियोंके मनमें भी रागभाव उत्पन्न कर रही थी। नृत्यकी भावभंगिमाएँ और संगीतकी मूर्छनाएँ विभोर बना रही थीं। लीला-कमलोंको हाँथमें लिए हुए तरंगवती भी सक्रियताका परिचय दे रही थी।

जब आमोद-प्रमोद समाप्त हुआ, तो वे दोनों दम्पति प्रकृति वैभवके दर्शनार्थं परिभ्रमण कर रहे थे। आगे बढ़नेपर उन्हें एक ध्यानस्थ मुनिराज मिले। मुनिराजकी सौम्य मुद्रा देखते ही अपूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने निकट जाकर 'नमोस्तु' किया। कुछ क्षणों तक मुनिराजका उपदेश श्रवण करनेके उपरान्त तरंगवतीने पूछा—"प्रभो! आपने इस अल्पवयमें क्यों दीक्षा धारण की है। आप विचारशील युवक हैं, रूप-सौन्दर्य भी अद्‌भुत प्राप्त किया है। अतः मेरी जिज्ञासा शान्त करनेकी कृपा कीजिए।"

मुनिराज—"वत्से! मेरी जीवन-कथा लम्बी है, मृत्यु किसीको नहीं देखती, उसकी दृष्टिमें रूप-कुरूप, ज्ञानी-अज्ञानी, पंडित-अपंडित, धनी-निर्धन, युवा-वृद्ध सभी समान हैं। अतः आत्महित साधनके लिए जितनी जल्दी प्रयास किया जा सके, श्रेयस्कर है।"

"जीवन ओसकणके समान अस्थिर है, संसारके भोग देखते-देखते विलीन होनेवाले हैं। शरीर, धरा और भोग विद्युतके समान चंचल हैं। अतः आत्मोत्थानमें संलग्न होनेके लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।"

पद्मदेव और तरंगवती मुनिराजके इस आख्यानसे प्रभावित हुए। उनके नेत्रोंके समक्ष चकवा-चकवीका जीवन अंकित हो गया। धर्मकी जिस साधनाके प्रभावसे तिर्यंच मनुष्य बन सकता है, उस साधनासे जन्म-जरा-मरणसे छुटकारा भी प्राप्त हो सकता है। अतएव इस मानव-जीवनकी सार्थकता आत्मशोधनमें है। जब तक तपश्चर्या नहीं की जायगी, तब तक कर्मकालिमा नहीं छूट सकती है।

दोनोंने व्रत ग्रहण कर लिए। तरंगवती सुव्रता नामकी आर्यिका बन गयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराम शोभा

धन-धान्यसे परिपूर्ण कुशार्त नामक देशमें 'बलासग' नामका गाँव है। यह गाँव जिस प्रदेशमें स्थित है, उसके चारों ओर चार-चार कोश तक वृक्षलताओंका नामोनिशान भी नहीं है। वर्षा ऋतुके आनेपर भी उस भूमिमें घासके अतिरिक्त अन्य पेड़-पौधे उगते ही नहीं। प्रकृतिकी इस विचित्रताको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों किसी ऋषि-मुनिके अभिशापके कारण ही इस गाँवकी यह स्थिति हो गयी है। वहाँ रसालकी शोभा बढ़ानेवाला कोकिलकंठ भी सुनायी नहीं पड़ता था और न मयूर अपनी मनोहर-कलाका प्रदर्शन ही करता था। यद्यपि जलपूरित कूप, तडाग वापिकाएँ यत्र-तत्र शोभित थीं, पर प्रकृति प्रकोपके कारण उद्यान, वाटिका और उपवनोंका अभाव प्रत्येक प्रकृति-प्रेमीको खटकता था। प्रकृतिकी यह विचित्रलीला प्रत्येक पथिकके मनमें टीस उत्पन्न करती थी। निरस्तपादप गाँव कभी हरा-भरा हो सकेगा, इसकी कभी किसीने कल्पना भी नहीं की थी। कृषकवर्गने भूमिको उर्वर कर उपजाऊ तो बना लिया था, पर प्रयत्न करनेपर भी पेड़-पौधे उत्पन्न नहीं हो सके थे।

इसी गाँवमें वेद-वेदांगमें पारंगत अग्निशर्मा नामका ब्राह्मण निवास करता था। वह अध्ययन-अध्यापनमें रत और सात्त्विक-रूपमें आजीविका सम्पन्न करता था। कला, साहित्य और काव्यका प्रेमी था। इसकी अग्निशिखा नामकी पत्नी थी। यह शीलवती और पतिव्रताओंमें अग्रगण्य थी। कम शिक्षित होनेपर भी पतिके कार्योंमें निरन्तर सहयोग देती रहती थी। सेवा, त्याग और अतिथि-सत्कारमें अत्यन्त प्रवीण थी। अग्निशर्मा गाँवका ही आचार्य नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था, बल्कि उसके अन्तेवासी दूर-दूरके व्यक्ति भी थे। उसका अभिमत था—

"यदि कला, साहित्य, काव्य और दर्शनकी सरिता पृथ्वीपर प्रवाहित न हो, तो पृथ्वी असुरोंका अखाड़ा बन जाय। मानवताका प्रचार कला-काव्य और दर्शन द्वारा ही होता है। जीवनके सामान्य सिद्धान्त भी मानवताकी प्रतिष्ठा करानेमें सहायक होते हैं। जिस गाँव या नगरमें वाङ्मयकी चर्चा नहीं होती, वह नगर या गाँव श्मशानभूमिके तुल्य है। जिस समय शान्तिका साम्राज्य व्याप्त रहे, उस समय ललित कलाओंकी चर्चा न करना ही, अमानवता है। हाँ, युद्धके समय तीर, तरकस और तलवारोंकी आवश्यकता होती है। ऐसे समयमें राष्ट्रीयता और देश-प्रेमको उभाड़नेवाले गीत गाना, शस्त्रकलाकी शिक्षा प्राप्त कर लोहेके चने चबाना भी मानवतामें परिगणित है।"

कभी-कभी अग्निशर्मा और अग्निशिखामें समाजव्यवस्थाको लेकर विवाद खड़ा हो जाता था। दोनों ही अपना-अपना पक्ष स्थापित करते थे। अग्निशर्मा रुढ़िवादी था और प्राचीन मान्यताओं की दुहाई देकर सम्भ्रान्त समाजके गठनको ही महत्त्व देता था, पर अग्निशिखा क्रान्तिकारी विचारोंको उपस्थित कर सर्वोदयकी चर्चा करती थी। वर्गभेद और जातिभेदकी दीवालको तोड़कर अपरिग्रह द्वारा समाजमें समत्वकी स्थापनाका महत्त्व प्रतिपादित करती थी। अग्निशिखाके तर्कोंका उत्तर अग्निशर्मा नहीं दे पाता था, अतः अन्तमें गृहपतित्वकी सत्ताका प्रयोग कर अपनी बात रख लेता था।

ये ब्राह्मण दम्पति निर्धन होनेपर भी सुखी और प्रतिष्ठित थे। अग्निशिखाने अपनी सेवा द्वारा छोटी-सी गृहस्थीको स्वर्ग बना दिया था। धनाभाव कभी खटका नहीं। आवश्यकताकी सभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुएँ कार्यकुशलताके कारण प्राप्त हो जाती थी। ब्राह्मणोचित आजीविका संवहन करनेसे अर्थ तो नहीं, पर यशकी प्राप्ति अवश्य होती थी। यह छोटा-सा परिवार गाँवमें आदर्श परिवार माना जाता था। अग्निशर्माका विवाह हुए कई वर्ष बीत गये थे, किन्तु अभी तक सन्तानलाभ नहीं हुआ था। विद्याव्यसनी इस परिवारको सन्तानाभाव खटकता नहीं था। शास्त्रचर्चा और समाजचर्चामें समय बीतता चला जा रहा था।

एकाएक अग्निशर्माको सूचना प्राप्त हुई कि अग्निशिखा गर्भवती है। उसने अपनी पत्नीकी दोहदपूर्तिका पूरा प्रयत्न किया। अग्निशिखा शास्त्रचर्चाके साथ देवालयोंके दर्शन-पूजन करना चाहती थी। धार्मिक स्थानोंके अवलोकन द्वारा अपनी आत्माको पावन बनाना चाहती थी। अतएव अग्निशर्माने अपने शक्ति-अनुसार पत्नीकी आन्तरिक इच्छाको पूर्ण करनेका प्रयास किया।

समय पाकर अग्निशिखाने कन्यारत्नको जन्म दिया। यह कन्या अत्यन्त तेजस्विनी, रूपवती और भविष्णु थी। माता-पिता कन्याको प्राप्तकर निहाल हो उठे और अपने भाग्यको सराहने लगे। विद्युतके समान उसके शरीरसे प्रभा निःसृत होती थी, अतएव माता-पिताने उसका सार्थक नाम—विद्युत्प्रभा रखा।

विद्युत्प्रभाके सुन्दर और चंचल नेत्रोंके सम्मुख नीलकमल भी किंकर प्रतीत होता था। उसके मुखकी कान्तिके समक्ष पूर्णिमाका चन्द्रमा भी प्रभाहीन मालूम पड़ता था और उसकी नाक शुकपक्षीकी नोकके समान नुकीली और सीधी थी। उसके अंग-अंगसे सौन्दर्यकी रश्मियाँ प्रकट हो रही थीं। अप्सराएँ और नागकन्याएँ भी उसके रूप-सौन्दर्यकी समकक्षता प्राप्त करनेमें असमर्थ थीं।

अग्निशिखा पुत्रीके अनुपम सौन्दर्यको देखकर कृत-कृत्य हो जाती थी। वह पड़ोसकी नारियोंसे गर्वपूर्वक कहती—"मेरी विद्युत्को जैसा रूप प्राप्त हुआ है, वैसा स्वर्गकी देवकन्याओंको भी प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होता। पुत्र नहीं होनेका मुझे तनिक भी अफसोस नहीं है, क्योंकि मेरी यह बेटी मेरे कुलका नाम उज्ज्वल करेगी। जहाँ जायगी वहीं सम्मान और गौरव प्राप्त होगा। ऐसा रूप भाग्यसे ही मिलता है। लगता है कि पूर्वजन्ममें हमलोगोंने अतिशय पुण्यके कार्य किये थे, इसी कारण ऐसी सुन्दर कन्या प्राप्त हुई है। जो देखता है, वह देखता ही रह जाता है।"

पड़ोसकी नारियाँ भी उसके सौभाग्यकी प्रशंसा करती थीं। वे भी विद्युत्प्रभाके रूप-सौन्दर्य और गुणोंकी प्रशंसा करती हुई नहीं अघाती थीं।

शनैः शनैः विद्युत्प्रभा वृद्धिगत होने लगी। पालना छोड़ भूमि-पर घुटनोंके बल चलने लगी। अनन्तर स्थिरतापूर्वक चलना प्रारम्भ किया। माता-पिताने पाँच वर्षकी अवस्थामें लिपिग्रहण संस्कार प्रारम्भ किया। माताकी गोदमें वह शिक्षित होने लगी। माता कहा करती थी कि मेरी पुत्री राज-रानी बनेगी। इसका चौड़ा भाल ही सौभाग्यकी सूचना दे रहा है।

कभी-कभी बिटियाके भविष्यकी कल्पनाको लेकर दम्पतिमें कुछ कहासुनी भी हो जाती थी। यह सार्वजनीन सत्य है कि प्रेममें कुछ मान भी होता है, कुछ महत्त्व भी। श्रद्धा अपनेको मिटा डालती है और अपने मिट जानेको ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार चाहता है और जब पति-पत्नीके बीच श्रद्धा और प्रेमका द्वन्द्व आरम्भ होता है तो प्रेम ही अहम्मन्यताके पर्वतशिखरपर आरूढ़ हो जाता है। पत्नी रूठ जाती है, मचलती है और छोड़ती है गर्म-गर्म उच्छ्वास। पतिको पत्नीकी यह स्थिति अखरती है और वह मान मनाता है। यह दाम्पत्य-जीवनका सार है, यही रहस्य है और यही है अनेक ग्रन्थोंका संक्षिप्तीकरण। अग्निशर्माको भी इस गृह-युद्धमें केवल पराजय ही नहीं स्वीकार करना पड़ता, बल्कि सिसकती हुई पत्नीको मनाना भी पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवनका यह आनन्दस्रोत अहर्निश बढ़ता जा रहा था। विद्युत्प्रभा अब आठ वर्षकी होने जा रही थी। घरकी इकलौती पुत्री माता-पिताकी आँखोंकी ही पुतली नहीं थी, किन्तु समस्त 'बलासग' निवासियोंकी दुलारी थी। सभी कन्याके गुणोंपर मुग्ध थे। एक वार भी जिसने इस कन्यारत्नका दर्शन कर लिया, वही उसका प्रशंसक वन गया।

समय एक-सा नहीं रहता। इस परिवर्तनक्रममें जो आज सौभाग्यशाली है, कल ही वह दुर्भाग्यशाली बन जाता है। जिसे लोग अत्यधिक प्यार करते हैं, उसीसे घृणा करते हुए दिखलायी पड़ते हैं। जहाँ प्रशंसा सुनायी पड़ती है, वहीं निंदा कर्णगोचर होने लगती है। जीवन-दर्शन बदलते विलम्ब नहीं होता। अतः परिवर्तन स्वभाव है, विभाव नहीं। जीवनके पश्चात् मृत्यु न आवे, तो जीवनका मूल्य समझनेमें कठिनाई हो। जीवन इसलिए सुखकर है कि इसका अवसान होनेवाला है। वस्तुका अन्त ही उसका महत्त्व प्रतिष्ठित करता है। एकरूपता जड़ता है, नीरसता है और है प्रगतिकी बाधक।

विद्युत्प्रभाने जैसे ही आठवाँ वसन्त पूरा किया कि उसकी माँ अग्निशिखा बीमार पड़ी। अग्निशर्माने पत्नीके रोगका पूर्णतया उपचार किया, किन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ। वही कहावत चरितार्थ हुई कि जैसे-जैसे चिकित्सा की गई, वैसे-वैसे रोग भी बढ़ता गया। विधिका विधान कुछ ऐसा दिखलायी पड़ रहा था जिसका यथार्थ चित्रण करनेमें बड़े-बड़े लेखकोंकी लेखनीकी गति भी अवरुद्ध हो जाती है, चिन्तकोंकी वाणी मूक हो जाती है और दार्शनिकोंके सिद्धान्त अधूरे या बौने दिखलायी पड़ने लगते हैं। आज अग्निशर्माका घर भी अदृष्टकी काली छायासे व्याप्त था। घरके अणु-अणुसे एक नया संकेत प्राप्त हो रहा था।

एक दिन मध्याह्न कालमें अग्निशिखाका भयानक रोग अत्यधिक उग्र हो गया। वैद्योंके औषधोपचार वीर्यहीन सिद्ध होने लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अग्निशर्माका प्रेम नपुंसक बन गया। मृत्युके आगमनके पूर्व घटित होनेवाला मनहूस वातावरण दृष्टिगोचर होने लगा। अग्निशिखाकी धमनियोंमें प्रवाहित होनेवाला रक्तका उष्ण प्रवाह शनैः शनैः ठंडा पड़ने लगा। नाड़ीकी गति मन्द पड़ गयी और ऊर्ध्व श्वांस चलने लगा। कुछ क्षणों तक अग्निशिखा मृत्युसे युद्ध करती रही, पर अन्तमें उसने चिरन्तन सत्यका वरण कर लिया। उसकी आकृति भयंकर हो गयी, रक्तप्रवाह स्तम्भित हो गया और शरीर ठंडा पड़ गया।

: २ :

विद्युत्प्रभाके भाग्यने करवट बदली। मातृहीना वह श्रीहीन दिखलायी पड़ने लगी। घर-गृहस्थीका कोई देखनेवाला न रहा। फूल-सी सुकुमार विद्युत्प्रभाको बरबस सँभालना पड़ा। वह उषाकालमें जागती और रात्रिके द्वितीय प्रहरमें शयन करती। गोदोहन, घरकी सफाई-स्वच्छता, भोजन बनाना, पानी भरना, पिताके पूजोपकरणोंको ठीक करना, गोचारण एवं सन्ध्या वेलाकी क्रियाएँ भी उसे ही ठीक करनी पड़तीं। घरके कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण विद्युत्प्रभाकी प्रतिभा क्षीण होने लगी। कविता लिखना, वाङ्मयकी चर्चा करना एवं कलागोष्ठीमें सम्मिलित होना भी उसने बन्द कर दिया।

पत्नीकी मृत्युके अनन्तर अग्निशर्माका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो गया। अब उसमें गृहस्थीसे जूझनेकी क्षमता नहीं रही। उसे अब जीवनमें ममत्व और अपनत्व कहीं नहीं दिखलायी पड़ते। अग्निशिखा मरकर भी उसके जीवनका केन्द्र बनी हुई थी। उसका रिक्त मन कहीं आश्रयकी तलाश कर रहा था। वह उस परकटे पक्षीके समान था, जो जालमें फँसा हुआ उड़कर भागनेके लिए जोर लगाता है, पर उसकी शक्ति व्यर्थ सिद्ध होती है। उसे विद्युत्प्रभा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर दया आती है, वह सोचता है कि फूल-सी कोमल इस कन्यासे घरका कठोर कार्य कराना इसके साथ अन्याय है। जिसे मैंने तूलका गोला समझा था, वह इतना भारी हो जायगा, इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। मेरा प्रकाश इतना जल्दी अन्धकारमें परिवर्तित हो जायगा, इसको कभी सोचा भी नहीं था।

एकाएक उसके मनमें प्रकाशकी लम्बी रेखा दौड़ गयी। उसे अनुभव हुआ, जैसे उसे कहीं नीड मिल गया हो। उसने अपने मन-का समाधान करते हुए कहा—"सारा आचार-विचार परिस्थितियों के अधीन है। मैं दूसरा विवाह करना पाप मानता हूँ, पर क्या मेरी वर्तमान स्थितिमें इस पापको करना पुण्य नहीं होगा। सुकुमार बिटियाके जीवनका अपव्यय अब मुझसे नहीं देखा जाता। आखिर बेटी भी कबतक घर सँभालेगी, वह तो पराये घरकी सम्पत्ति है। यह सत्य है कि कर्म और वचनमें सामंजस्य होना चाहिए। मैं कहता रहता हूँ कि पत्नीकी मृत्युके पश्चात् पुनर्विवाह करना व्यभिचार है, जीवनका कलंक है, पाप है। पर क्या मैं स्वयं दृढ़ रह सकूँगा। मुझे कोई न कोई आश्रय ढूँढ़ना होगा।"

विद्युत्प्रभा—"पिताजी! आप चिन्तित क्यों हैं? माँकी मृत्यु-के बाद भी तो मैं आपकी सारी पूजा-सामग्री ठीक कर देती हूँ; पर मैं देखती हूँ कि आपका मन पूजामें नहीं लगता। आप पूजा करना छोड़कर कुछ सोचते रहते हैं और घण्टों एक ही मुद्रामें बैठे रह जाते हैं। आज हमारे पड़ोसमें धनदत्त चाचाका दूसरा विवाह हो रहा है। नयी चाची आयेंगी और जगतू भैयाको खूब प्यार करेंगीं। काश, आप भी मेरे लिये नयी माँ ले आवें तो हमारा घर पुनः श्रीवृद्धिको प्राप्त कर ले। रूठी हुई लक्ष्मी और क्रुद्ध हुई सर-स्वती पुनः हमारे यहाँ प्रतिष्ठित हो जायँ।"

अग्निशर्मा—"बेटी! तुम्हारे कहनेमें तथ्य अवश्य है, पर मैं सदासे सुधारक रहा हूँ। जिस प्रकार नारी पतिकी मृत्युके पश्चात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना पुनर्विवाह नहीं करती, उसी प्रकार पुरुषको भी पत्नीकी मृत्युके पश्चात् दूसरा विवाह नहीं करना चाहिए। मैं अपने इन विचारोंकी हत्या किस प्रकार करूँ, यह मेरी समझमें नहीं आ रहा है।"

विद्युत्प्रभा—तात! हमारे चाचा धनदत्त भी तो यही कहा करते थे। अभी चार-पाँच दिन पहले उन्होंने ब्राह्मण सभाके अधिवेशनके अवसरपर अपने विचारोंको उक्त रूपमें व्यक्त किया था। चाचीको स्वर्गवासी हुए अभी एक महीना हुआ है, उन्होंने दूसरा विवाह करनेका विचार कर लिया है। कल-परसों नयी चाची आ जायगी और जगतू भैयाको प्यार करने लगेगी। मेरे अच्छे पिताजी! आप भी मेरे लिये नयी माँका प्रबन्ध कर दीजिए। मैं अपनी इस माँके साथ अब गुड़िया नहीं खेलूँगी। कला और शास्त्र चर्चा किया करूँगी। मैं माँकी सेवा करूँगी, उसके पैर दबाऊँगी! यदि नयी माँ मुझे प्यार नहीं करेंगी, तो मैं रूठ जाऊँगी और गाएँ चराने चली जाऊँगी। बतलाइये, मेरे पिताजी आपका क्या विचार है?"

अग्निशर्मा मनमें कुछ गुनगुनाने लगा। उसकी विचारधारा आकाशका अतिक्रमण कर अलोकाकाश तक पहुँच गयी। मानसिक द्वन्द्वने उसे चूर-चूर कर दिया। वह सोचने लगा—पुनर्विवाहसे क्या शान्ति मिल सकेगी? मेरी विद्युत्प्रभाको नयी माँ प्यार दे सकेगी। कहीं ऐसा न हो कि मेरा रहा-सहा जीवन भी नारकी बन जाय। क्या मानव-जीवनकी सार्थकता रमणीके भुजपाशमें बँधे रहनेमें ही है। जीवनका अन्य कोई उपयोग ही नहीं। जिन अनेक ऋणोंके भारको लेकर मानव जन्म ग्रहण करता है, उनमें देश और राष्ट्रका ऋण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस ऋणको चुकानेके लिए त्याग, संयम और सेवाकी आवश्यकता है। विवाह मेरे संकल्पमें बाधक होगा। मैं अपनी जिस इकलौती पुत्रीकी प्रसन्नताके लिए विवाह करनेका विचार कर रहा हूँ, यदि वह प्रसन्न न हो सकी, तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो मेरे लिए यह विवाह और अभिशाप बन जायगा। मैंने एकान्तमें बैठकर जीवनके सम्बन्धमें बहुत विचार किया, पर किसी निष्कर्षपर नहीं पहुँच सका हूँ। अब मैं कबतक अग्निशिखाके नामपर आँसू बहाता रहूँगा। कायरता छोड़, अब जीवन-संग्राममें आगे बढ़ना ही होगा।

अग्निशर्माका विवाह पार्श्ववर्ती गाँवकी एक ब्राह्मण कन्यासे निश्चित हो गया। इस कन्याका नाम विषलता था। जब विषलता विवाहित होकर 'बलासग' में आई तो सर्वप्रथम उसने समस्त वस्तुओंकी गणना की। उसने विद्युत्प्रभासे स्पष्ट कह दिया कि यह घर तुम्हारा नहीं है, तुम्हारा दूसरा घर है, जहाँ जाकर तुम गृह-स्वामिनी बनोगी। यहाँ तो तुमको दासीके समान घरका कार्य करते हुए रहना पड़ेगा।

अग्निशर्माकी यह पत्नी विलासिनी, प्रमादी और कुटिल स्वभाव-की थी। सारा दिन उसका साज-सज्जामें व्यतीत होता। स्नान, विलेपन, आभूषण आदिके ग्रहण और उपादानमें ही समय निकल जाता था। घर-गृहस्थीके कार्योंमें उसका मन नहीं लगता। वह विद्युत्प्रभासे समस्त कार्योंको कराती और उसे रूखा-सूखा निकृष्ट आहार देती। विमाताका ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार उसे अत्यन्त अरुचिकर प्रतीत होता था। वह सोचती थी—"पिताने यह विवाह इसलिए किया था कि हमारा घर पुनः स्वर्ग बन जायगा। घरकी रूठो हुई लक्ष्मी पुनः लौट आयेगी, पर यहाँ तो घटना कुछ और ही घटित हुई। पूज्य पिताजी भी नयी माँसे डरते हैं, वे एक भो शब्द उससे नहीं कह सकते हैं।"

"माँका स्वभाव बहुत ही उग्र है, न मालूम वह मुझसे क्यों नाराज रहती हैं। मैं तो सदा उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती हूँ, पर वह कभी मुझसे सीधे मुँह बातें भी नहीं करतीं। मेरा पढ़ना-लिखना बन्द हो गया, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, चिन्ता इस बातकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि इतना करनेपर भी हमारा सुख-सौभाग्य लौटकर नहीं आया। हमारे परिवारका यह जीवन अपूर्ण है। न इसमें दया है, न सहानुभूति और न कर्मठता। पूर्ण जीवन वही कहा जायगा, जिसमें रस या उत्साह है। भोग या विलासिता जीवनके विकार हैं, इनसे कभी किसीकी तुष्टि न हुई है और न होगी। जिस प्रकार नदियाँ समुद्रकी ओर प्रवाहित होती हैं, उसी प्रकार हमारी प्रवृत्तियोंको पुरुषार्थ और रचनात्मक कार्योंकी ओर अग्रसर होना चाहिए।"

विद्युत्प्रभाने अपनी इस नयी माँसे बोलना बन्द कर दिया। दिनभर काम करना और बात-बातमें गाली सुनना उसके जीवनका नित्य कर्म बन गया। पिता अग्निशर्माको भी पुत्रीके दोष ही दिखलायी पड़ते, विषलताके नहीं। उसकी दृष्टि भी परिवर्तित हो चुकी थी। दिनरात विषलता बिटियाका रोना रोती रहती। अतः जब कभी विद्युत्प्रभा नयी माँकी शिकायत अपने पितासे करती तो उसे उल्टी डाँट-फटकार ही प्राप्त होती। सहानुभूति दिखलानेवाला कोई नहीं था। पिताका सिद्धान्तवाक्य सुनाई पड़ता—"अन्यके दोष देखनेके अभ्यस्त मनको स्वयं अपने भीतरके दोषोंका अवलोकन करना चाहिए। विश्वके गुण-दोषोंका परीक्षण कर अपनी दृष्टिको निर्मल बनानेवाला एकाध ही व्यक्ति होता है। अतः बेटी! माँके दोषोंको देखनेके पूर्व तुम अपने दोषोंपर भी दृष्टिपात करो।"

विद्युत्प्रभा अपने पूर्वकृत कर्मोंका परिपाक समझकर सोचने लगी—"मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य अशुभकर्म किये हैं, इन्हीं पूर्वकृत अपराधोंका यह फल है। जिस आत्माने जहाँ जिस समय, जिस प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंका बन्ध किया है, उस आत्माको उन कर्मोंका वैसा ही फल भोगना पड़ता है। स्वयंकृत कर्मोंका फल अन्यथा नहीं हो सकता।"

: ३ :

वसन्तऋतुने घास-पातमें भी नयी स्फूर्ति उत्पन्न कर दी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृतिका भव्य साम्राज्य व्याप्त था। हरी-हरी घास नया वातावरण उत्पन्न कर रही थी। जड़-चेतन सभीमें नया उल्लास और नयी उमंग दिखलायी पड़ रही थी। विद्युत्प्रभा गोचारणके लिए गयी हुई थी। गाँवके चारों ओर वृक्ष-पौधोंका अभाव होनेके कारण वह धूपसे सन्तप्त होकर घासके ऊपर लेट गयी थी। परिश्रम अधिक करनेके कारण उसका शरीर चूर-चूर हो गया था। अतः लेटते ही उसे नींद आ गई। इसी समय उसके पास एक काला, भयंकर भुजंगम आया और मनुष्यवाणीमें बोला—"वत्से! मैं भयभीत होकर तेरे पास आया हूं। मेरे पीछे गारुडिक लगे हुए हैं, वे मुझे बाँधकर ले जायँगे और मेरी दुर्दशा करेंगें। तुम दयालु दिखलायी पड़ती हो, अतः तुम मुझे अपनी गोदमें शरण दो और शीघ्र ही अपने वस्त्रोंसे आच्छादित कर बैठ जाओ। मैं तुम्हारा अनिष्ट नहीं करूँगा। तुम्हारी कृपासे मेरी जान बच जायगी और मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगा।"

विद्युत्प्रभा—"भुजंगराज! तुम्हारी आकृति देखते ही भय मालूम पड़ रहा है। पर मैं तुम्हारे ऊपर विश्वास कर तुम्हें अपनी गोदमें छिपा लेती हूँ। याद रखना विश्वासघात महान् पाप होता है। यद्यपि मुझे जीवनसे विशेष ममता नहीं है, पर शायद आगे चलकर मेरे द्वारा जगत्का कुछ उपकार हो सके इसलिए मैं जीवित हूँ।"

भुजंगमको विद्युत्प्रभाने अपनी गोदमें छिपा लिया और कपड़ेसे आच्छादित कर निर्भय हो बैठ गयी। थोड़े ही समयमें गारुडिकोंकी टोली आई और उस कन्यासे पूछने लगी—"लड़की तुमने इधरसे एक भयंकर विशाल नागको जाते देखा है?"

विद्युत्प्रभा—"इधर कोई नाग नहीं आया। मैं भला नागके बारेमें क्या जानूँ?"

गारुडिक—"इसमें सन्देह नहीं कि वह नागराज अत्यन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भयंकर है, उसे देखते ही राहगीर भाग जाते हैं, फिर इस लड़कीकी बात ही क्या ? लगता है कि वह सर्पराज इस रास्तेसे नहीं गया है, अन्यथा यह यहाँसे भाग जाती। अतः हमलोग उसे उधर नीचेकी तलहटीकी घासमें तलाश करें। शायद वहीं छिपा बैठा हो।"

गारुडिक इधर-उधर तलाश कर जब चले गये तो वह सर्पराज विद्युत्प्रभाकी गोदसे नीचे उतरा और अपना नागरूप छोड़ देवरूपमें प्रकट हुआ ! उसके कानोंमें भास्वर कुण्डल सुशोभित हो रहे थे और शरीरसे दिव्य आभा निकल रही थी। उसके इस रूपको देखकर विद्युत्प्रभा आश्चर्यचकित हो गयी और उसे मनमें कुछ भय प्रतीत हुआ।

नागकुमारदेव—"वत्से ! मैं तुम्हारे साहससे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम दयालु और सहृदय हो, अतः तुम कोई वरदान माँगो।"

भास्वर शरीरसे प्रभावित हो विद्युत्प्रभा कहने लगी—"हे तात ! आप यदि सचमुचमें मुझसे प्रसन्न हैं, तो मेरे ऊपर छाया कीजिए। यहाँ वृक्षोंका अभाव रहनेसे मुझे धूपमें पूरा दिन व्यतीत करना पड़ता है। यह सूर्यताप मेरे शरीरको जला रहा है। यद्यपि यह मान्य है कि गोचारण भी एक प्रकारका तपश्चरण है, इस तपश्चरणसे भी अशुभकर्मोंकी निर्जरा होती है, तो भी प्रतिदिनका यह कष्ट मुझसे सहा नहीं जाता। आपकी कृपासे यदि छाया प्राप्त हो जाय, तो मेरी दिनचर्या सुखकर हो सकती है।"

विद्युत्प्रभाके इस वचनको सुनकर नागकुमार बहुत विस्मित हुआ। वह सोचने लगा कि यह कन्या कितनी भोली है। जो भाग्यमें है, उससे अधिक कोई नहीं पा सकता। माँगते समय भी भाग्यकी लक्ष्मण रेखाका उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। वह सोचने लगा कि इस तुच्छ वरदानका ऐसा रूप कर दिया जाय, जिससे यह विमाताके कष्टोंसे मुक्ति प्राप्त कर सके। कष्ट सहन करते-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते इसकी प्रतिभा भी कुण्ठित हो गयी है। अन्यथा यह इस प्रकार तुच्छ वरदान नहीं माँगती।

नागकुमारदेव—"वत्से ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

विद्युत्प्रभाके ऊपर उस देवने ऐसी वाटिका निर्मित की जिसमें नाना प्रकारके फल-पुष्प वृक्ष सुशोभित थे तथा विभिन्न प्रकारके पक्षी कलरव करते थे। यह वाटिका मधुर फल और अमृत सरस फलरसोंको भी प्रदान करती थी। जहाँ-जहाँ वह जाती, वह वाटिका भी साथ-साथ चलती थी। रात्रिके समय, घरमें रहनेके अवसरपर अथवा अन्य किसी आवश्यकताके समय वह संकुचित होकर छत्रके आकारमें परिणत हो जाती थी। साधारणतः वाटिका-का विस्तार एक कोशका था। इस विस्तारको वह आवश्यकता-नुसार हीनाधिक भी कर सकती थी।

वह नागकुमारदेव पुनः बोला—"वत्से ! जब तुम्हारे ऊपर किसी भी प्रकारकी विपत्ति आये, तो तुम मेरा स्मरण करना। मैं संकटके समय उपस्थित होकर तुम्हारी सब प्रकारसे सहायता करूँगा।"

विद्युत्प्रभाका अब संकट समाप्त हो गया। उसे वाटिकासे अमृततुल्य मधुर फल उपलब्ध होते तथा नारियलका जल पीनेको मिल जाता। क्षुधा, तृषा सम्बन्धी उसकी वेदनाका निवारण हो चुका था। वह सुख और शान्तिपूर्वक अपना जीवन यापन कर रही थी।

एक दिन मध्याह्नके समय वह गायोंको चराती हुई सुखकी नींद सो रही थी, कि पाटलीपुत्रनरेश जितशत्रु अपनी चतुरंगिणी सेना सहित विजययात्रा करता हुआ वहाँ आया। वह विस्तृत वाटिकाको देखकर आश्चर्यचकित रह गया। यात्राके लिए जाते समय जहाँ एक भी वृक्ष नहीं था वहाँ यह एक कोश विस्तृत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाटिका कहाँसे आ गई ? कहीं मार्ग भूलकर दूसरे गाँवसे तो नहीं आ निकले हैं। इस सुन्दर वाटिकामें तो सेनाका पड़ाव रहना चाहिए। अतएव जितशत्रुने अपने सेनापतिको विश्राम करनेके लिए आदेश दिया। घोड़े, हाथी एवं सैनिकोंके कोलाहलको सुनकर विद्युत्प्रभाकी नींद टूट गयी और वह राजाकी सेनाको देखकर भयभीत हो, अपनी गायोंको लेकर वहाँसे चल दी। उसके चलनेसे वाटिका भी साथ-साथ जाने लगी, जिससे घोड़े-हाथी भी वृक्षोंसे बँधे हुए साथ-साथ चलने लगे। जब राजाने यह अपूर्व दृश्य देखा तो उसका मन आश्चर्यसे भर गया। वह सोचने लगा कि यह क्या बात है जो इस लड़कीके साथ-साथ वाटिका चल रही है।

राजाने मन्त्रीसे पूछा—"महामात्य ! यह क्या बात है ? यह कन्या देववाला तो हो नहीं सकती, क्योंकि इसके शरीरकी छाया दिखलायी पड़ रही है तथा इसके नेत्रोंकी पलकें भी गिरती और उठती हैं। कृपया पता लगाइये कि बात क्या है ? कौन-सा ऐसा यन्त्र-मन्त्र है जिसके कारण यह वाटिका भ्रमण कर रही है ? तथा इस कन्यामें कौन-सी ऐसी शक्ति है, जिसके कारण यह बगीचा इसका अनुसरण कर रहा है ?"

मन्त्रीने दौडकर उस कन्याको बुलाया। आवाज सुनकर वह रुक गयी। विद्युत्प्रभाके रुकते ही बगीचा भी स्थिर हो गया और हाथी, घोड़े तथा उष्ट्र आदि पशु भी अपने यथास्थान खड़े हो गये। मन्त्रीने राजाको भी बुला लिया। कन्याने राजासे निवेदन किया कि उसकी गायें दूर जा चुकी हैं, अतएव वह रुक नहीं सकती।

राजाने घुड़सवारोंको दौड़ाकर विद्युत्प्रभाकी गायोंको वहाँ बुलवा लिया। राजाने विद्युत्प्रभाके रूप-लावण्यसे प्रभावित होकर मन्त्रीसे पूछा कि यह सुन्दरी अभी कुमारी है या विवाहिता ? यह इससे तलाशकर पता लगाना चाहिए। मंत्रीने विद्युत्प्रभासे संकेत-कर पूछा—"देवि, अभी आपका परिणय हुआ है या नहीं ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्युत्प्रभा—(संकोचका अनुभव करते हुए)—"अभीतक मेरा पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ है।"

मन्त्री—"यदि आपको पट्टरानी बननेका अवसर प्रदान किया जाय, तो आप स्वीकार कीजिएगा या नहीं ?"

विद्युत्प्रभा—"मेरे विवाहका दायित्व मेरे अभिभावकोंपर है। मैं इस सम्बन्धमें अपनी स्वतन्त्र सम्मति देनेमें असमर्थ हूँ। भारतीय कन्या अपना विवाह स्वयं नहीं करती। उसके अभिभावक जहाँ भी उचित्र समझते हैं, विवाह कर देते हैं। हमारी परम्परामें यह निर्लज्जता है कि कन्या अपने विवाहकी स्वयं चर्चा करे।"

मन्त्री—देवि ! आपके अभिभावक कहाँ रहते हैं और कौन हैं ?"

विद्युत्प्रभा—"वलासग नामक गाँव है। वहाँ अग्निशर्मा नामक विद्वान् निवास करते हैं, वही मेरे पिता हैं।"

मन्त्री राजाके आदेशानुसार 'वलासग' ग्राममें पहुँचा और अग्निशर्मासे राजाज्ञाका निवेदन किया। अग्निशर्माको इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि उसकी पुत्री राजरानी होने जा रही है। उसने तत्काल मन्त्रीको अपनी स्वीकृति प्रदान की। पर विषलताको यह समाचार अच्छा न लगा। वह सोचने लगी कि विद्युत्प्रभाके स्थान-पर मेरी बेटी कुलवन्तीका विवाह राजाके साथ हो जाय तो कितना अच्छा हो। कुलवन्ती काली, बदसूरत और विकृत अंगवाली थी। उसे देखते ही विचिकित्सा उत्पन्न होती थी। अतः इस कल्पनाके पूर्ण होनेकी सम्भावना ही नहीं थी। विषलताको विद्युत्प्रभाका राजाके साथ विवाह होना अच्छा नहीं लगा। उसने अग्निशर्मासे निवेदन किया कि अपनी कुलवन्तीका विवाह राजाके साथ क्यों नहीं हो सकता है ? आप कुलवन्तीके विवाहका प्रस्ताव राजाके समक्ष रखिये।

ब्राह्मणने विषलताको डाँटते हुए कहा—"राजा विद्युत्प्रभाके रूप-सौन्दर्यसे आकृष्ट होकर ही उसके साथ विवाह करना चाहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। कुलवन्ती और विद्युत्प्रभाके लावण्यमें आकाश-पातालका अन्तर है। प्रस्ताव सदा सोच-समझकर रखना चाहिए। इस प्रकारकी मूर्खता करना अच्छा नहीं।"

अग्निशर्मा राजाके शिविरमें पहुँचा और राजाको आशीर्वचन दिया। राजाने ब्राह्मणको अपने हाथसे आसन दिया और उस आसनपर उसको बैठाया। ब्राह्मणने राजाके भाव अवगतकर अपनी कन्याका दान देनेका संकल्प किया। अग्नि और पंचोंकी साक्षी-पूर्वक विद्युत्प्रभाका विवाह राजा जितशत्रुके साथ सम्पन्न हो गया। राजाने विद्युत्प्रभाका नाम आरामशोभा रखा।

ब्राह्मणको राजाने बारह गाँव पारितोषिक स्वरूप दिये और अपनी प्रियतमा आरामशोभाको हाथीपर सवारकर पाटलीपुत्रकी ओर प्रस्थान किया। राजाकी आज्ञासे नगर सजाया गया। चारों और सुगन्धित पदार्थ विकीर्ण किये गये। प्रासादोंके ऊपर दीप प्रज्वलित किये गये। कल्पलताके समान दिव्य रमणी आरामशोभा-का स्वागत करनेके लिए पूरा प्रबन्ध किया गया। कालागुरु, चन्दन, कर्पूर एवं केसर आदिसे निर्मित दशांगी धूपका धूम सभी दिशाओं-को सुगन्धित कर रहा था। नर्तक और नर्तकियाँ मिलकर नृत्य कर रहे थे। मंगलवाद्यध्वनि नाना प्रकारकी भावावलियोंको उत्पन्न कर रही थी। उच्छ्रित ध्वजाएँ आकाशका स्पर्श करती थीं। विभिन्न प्रकारकी वन्दनमालाएँ तिमुहानियों और चौमुहानियोंपर बाँधी गयी थीं।

आरामशोभाका आराम सारी प्रजाके आकर्षणका केन्द्र था। इस वाटिकाके मनोरम वक्षोंको देखकर नीरस हृदय भी सरस बन जाते थे। रंग-विरंगे पुष्प विकसित हो वाटिकाको रमणीयतामें चार-चाँद लगा रहे थे। अतः पाटलीपुत्र निवासियोंका मन अत्यन्त आह्लादित था और वे मन ही मन आरामशोभाके सौन्दर्यकी प्रशंसा कर रहे थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वागत और सम्मानपूर्वक महाराज जितशत्रुने आरामशोभाको नगरमें प्रवेश कराया। जब वह राजभवनमें प्रविष्ट हुई तो वाटिका संकुचित होकर राजभवनके चारों ओर प्रतिष्ठित हो गई तथा आरामशोभाके ऊपर एक छत्र स्थित हो गया। राजा आरामशोभाको प्राप्तकर धन्य हो गया। वह सोचने लगा कि दिव्य हाव-भावोंसे युक्त एवं श्रृङ्गारमें प्रवीण विद्युत्प्रभाका निर्माण किन्हीं विशिष्ट तत्त्वोंके द्वारा हुआ है। यही कारण है कि इसके जैसा मनोहर रूप अन्यत्र दुर्लभ है। मेरे पूर्वजन्मके सुकृतका उदय है, जिससे यह निरुपम सुन्दरी प्राप्त हुई है।

आरामशोभाका राजाके साथ विवाह हो जानेसे उसकी सौतेली माँको अत्यधिक ईर्ष्या हुई। वह सोचने लगी कि ऐसा उपाय किया जाय, जिससे आरामशोभाकी मृत्यु हो जाय और उसके स्थानपर कुलवन्तीका विवाह किया जा सके। यह सत्य है कि मेरी कुलवन्ती आरामशोभा जैसी सुन्दरी नहीं है और न गुणवती ही है, फिर भी उपायद्वारा उसका विवाह राजाके साथ सम्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार चिन्तन करती हुई वह कृत्रिम प्रेम प्रदर्शित कर अपने पतिसे कहने लगी—"नाथ! पुत्रीका विवाह हुए कई महीने बीत गये। हम गरीब हैं तो क्या हुआ? हृदय तो हमारे भी हैं। सभी कोई अपने शक्त्यनुसार पुत्रीके यहाँ मिठाई भेजते हैं। हमने अभी तक अपनी लड़कीके यहाँ कुछ भी नहीं भेजा है, यह उचित नहीं है। प्रत्येक कन्याकी भावना रहती है कि उसके पितृगृहसे उपहार प्राप्त हो। यह मैं मानती हूँ कि आरामशोभा राजरानी बन गयी है, फिर उसके यहाँ उपहार अवश्य जाना चाहिए। यदि मैं उपहार नहीं भेजूँगी तो लोग समझेंगे कि सौतेली माँ होनेके कारण कुछ नहीं किया गया है। अतएव मैं अपने ऊपर कलंकका टीका नहीं रखना चाहती हूँ। मैं नाना प्रकारके पक्वान्न न बनाकर केवल मोदक तैयार करूँगी, आप इन्हें वहाँ पहुँचा दीजिए।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अग्निशर्मा—"तुम क्या बातें करती हो। आरामशोभा कोई साधारण नारी नहीं है, वह राजरानी है। अमृततुल्य सुस्वादु भोजन करनेवालोंके यहाँ तुम्हारे मोदक कौन खायगा? हमलोगोंका पक्वान्न वहाँ किसीको पसन्द नहीं आयगा। जहाँ घृत, दुग्ध, शर्करा आदिकी कमी न हो, वहाँ तुच्छ मोदकोंका क्या स्थान। हमें व्यर्थका बड़प्पन और भावुकता प्रदर्शित करनेकी आवश्यकता नहीं है। यह निश्चय है कि हमारा जैसा पक्वान्न हास्यका साधन बनेगा।"

विषलता—"नाथ! आप मातृहृदयको नहीं पहचानते। इसी कारण इस प्रकारकी बातें कर रहे हैं। माताकी दृष्टिमें कन्याका सम्पन्न और असम्पन्न होना समान है। राजरानी होनेपर भी माँ उसे पुत्री ही मानती है। अतएव आपको एक बार पाटलीपुत्र उपहार लेकर अवश्य जाना पड़ेगा। यदि आप मेरी बातें स्वीकार कर लें तो बड़ी कृपा हो।"

पत्नीका अत्यधिक आग्रह देखकर अग्निशर्माने उपहार लेकर पाटलीपुत्र जाना स्वीकार कर लिया। पतिकी स्वीकृति प्राप्त होते ही उसने 'सिंहकेशरी मोदक' बनानेका उपक्रम किया। बाजारसे मेवे, मधुशर्करा, घृत आदि पदार्थ खरीदे गये। उसने हलाहल विष भी खरीद लिया तथा मोदकोंमें उस हलाहलको भी मिला दिया। जब मोदक तैयार हो गये तब वह ब्राह्मणसे कहने लगी—"नाथ, इन मोदकोंको लेकर आपको स्वयं जाना होगा। यदि रास्तेमें कोई विघ्न आवे आप इन मोदकोंकी रक्षा कर लेंगे।"

उसने एक मिट्टीके घड़ेमें मोदक भर दिये और ऊपरसे लाल कपड़ेसे उस घड़ेके मुँहको बाँध दिया। घड़ेके चारों ओर हल्दी; रोरी आदि मांगलिक पदार्थ लगा दिये गये।

अग्निशर्मा अपने सिरके ऊपर घड़ेको रखकर चलने लगा। अग्निशर्मा सन्ध्या हो जानेपर घड़ेको सिरके नीचे रखकर सो जाता और प्रातःकाल नित्यक्रियाओंसे निवृत्त होकर पुनः चलना आरम्भ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर देता। जब वह पाटलीपुत्रके निकट पहुँचा तो थक जानेके कारण मध्याह्न समय एक वृक्षकी छायामें विश्राम करने लगा। विश्राम करते हुए उसे नींद आ गई। इसी समय वह नागकुमारदेव क्रीड़ा करता हुआ वहाँ आया। जब उसने घड़ा रखे हुए ब्राह्मणको सोते देखा तो कौतूहलवश अपने ज्ञानका प्रयोग कर उक्त घटनाको जान लिया। दुष्ट विषलताके विषमय व्यवहारसे उसे बहुत कष्ट हुआ। वह सोचने लगा कि यह ब्राह्मणी कितनी नीच है। आराम-शोभाका विवाह हो जानेपर भी यह शान्त नहीं है। इसने दुष्टतावश उसके प्राण लेनेका प्रयत्न किया है। अतएव उस नागकुमारने उस घड़ेके मोदकोंको निकालकर उसके स्थानपर सुस्वादु अमृतमय मोदकोंको रख दिया और घड़ेको जैसाका तैसा रखकर चला गया।

जब अग्निशर्माकी नींद टूटी तो वह शीघ्रतापूर्वक घड़ेको लेकर पाटलीपुत्र नगरमें पहुँचा। राजसभामें प्रविष्ट हो उसने वह उपहार राजाको भेंट किया और निवेदन किया—"महाराज! आरामशोभा-की माँने यह मोदकोंका कलश भेजा है। उसने यह निवेदन किया है कि बेटी आरामशोभाके सिवा अन्य कोई इन मोदकोंका उपयोग न करें; क्योंकि ये मोदक उतने अच्छे नहीं हैं, जितने अच्छे होने चाहिए। यह तो केवल उसके स्नेहका उपहार है, यहाँ वस्तुका महत्त्व नहीं, महत्त्व प्रेमका है। सौतेली माँ अपनी बेटीको कितना स्नेह करती है, यह इस उपहारसे स्पष्ट है।

अग्निशर्माके उक्त वचनोंको सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने आरामशोभाको बुलाकर वह उपहार समर्पित किया। राजा ब्राह्मण और ब्राह्मणीकी प्रशंसा करने लगा।

आरामशोभाने मोदकोंके कलशको खोला, तो उसमें सुगन्धित और सुस्वादु मोदक प्राप्त हुए। स्वयं चखनेके उपरान्त उसने उन मोदकोंको अन्य लोगोंको भी दिया। जिसने भी मोदक खाये, वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसा करते हुए नहीं अघाता था। मोदकोंका स्वाद बहुत ही अच्छा था। जब राजा जितशत्रुने मोदक ग्रहण किये तो उसे भी वे अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुए। उसने प्रसन्न हो ब्राह्मणको पुरस्कार दिया तथा ब्राह्मणी विषलताके लिए भी वस्त्राभूषणोंका उपहार भेजा।

जब ब्राह्मण चलने लगा तो उसने राजासे निवेदन किया कि बेटीको कुछ दिनोंके लिए मेरे साथ भेज दीजिए। इसे यहाँ रहते-रहते कई महीने बीत गये हैं, कुछ दिन 'बलासग' में रह आयेगी तो उसका मन बहल जायगा और इसकी माँको भी आनन्द प्राप्त होगा। इसकी माँका इसे बुलानेका अत्यधिक आग्रह है।

राजा—"विप्रवर! आप नहीं जानते, रानियाँ 'असूर्यंपश्या' होती हैं। वे न तो किसीसे मिलती-जुलती हैं और न कहीं जाती हैं। राजघरानेके नियम बहुत ही कठोर होते हैं, इनका पालन करना आवश्यक होता है।"

ब्राह्मण अग्निशर्मा अपने निवासस्थानके लिए रवाना हुआ। वह अनवरत मार्ग तयकर कई दिनोंमें अपने गाँवमें आया। विषलताने पुत्रीका समाचार पूछते हुए कहा—"आरामशोभा लड्डू खाकर भी जीवित है। लगता है कि विष बहुत तेज नहीं था। इसी कारण उसके ऊपर विषका प्रभाव नहीं पड़ा।"

ब्राह्मणने अपनी सचाई प्रकट करते हुए कहा—"मैंने मोदकोंका कलश आरामशोभाको दिया। आरामशोभाने मोदक खोलकर खाये। वे मोदक अत्यन्त स्वादिष्ट थे। सभी लोगोंने तुम्हारे मोदकोंकी प्रशंसा की। सबका यही कहना है कि ऐसे सुस्वादु अमृततुल्य मोदक तो जीवनमें कभी नहीं खाये। तुमने उन मोदकोंमें क्या-क्या डाला था। जब राजघरानेके व्यक्तियोंने भी ऐसे मोदक नहीं खाये हैं, तो साधारण व्यक्तिकी बात ही क्या?"

विषलता मन ही मन पछताने लगी। पता नहीं, कैसा विष था, जो अमृत बन गया। मेरा यह प्रयास तो व्यर्थ गया। पर मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभी भी निराश नहीं हूँ। अबकी बार किये प्रयत्नमें आरामशोभाको सदाके लिए समाप्त कर दूँगी। उसने मनमें संकल्प करते हुए ब्राह्मण-से कहा—"स्वामिन्! मैं अनेक प्रकारके पक्वान्न बनाना जानती हूँ। जिस प्रकारके स्वादिष्ट मैंने मोदक बनाये हैं उसी प्रकारकी सुस्वादु फैनी बनाना भी मैं जानती हूँ। अतः अगले महीनेमें आप फैनी लेकर पाटलिपुत्र जाइये। याद रखियेगा कि फैनी-करण्डिका आरामशोभाके अतिरिक्त अन्य किसीके हाथमें न दीजिएगा। अपने सामने ही बेटीको फैनी खिला दीजियेगा। राजपरिवार है, व्यस्तता-के कारण वह फैनी खा सकेगी या नहीं। अतएव अपने सामने ही उसे फैनी खिलानेका प्रयास कीजियेगा।"

अगले महीने ब्राह्मणीने हलाहल विष मिलाकर फैनी तैयार की और एक सुन्दर करण्डिकामें भरकर ब्राह्मणको दे दी। ब्राह्मण पूर्ववत् चलता हुआ मध्याह्नकालमें उसी वटवृक्षके नीचे पुनः पहुँचा और करण्डिका रखकर वह सो गया। घूमता हुआ नागकुमारदेव आया और उसने पहलेके समान उन विषैली फैनियोको निकालकर उनके स्थानपर अद्भुत स्वादिष्ट फैनी भर दीं तथा करण्डिकाको जैसेका तैसा रख दिया। ब्राह्मण जागनेपर उस करण्डिकाको लेकर राजसभामें पहुँचा। इस उपहारको प्राप्तकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ तथा इस पक्वान्नकी सभीने प्रशंसा की। इस बार भी राजाने ब्राह्मणको पुरस्कार दिया और ब्राह्मणीकी प्रशंसा की।

तीसरी बार ब्राह्मणीने तालपुट मिश्रित मिष्टान्न आरामशोभाके लिए भेजा, पर इस बार भी नागकुमारदेवकी कृपासे वह विषमिष्टान्न अमृतान्नमें परिवर्तित हो गया। ब्राह्मणीके आदेशानुसार ब्राह्मणने आरामशोभाको साथ ले जानेके लिए राजासे अनुरोध किया। जब राजाने इंकार किया तो ब्राह्मणने उग्र हो अपना ब्रह्मतेज प्रदर्शित किया। उसने जोर-जोरसे चिल्लाकर कहना प्रारम्भ किया—"यदि आप मेरी पुत्रीको मेरे साथ न भेजेंगे तो मैं यहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजसभामें आत्महत्या कर ब्राह्मणवधके दोषसे दूषित आपको बना दूँगा।"

राजाने जब ब्राह्मणका यह रूप देखा तो वह विचलित हो गया और उसने गर्भवती आरामशोभाको दासियों और सेवकों सहित 'बलासग' भेज दिया।

विषलताने कृत्रिमरूपमें आरामशोभाका स्वागत किया और बनावटी प्रसन्नता प्रकट करते हुए उससे गले मिली।

उसने आरामशोभाकी हत्या करनेका षड्यन्त्र आरम्भ किया। घरके मध्यमें एक कुँआ बनवाया और उसके ऊपर चारपाई बिछाकर प्रसूतिगृहकी तैयारी की। समय प्राप्त कर आरामशोभाके प्रसवका समय भी निकट आ गया। विषलताने पहलेसे ही अपनी मनोकामना पूर्ण करनेकी तैयारी कर ली थी।

: ४ :

आरामशोभाने देवपुत्रके तुल्य एक सुन्दर बालकको जन्म दिया। बालक अत्यन्त तेजस्वी और रूपवान् था। उसके शरीरसे दिव्य रश्मियाँ प्रकट हो रही थीं। पुत्रजन्मके अनन्तर दो-तीन दिनके पश्चात् विषलताने अत्यन्त स्नेहपूर्वक आरामशोभासे कहा—"बेटी! देखो मैंने तुम्हारी सुविधाकी दृष्टिमें घरमें ही कुँआ बनवाया है। कितना सुन्दर कुआँ है और इसका पानी भी मीठा और ठंडा है।"

बच्चेको चारपाईपर सोते छोड़कर जब आरामशोभा कुएँमें झाँकने लगी तो सौतेली माँने पीछेसे एक धक्का दिया। बेचारी आरामशोभा मुँहके बल कुएँमें गिर पड़ी। उसने इस विपत्तिके समय नागकुमारदेवका स्मरण किया। देवने उपस्थित हो आरामशोभाके प्राणोंकी रक्षा की। उसने आरामशोभाके निवासके लिए कुएँके मध्यमें एक पाताल-भवनका निर्माण कर दिया। आरामशोभाका बगीचा भी देवी प्रभावसे वहीं स्थिर हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागकुमारको ब्राह्मणीपर बहुत क्रोध आया, किन्तु उसने आरामशोभाके निवेदनपर ध्यान देकर विषलताका कुछ भी अनिष्ट नहीं किया। नागकुमारने आरामशोभाकी सारी व्यवस्था सम्पन्न कर दी, जिससे उसे किसी बातका कष्ट नहीं था।

आरामशोभाको कुँएमें गिराकर विषलताने पुत्रके पास अपनी कन्या कुलवन्तीको सुला दिया और यह घोषित कर दिया कि प्रसववेदनाके कारण बेटीका शरीर विकृत हो गया है। उसके चेहरे-पर दाग आ गये हैं तथा पहले जैसी सुकुमारता और मृदुता भी नहीं रही है।

उसने इस विकृतिका समाचार राजाके पास भी पहुँचा दिया। राजाने अपने परिचारकोंको आरामशोभाका कुशल समाचार लानेके लिए भेजा।

अनन्तर एक मन्त्री वहाँ आया और कहने लगा—"देवने आदेश दिया है कि देवी सहित कुमारको शीघ्र ही यहाँ लाया जाय।"

कृत्रिम आरामशोभाके प्रस्थानकी पूरी तैयारियाँ की जा रही हैं। परिचारकोंने जब कृत्रिम आरामशोभासे पूछा कि बगीचा क्यों नहीं चल रहा है तो उसने उत्तर दिया—"वाटिकाको कुएँसे पानी पीनेके लिए ठहरा दिया है, अतः जब उसकी प्यास मिट जायगी, तब वह स्वयं आ जायगी।"

प्रधान मन्त्री और सैनिक कृत्रिम आरामशोभाको लेकर पाटलि-पुत्र पहुँच गये। नगरके सामन्तोंने पुत्र-लाभके उपलक्ष्यमें राजाको बधाइयाँ अर्पित कीं। पुत्रजन्मोत्सव सम्पन्न करनेके लिए नगरको सजाया गया। नृत्य, गान और वाद्यका प्रबन्ध किया गया। राजाने पुत्रको देखकर आन्तरिक आनन्दका अनुभव किया, पर जब कृत्रिम आरामशोभाको देखा तो उसे प्रियाकी यह सौन्दर्य-विकृति बहुत ही खटकी। वह सोचने लगा कि यह किस जन्मके पापका उदय है, जिससे मेरी प्रियतमा विरूप हो गयी। राजाने परिचारकोंसे रानीकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्कृतिका पता लगाना चाहा, पर सब निष्फल रहा। उसने धैर्य धारण कर रानीकी विक्कृतिके दुःखको सहन किया। पुत्र-लाभसे जो प्रसन्नता हुई; वह प्रियतमाकी रूपविक्कृतिने विरूप कर दी।

एक दिन राजाने देवीसे कहा—"प्रिये! तुम्हारा निरन्तरका सहचर वह बगीचा अब क्यों नहीं दिखलायी पड़ता।"

नकली आरामशोभा—"वाटिकाको बहुत दिनोंसे जल नहीं मिला, अतः वह कुएँपर जल पीनेके लिए स्थित हो गयी है। जल पीकर तृप्त होते ही वह बगीचा चला आयगा।"

राजाके मनमें सन्देह उत्पन्न होता है कि यह रानी तो मेरी प्रिया प्रतीत नहीं होती। क्या बात है कि इसकी आकृति बिलकुल बदली हुई है। बात-चीतका ढंग भी इसका पहला नहीं है। इसकी बोलीमें पहले जो मिठास वर्तमान थी, वह अब नहीं है। इतना परिवर्तन तो कभी नहीं होता, इसमें कुछ रहस्य होना चाहिए।

पुत्र विरह आरामशोभाको निरन्तर कष्ट देता था। एक दिन उसने नागकुमारसे प्रार्थना की—"तात! आपकी कृपासे समस्त सुख-सुविधाओंके रहनेपर भी पुत्र-दर्शनके बिना मेरा मन अत्यन्त दुःखी है। यदि आप ऐसा प्रबन्ध कर दें कि मैं किसी भी समय जाकर अपने पुत्रका दर्शन कर लिया करूँ, तो मेरा परम कल्याण हो। आपकी कृपासे संसारकी कोई प्राप्य वस्तु असंभव नहीं है।"

नागकुमारदेव—"मेरे प्रभावसे तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

आरामशोभा—"देव! मैं आपकी इस महती कृपाको स्वीकार करती हूँ और अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।"

नागकुमारदेव—"यहाँ एक बात स्मरणीय है कि तुम्हें पुत्र दर्शनकर सूर्योदयके पूर्व ही लौट आना होगा। यदि इसके बाद वहाँ सक जाओगी तो मेरा दर्शन नहीं हो सकेगा। इसका स्पष्टीकरण यों है कि सूर्योदयके अनन्तर रह जानेपर तुम्हारे केशपाशसे एक मृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाग निकलेगा और सदाके लिए उसकी दैवी शक्ति समाप्त हो जायगी।"

आरामशोभाने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर लिया। वह नागकुमारके प्रभावसे पाटलिपुत्रके राजप्रासादमें रात्रिके समय जाने लगी। वहाँ वह अपने पुत्रको जी भरकर प्यार करती और सुगन्धित पुष्प तथा फल चढ़ाती। मणिमय दीप प्रज्वलित करती, पुत्रको गोदमें लेकर आत्मविभोर हो जाती। जब वह राजाके पास अपनी सौतेली बहनको सोते हुए देखती, तो उसे अपनी विमाताके कृत्योंका स्मरण हो आनेसे अपार वेदना होती। क्रोध और ईर्ष्यासे उसका शरीर जलने लगता और मनमें प्रतिशोधकी भावना उत्पन्न हो जाती। वह मन मसोसकर अपने निवासस्थानपर लौट आती।

जब आरामशोभाका यह नित्यक्रम हो गया तो राजमहलमें दिव्य सुगन्धि, मणिदीप एवं पुष्पोंके परागने राजा जितशत्रुका ध्यान आकृष्ट किया। उसने दासियोंसे कहा—"रात्रिमें कुमारके पास आकर कौन पुष्पाभरण चढ़ाता है। ये दिव्य पदार्थ कहाँसे आते हैं। अतः रातभर जागरणकर तथ्यका पता लगाना चाहिए।"

आरामशोभा प्रतिदिनके नियमानुसार आई और उसने कुमारको दुलार किया। पुष्प, सुगन्धित वस्तु और फल आदि चढ़ाये। दिव्य प्रदीप प्रज्वलित किया। जब कुछ समयके बाद वह जाने लगी तो दासियोंने उसका मार्ग रोककर उसे पकड़ना चाहा, किन्तु वह अपनी दिव्य शक्तिके क़ारण आकाशमार्गसे चली गई। दासियाँ उसे रोकनेमें असमर्थ रहीं।

प्रातःकाल होनेपर दासियोंने रात्रिमें घटित समस्त घटना राजाको ज्यों-की-त्यों सुना दी। इस घटनाको सुनकर राजाने अगली रात्रिको जागरण आरम्भ किया।

अपने समयपर आरामशोभा आई, उसने प्रतिदिनके नियमानुसार बालकको गोदमें लेकर प्यार किया। पुष्प, दीप, धूप, फल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि पदार्थं कुमारको अर्पित किये। समस्त कार्यक्रम समाप्तकर जब वह जाने लगी तो राजाने उसका हाँथ पकड़ लिया और कहने लगा—"प्रियतमे! क्यों हमलोगोंको ठग रही हो। किस जन्मके पापका यह दण्ड दे रही हो। यह कार्य तो तुम्हारे स्वभावके विरुद्ध है। मैंने कौन-सा अपराध किया है, जिसके कारण तुम मुझे कष्ट दे रही हो।"

आरामशोभा—"नाथ! मैं आपको स्वप्नमें भी कष्ट देना नहीं चाहती। मैं तो आपके चरणोंकी दासी हूँ। नारीका सर्वस्व पति होता है। जो नारी पतिसेवामें जितना समय लगाती है, वह उतनी उत्तम है। मुझे परिस्थितियोंके ही कारण आपसे अलग होना पड़ा है। मेरे जीवनकी गुलाबी मादकता असमयमें ही सूख गयी। अब आप मुझे छोड़िए। अगले दिन अपना वृतान्त बतलाऊँगी।"

राजाने हाथ नहीं छोड़ा। तुम मुझे सारी बात बतलाए बिना कहीं नहीं जा सकती हो। आज मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ। आखिर बात क्या है और तुम किसरूपमें कहाँपर रहती हो?"

जब राजाने आरामशोभाका हाथ नहीं छोड़ा तो उसे लाचार हो अपनी सौतेली माताके कुकृत्योंकी कथा सुनानी पड़ी। कथा सुनाते-सुनाते सूर्योदय हो गया। इसी समय उसके केशपाशसे एक मृत नाग गिर पड़ा।

इस नागको देखते ही आरामशोभा मूर्छित हो भूमिपर गिर पड़ी। शीतलोपचारके अनन्तर जब उसकी मूर्छा दूर हुई तो राजाने कहा—"प्राणेश्वरी किस कारण तुमने अपनेको विषाद समुद्रमें निमग्न कर दिया है।"

आरामशोभा—"प्राणेश्वर! पिताके समान हितकारी यह नाग-कुमारदेव निरन्तर मेरे साथ रहता था। इसने प्रारम्भमें ही मुझसे कहा था कि यदि तुम मेरी आज्ञा बिना सूर्योदय पर्यन्त अन्यत्र रह जाओगी, तो मैं तुम्हारा साथ छोड़कर चला जाऊँगा और तुम्हें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर कभी मेरा दर्शन न हो सकेगा। यह मृत नाग इसी बातका सूचक है।"

राजा जितशत्रुको अपने श्वसुर, सास और आरामशोभा नाम धारिणी पत्नीपर अपार क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने कुलवन्तीको पकड़कर रस्सीसे बाँध दिया और उसको पीटना आरम्भ किया। जब वह मार खाते-खाते बेहोश होने लगी तो आरामशोभाको उसपर बहुत दया आई और वह राजाके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना करने लगी—"स्वामिन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मेरी इस बहिनको छोड़ दीजिए। आप इसपर दया कीजिए और इसे पूर्ववत् सम्मान दीजिए।"

राजा—"देवि! मैं तुम्हारे स्नेहका सम्मान करता हूँ। अतः तुम्हारी सभी बातोंको स्वीकार कर सकता हूँ, पर इस दुष्टाको अपने यहाँ नहीं रख सकता। हाँ, इसे दण्ड दिये बिना ही छोड़ देता हूँ।"

राजाने अपने महामात्यको बुलाकर आदेश दिया—"मन्त्रिवर! बलासग पुलिसको भेज दीजिए और अग्निशर्मा तथा उसकी पत्नीके नाक, कान कटवाकर उन्हें राज्यसे निर्वासित कर देनेकी व्यवस्था कीजिए। साथ ही उसके घरको आग लगाकर भस्म भी कर दिया जाय।"

आरामशोभाने राजासे प्रार्थना कर अपने पिता अग्निशर्माको भी क्षमा करा दिया और उसकी पूर्ववत् बारह गाँवकी जागीर ज्यों-की-त्यों छोड़ दी गयी।

आरामशोभा और राजा जितशत्रु प्रेमपूर्वक जीवन-यापन करने लगे। एक दिन आरामशोभाने राजासे कहा—"प्रियतम! मेरा जीवन प्रारम्भमें दुःखमय था और बादमें सुखकी उपलब्धि हुई। यह किसी कर्मका ही फल है। यदि कोई ज्ञानी मिले तो मैं अपने कर्मोदयको उनसे पूछूँ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन नगरमें मुनिसंघ पधारा। राजा आरामशोभा सहित मुनिवन्दनाके लिये गया और आरामशोभाने मुनिराजसे अपनी पूर्वभवावली जाननेकी इच्छा व्यक्त की।

मुनिराज—"इसी जम्बूद्वीपमें चम्पा नामकी नगरी है। इस नगरीमें धन-धान्यसे परिपूर्ण कुलधर नामका सेठ रहता था, इसकी भार्याका नाम कुलानन्दा था। इस दम्पतिके कमलश्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, कमलवती, यशोदेवी और प्रियकारिणी ये सात कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इन सभी कन्याओंका धनिक परिवारोंमें विवाह-संस्कार संपन्न कर दिया गया। कन्याओंके जन्मके कारण माता-पिता बहुत त्रस्त थे। पर भाग्यकी रेखा अमिट होती है, इसे कोई नहीं धूमिल कर सकता। दुर्भाग्यसे आठवीं कन्याका जन्म भी इस परिवारमें हुआ। माता-पिताको कन्या-जन्मसे आन्तरिक वेदना हुई और उन्होंने उस कन्याकी अत्यन्त उपेक्षा की। अतएव उसका नामकरण भी नहीं किया गया। जब वह कन्या बड़ी हो गयी तो नगरवासियोंने उसका नाम निर्झरगति रख लिया और इसी नामसे उसे पुकारने लगे। बहुत बड़ी हो जानेपर भी माता-पिताने उसके विवाहकी व्यवस्था नहीं की। फलतः कन्याकी आयु दिनोंदिन अधिक होती गयी। अब अधिक आयु हो जानेसे उसके साथ विवाह करनेको कोई तैयार नहीं था, इससे पिताके मनमें क्लेश था।

एक दिन सेठ अपनी दुकानपर बैठा हुआ था कि उसे एक मैला-कुचैला पथिक दिखलाई पड़ा। सेठने पूछा—'तुम कहाँसे आये हो, कौन हो, कहाँ जा रहे हो, क्या नाम है, और किस कार्यसे भ्रमण कर रहे हो?"

सेठके प्रश्नोंको सुनकर पथिकने उत्तर दिया—"मैं समुद्र-तटवर्ती चोल देशसे आया हूँ।" यों मैं कौशल देश निवासी नन्दिसेठ और उनकी स्त्री सोमाके गर्भसे उत्पन्न नन्दन नामका श्रेष्ठिपुत्र हूँ। मैं वैभव क्षीण हो जानेके कारण निर्धन हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हूँ, अतः धनार्जन करनेके हेतु चोल देश गया। वहाँ भी धनार्जन नहीं कर सका, अतः स्वाभिमानके कारण मैं अपने देशको नहीं लौट सका हूँ। धनोपार्जन किये बिना मैं अपने देश नहीं जाऊँगा। मुझे इस नगरके वसन्तदेवने पत्र देकर यहाँ भेजा है। कृपया आप उनका पता बतला देनेका कष्ट कीजिए।" कुलधरने वसन्तदेवका घर बतला दिया और विचारने लगा कि यदि इसके साथ मैं अपनी निर्झरगति नामक कन्याका विवाह कर दूँ, तो अपने कर्त्तव्य और दायित्वसे मुक्त हो जाऊँ। यह स्वाभिमानी है, अतः श्वसुर गृहमें रहना भी पसन्द नहीं करेगा।

कुलधरने अपने निश्चयके अनुसार निर्झरगतिका विवाह नन्दनके साथ कर दिया। नन्दन वसन्तदेवके पिता श्रीदत्त सेठका प्रत्युत्तर लेकर पुनः चोलदेशको अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ रवाना हुआ। उसके पास जो खाद्यपदार्थ मार्गमें खानेके लिए दिये गये थे वे शनैः-शनैः क्षीण होने लगे। अभी चोलदेश पहुँचनेमें कई दिनोंका समय अपेक्षित था। अतः उसने सोचा कि अपनी पत्नीको कहीं मार्गमें सोते हुए छोड़ कर चला जाऊँगा, जिससे जो खाद्यपदार्थ अवशिष्ट हैं, वे कुछ अधिक दिनों तक चल सकेंगें।

उसने अपने निश्चयके अनुसार उज्जैनी नगरीमें निर्झरगतिको सोते हुए छोड़ दिया। प्रातःकाल जब वह जागी और अपने पतिको वहाँ न पाया तो उसने विलाप करना आरम्भ किया। इसी बीच उसे मणिभद्र सेठ मिला। उसने सेठसे अपने दुःखका निवेदन किया। मणिभद्र द्रवीभूत हो गया और उसने निर्झरगतिको अपने यहाँ स्थान दे दिया और उसको पुत्रीके समान पालन करने लगा।

मणिभद्र अत्यन्त धर्मात्मा और सेवाभावी था। उसने भगवानका मन्दिर, मन्दिरकी व्यवस्थाके लिये वाटिका एवं सभी प्रकारके उपकरण बनवाये थे। भगवान्के ऊपर छत्र, भामण्डल आदि अष्टप्रातिहार्य भी प्रतिष्ठित किये थे। उसने एक वाटिका भी बनवायी थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसमें विभिन्न प्रकारके वृक्ष शोभित थे। निर्झरगति इस मंदिरमें स्वच्छता आदिका कार्य करती थी। वह प्रतिदिन तीर्थंकरकी पूजा करती और सन्ध्या समय आरती करती थी। वह भक्ति-विह्वल होकर सरस भजन गाती, स्तोत्र पाठ करती और पञ्चनमस्कार मन्त्रका जाप करती थी।

एक दिन उसने सेठ मणिभद्रको उदास देखा। वह चिन्तातुर सेठसे पूछने लगी—'तात किस कारणसे आप उद्विग्न हैं? आप अपनी चिन्ताका हेतु अवश्य बतलाइये। आप मेरे धर्म-पिता है और मैं आपकी धर्मपुत्री हूँ, अतः आपको अपने मनकी चिन्ता मुझसे नहीं छिपानी चाहिए।'

मणिभद्र—'बेटी, मेरी चिन्ताका कारण मेरा आराम है। मैं उसमें प्रतिदिन पानी देता हूँ, न मालूम वह क्यों सूखता जाता है! वृक्षोंमें फल नहीं आते और सारा बगीचा सूख रहा है। बात समझमें नहीं आती कि अदृष्टका कौन-सा यह प्रकोप, जिसके कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है।'

निर्झरगति—'पिताजी! मैं आज आपके साथ संकल्प करती हूँ कि जबतक अपने सतीत्वके प्रभावसे आपके आरामको हरा-भरा न बना दूँगी, तबतक अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगी। जो कार्य साधनके रहनेपर भी न हो, उसमें कोई अदृश्य कारण रहता है। जल-सिंचन करनेपर भी वाटिकाके सूखनेमें कोई रहस्य होना चाहिए। इस गुप्त हेतुको मैं अपने सतीत्वके प्रभावसे ही दूर कर सकती हूँ।'

निर्झरगतिने अपने संकल्पके अनुसार आहार-पानीका त्याग कर शासनदेवीकी आराधना आरम्भ की। उसके सतीत्वके प्रभावसे शासनदेवीका आसन विचलित हो गया और वह मनुष्यके रूपमें प्रकट हो निर्झरगतिसे कहने लगी—'बेटी! तुम्हारा सतीत्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मैं तुमसे अत्यधिक प्रभावित हूँ। तुम वर माँगो।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्झरगति—'मेरे धर्म-पिताका आराम हरा-भरा हो जाय तथा निर्मित जिनालय सर्वदा मंगलगानसे गुंजरित रहे।'

शासनदेवी 'तथास्तु' कहकर विलीन हो गयी।

सेठ मणिभद्रका आराम पूर्ववत् श्रीसम्पन्न हो गया। इस अलौकिक चमत्कारके कारण निर्झरगतिके सतीत्वका महत्व सर्वत्र व्याप्त हो गया। सभी आबाल-वृद्ध उसकी प्रशंसा करने लगे कि सतीत्वका प्रभाव बहुत विलक्षण होता है। यह सत्य है कि गुणोंसे ही मनुष्यका गौरव प्रकट होता है, जाति या धनसे नहीं। निर्धन व्यक्ति भी अपने गुणोंके कारण संसारमें पूजा जाता है।

निर्झरगति त्रिकाल देवदर्शन, पूजन, वन्दन और वैयावृत्य करती हुई निवास करने लगी। एक दिन उसने विचार किया—'ये संसारके भोग किंपाक फलके समान देखनेमें सुन्दर, पर अन्तमें कष्टदायक होते हैं। जो व्यक्ति मानव-शरीर प्राप्त कर इसके द्वारा धर्म-साधना करता है, उसीका जीवन सफल है। यों तो कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी आदि भी जीवन धारण करते हैं पर आत्मोत्थानके सम्बन्धमें जो विचार नहीं करता, उसका जन्म निष्फल है।'

इस प्रकार चिन्तन करनेसे निर्झरगतिका मन विरक्तिसे भर गया और उसने श्रावकके द्वादश व्रतोंका पालन किया। सामायिक, उपवास आदि क्रियाओं द्वारा शरीरको क्षीण कर दिया और अन्तमें समाधिमरणपूर्वक प्राणोंका त्याग कर सौधर्म स्वर्गमें देवशरीर प्राप्त किया।

मणिभद्रने भी धर्माचरण द्वारा शरीरका त्याग किया और उसने भी देवगति प्राप्त की। निर्झरगतिका जीव सौधर्म स्वर्गसे च्युत हो अग्निशर्माके घरमें विद्युत्प्रभा नामकी पुत्री हुआ। मणिभद्र सेठ मनुष्य जन्म प्राप्त पुनः नागकुमारदेव हुआ।

तुमने निर्झरगतिकी पर्यायमें कुलधरके यहाँ मिथ्यात्वका सेवन किया था, पर मणिभद्रके यहाँ सम्यक्त्व धारण कर पूजन, भक्ति,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदाचार और सल्लेखना धारण की, जिसके प्रभावसे तुम्हारा पूर्वार्ध जीवन कष्टमय और उत्तरार्ध सुखमय व्यतीत हो रहा है।

मणिभद्रके आरामको तुमने अपने सतीत्वके प्रभावसे हरा-भरा किया था, इसी कारण तुम्हें आरामकी शोभा प्राप्त हुई। तुमने मणिभद्रका उपकार किया था, अतः मणिभद्रके जीव नागकुमारने तुम्हारा उपकार किया।"

मुनिराज द्वारा उक्त भवावलीको सुनकर आरामशोभाको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कर्मका फल अनेक जन्मोंमें प्राप्त होता है। वैयावृत्य, पूजा-भक्ति और पञ्चनमस्कारका चिन्तन जन्म-जन्मान्तर तक सुख देता है, यह जानकर उसके मनमें पूर्णतया धर्माचरणकी भावना उत्पन्न हुई। उसने राजासे निवेदन किया—"स्वामिन्, अब मेरी इच्छा वीतरागमार्गको पूर्णतया ग्रहण करनेकी है। मैं आर्यिकाके व्रत धारण करना चाहता हूँ। आप स्वीकृति दीजिए।"

राजा—'देवि, मैं भी संसारके विषयसुखोंसे उद्विग्न हो चुका हूँ। अतः कुमारको राज्यका उत्तराधिकार सौंप साथ ही श्रमण-दीक्षा धारण करूंगा।'

आरामशोभा और राजा जितशत्रु श्रमणव्रत स्वीकार कर आत्म-कल्याणमें प्रवृत्त हो गये। उन्होंने जनसेवाका व्रत स्वीकार किया। लोकमंगल करना ही उनके जीवनका प्राप्य बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिवर्तन

"आनन्दमय आत्माकी प्राप्ति श्रद्धा-विवेकसे ही सम्भव है, विकल्पात्मक बुद्धिसे सम्भव नहीं। विकल्पबुद्धि वैषम्य, संघर्ष और घोर अशांतिका कारण है। श्रद्धा मनको द्वैतभावनासे पराङ्मुख करती है। कामवासना, मनकी चंचलता एवं विकारमयी वृत्तियोंका उन्मूलन श्रद्धा द्वारा ही होता है। जो सम्यग्दृष्टि है, विवेकी है और जिसकी आत्मामें संयम निहित है, वह व्यक्ति अनन्तचतुष्टय स्वरूप आत्मतत्त्वको उपलब्ध कर लेता है। यह निर्विकारी आत्म-तत्त्व ही प्राप्य है, यही सबसे बड़ी उपलब्धि है और मानव-जीवनकी सार्थकता इसीको प्राप्त करनेमें परिनिष्ठित है।" योगीके इस प्रवचन-को सुनकर कश्मीरनरेश अरिमतको बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। उसका मन कई दिनोंसे अशांत था। पट्टमहिषी सुन्दरीदेवीने कई दिनोंसे आत्मतुष्टि एवं सन्तान-प्राप्तिके हेतु व्रतसाधना कर रखी थी। राजा अरिमतका विश्वास था कि इष्टानिष्टकी प्राप्ति शुभोदयसे ही होती है। धन-वैभव, सम्मान-प्रतिष्ठा एवं पुत्र-पुत्रीकी उपलब्धि भी शुभोदयके विना सम्भव नहीं। अतः उक्त सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिके लिए चंचल होनेकी आवश्यकता नहीं। यह सत्य है कि राज्यका उत्तराधिकारी होना चाहिए, पर सन्तान-प्राप्ति अपने वशकी बात नहीं है।

व्रतानुष्ठानसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। असातावेदनीयका उदय व्रतीको कष्ट नहीं दे पाता, पर अनुष्ठानसे सन्तान-लाभ हो ही जाय, यह तर्कसंगत नहीं। सुन्दरीको राजा अरिमतने बहुत समझाया कि सन्तानलाभके लिए चिन्तित रहनेकी आवश्यकता नहीं। शुभोदय आनेपर अवश्य पुत्रलाभ होगा। किन्तु नारी-सुलभ अधैर्य दूर न हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सका। बाध्य होकर राजाने सन्तान-प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके विधि-विधान करनेकी स्वीकृति दे दी।

आज राजपरिवार प्रसन्न है, महारानी सुन्दरीने एक लालको प्रसूत किया है। इस शिशुके तेज और सौन्दर्यसे राजभवनका कोना-कोना आलोकित हो गया है। माता-पिताका रागभाव पुत्रको प्राप्तकर कई गुना बढ़ गया है। हृदयकी ममत्ववृत्ति विस्तृत हो गयी है। पुत्रका नाम ललितांग रखा गया। राजा अरिमतको पुत्रप्रेमने विशेष आकृष्ट किया। वे राजकार्योंका संचालन भी राजभवनमें करने लगे। ललितांग भी माता-पिताके असीम स्नेहको प्राप्तकर वृद्धिगत होने लगा। उसने अपनी बालक्रीड़ाओंद्वारा पुरजन-परिजनका विशेष मनोरंजन किया।

शनैः-शनैः किशोरावस्था पारकर ललितांगने यौवनको देहली पर पैर रखा। माता-पिताके अधिक दुलारने उसको हठीला, दुराग्रही और क्रूर बना दिया। विद्याध्ययनमें भी उसका मन न लग सका और वह विद्यासे शून्य रह गया। यद्यपि पिता अरिमतने कुमारको शिक्षित बनानेका पूर्ण प्रयास किया, पर फल कुछ नहीं निकला। कुमार दुष्टसंगतिमें पड़ गया, फलतः उसमें विभिन्न प्रकारके दुर्गुण प्रकट होने लगे। जिस प्रकार नीमके पत्तोंके संसर्गसे मधुर जल कटु हो जाता है, उसी प्रकार बुरे और दुष्टोंके संसर्गसे ललितांग भी क्रूर और दुराचारी हो गया। गाली देना, मार-पीट करना पानी भरनेवालियोंके घड़ोंको फोड़ देना, युवतियोंको अपमानित करना एवं वृद्धोंको तंग करना उसकी क्रीड़ाओंमें परिगणित हो गया। नगरवासी ललितांगसे बहुत परेशान थे। बच्चे ललितांगका नाम सुनते ही रोना बन्द कर देते थे और भयभीत हो जाते थे।

ललितांगने चोर, गुण्डों और लुटेरोंको एकत्रकर अपना दल संघटित किया। नगरके प्रमुख बाजारों और भवनोंको लूटने लगा। वह मनोविनोदके लिए एक व्यक्तिके सिरको पकड़कर दूसरेके सिरसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टकराता, इस प्रकार दोनोंके सिरको फोड़कर शान्त होता। वह नगरकी वेश्याओंको पकड़कर बलपूर्वक आद्धदेवीके मन्दिरमें लाकर नृत्य कराता और रातभर उनका नृत्य देखकर प्रसन्न होता। यदि मार्गमें कोई जाता हुआ मिल जाता तो उसे अपने साथियोंसे पिटवाता तथा बाँधकर पेड़से लटका देता। ललितांगको मार-पीटके कार्योंमें अत्यधिक आनन्द आता था। नगरमें भिक्षाके लिए घूमनेवाले भिक्षुकों एवं यात्रियोंको नाना प्रकारकी क्रूरतापूर्वक यातनाएँ देता था। उसके उपद्रव विचित्र प्रकारके होते थे, सभी वर्गके लोग परेशान थे, किसीमें इतना साहस नहीं था कि वे ललिताङ्गकी शिकायत राजासे कर सकें। शिकायत करनेवालोंको यमराजका अतिथि बनते विलम्ब नहीं होता।

तैलियों, मालियों एवं स्वर्णकारोंके बाजारमें जाकर उसने अपार लूट-पाट की। कई मन तैल लेजाकर देवीके मन्दिरमें होलिका प्रज्वलित की। समस्त व्यापारी ललितांगको देखकर भयभीत हो जाते थे और प्राणरक्षाके लिए त्राहि-त्राहि करने लगते थे।

ललितांगका भय इतना व्याप्त था कि नगरके सभी नर-नारी अपना-अपना काम-धाम छोड़ जान बचानेके लिए छिप जाते थे और जिधरसे ललितांगकी आवाज आती, उधर ही कान खड़ेकर चौकन्ने हो जाते थे। ललितांग सदा धूर्त, व्यसनी और कामुक साथियोंको एकत्रकर स्त्रियोंकी चर्चा किया करता था। वह कहता था कि आज अमुक मोहल्लेके अमुक व्यक्तिकी युवती, लड़की या वहूको रातमें सोते हुए उठाकर लाना है। प्रायः ललितांग अपनी इच्छाको पूर्ण कर ही लेता था। नगरवासी अत्यन्त त्रस्त और भयाक्रान्त थे।

: २ :

एक दिन नगरवासियोंने एक बृहद् सभा की और विचार-विनिमयकर निश्चय किया कि अब राजकुमारके अत्याचारोंको सहन नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जा सकता है। आराम और शान्ति नष्ट हो चुकी है। जहाँ जान-माल अरक्षित हो, ऐसे राज्यमें रहनेसे क्या लाभ ? अब हमें अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर राजकुमारके अत्याचारोंकी शिकायत राजासे करनी चाहिए। यदि राजा हमारी प्रार्थना न सुने तो हमें नगर त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

प्रमुख नागरिक अपना प्रतिनिधि-मण्डल लेकर राजसभामें पहुँचे और राजासे निवेदन करने लगे—"राजन् ! आपका पुत्र निरंकुश हाथीके समान समस्त नगरवासियोंको कुचल रहा है। कुमारकी लीलाओंका कथन करनेसे हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारा जीवन कीड़े-मकोड़ोंके समान नष्ट किया जा रहा है, हमारी बहू-बेटियोंका शील लूटा जा रहा है। शहरमें न कोई नियम है और न कानून। राजकुमारकी इच्छा ही नियम है और उनकी क्रियाएँ संविधान हैं। राजकुमारने सभीके घर-द्वारको लूट लिया है, दुकानों-के सामानको तोड़-फोड़ डाला है। नगरमें आग लगाकर सहस्रों रुपयोंका सामान भस्म कर दिया गया है। कुमारने अनेक लोगोंकी हड्डी-पशली तोड़ दी है, अनेकोंकी खाल खींच ली है और बहुतोंको कोल्हूमें पेल दिया गया है। महाराज आप हमारे संरक्षक हैं, जो उचित हो कीजिए।"

राजा—"आप लोग शान्त हों, मैं कुमारको सुमार्गपर लानेका पूरा प्रयत्न करता हूँ। अब आप लोग निर्भय होकर काम-काज कीजिए। राज्यके समस्त गुण्डोंको उचित दण्ड दिया जायगा। कुसंगतिने कुमारको बिगाड़ दिया है।"

राजाने कुमारको बुलाकर प्रेमपूर्वक कहा—"वत्स ! राजा प्रजाका संरक्षक होता है। यदि रक्षक ही भक्षक बन जाय, तो फिर संसारके कार्य किस प्रकार चल सकेंगे। तुमसे मुझे इस प्रकारके दुष्टतापूर्ण कार्यके किये जानेकी बिल्कुल आशा नहीं थी। यह विश्वास था कि तुम्हें प्राप्त कर मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा और अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय सुखपूर्वक व्यतीत करूँगा। पुत्र वही है, जो पिताके नामको उज्ज्वल करे, उस सन्तानसे तो निःसन्तान व्यक्ति अच्छा है, जो दिन-रात माता-पिताको कष्ट देता है। अतः अभी भी समय है, तुम सचेत हो जाओ तो इस परिवारका मंगल हो सकता है। मैं अभी भी तुमसे भद्रतापूर्ण व्यवहारकी आशा करता हूँ। आजसे राज्यके गुण्डोंको पकड़वाकर कारागृहमें बन्द कर देता हूँ।"

कुमार—"पिताजी ! आपका कथन यथार्थ है, मैं अपने शक्त्य-नुसार उपद्रवोंको रोकनेका प्रयास करूँगा।"

कुमारके साथी—"ललितांग ! तुम नहीं समझते कि संसारमें धनका क्या महत्व है, जहाँ भी स्त्री और धन दिखलायी पड़े, वहाँसे उसे ले लेना ही बुद्धिमानी है। जनता तो भेड़-बकरीके समान है। ये लोग इच्छापूर्वक धन थोड़े ही देते हैं, वह बलपूर्वक उनसे ले लिया जाता है। अतः हम लोग अपने कार्योंको बन्द नहीं कर सकते। धन लूटना और सुन्दरियोंके साथ आनन्द करना, यह तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तुम साधु बनकर रह सकते हो, पर हम लोग अपना कार्य छोड़ नहीं सकते।"

अपने साथियोंके समक्ष कुमार लाचार हो गया। उसने उन्हें बहुत समझानेका प्रयत्न किया, पर उसकी एक न चली। उसकी स्थिति साँप-छछूँदरवाली थी। वह पिताको भी नाराज नहीं करना चाहता था और साथियोंको भी रोक नहीं सकता। इस मानसिक द्वन्द्वको वह अधिक समय तक सह न सका। उसने मनमें निश्चय किया कि पिता क्रुद्ध होकर मुझे घरसे निर्वासित कर सकते हैं, पर ये साथी तो नाराज होकर मेरे प्राण ही ले लेंगे। अतएव इनको अप्रसन्न करना उचित नहीं। साथियोंके साथ रहनेसे धनकी कमी नहीं आयेगी और मनचाही युवतियाँ भी मिलती रहेंगी। यदि पिताजी अधिक आग्रह करेंगे, तो उनसे भी निपट लिया जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ३ :

राजकुमारने पूर्ववत् लूट-पाट आरम्भ रखी। नगरके सभी व्यक्ति कुमारके कार्योंसे परेशान थे। उसके आतंकके कारण बाजार बन्द रहते थे। सड़कपर युवतियाँ निकल नहीं सकती थीं। उनका शील चौराहोंपर नष्ट किया जाता था। बन्दरोंके झुण्डके समान लुटेरों और गुण्डोंका यह समूह संगठितरूपसे आक्रमण करता जिससे प्रजा बहुत दुःखी थी।

राजाको पुनः कुमारके दुष्कृत्योंका समाचार सुनाया गया। कुमारके उक्त कार्योंको सुनकर वह ब त दुःखी हुआ। वह सोचने लगा—

"खादके बिना उत्पन्न हुआ धान्य, विना शिक्षाका पुत्र और असमयकी वर्षा कभी भी सफल नहीं होती। जिस प्रकार सूअरकी संगतिसे गायका बछड़ा मल भक्षण करने लगता है, उसी प्रकार राजकुलोत्पन्न यह ललितांग दुष्टोंकी संगतिसे बिगड़ गया है। नदीका मधुर जल समुद्रमें मिलनेसे खारी हो जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुष भी कुसंगतिमें पड़ते नष्ट हो जाते हैं। यह सत्य है कि संगतिसे ही गुण उत्पन्न होते हैं और संगतिसे ही नष्ट। ललितांगके विनाशका कारण उसकी कुसंगति है।"

"पृथ्वीकी रक्षा करना, दुष्टोंका निग्रह करना, शिष्टोंका संरक्षण करना, सद्धर्मकी रक्षा करना, धूर्त्तों-लुटेरों-चोरोंको देशसे बाहर निकाल देना, प्रजाका सब प्रकारसे संरक्षण करना, अनीति और कुमार्गका त्याग करना, शरणागतकी रक्षा करना एवं व्यसनोंका त्यागना ही क्षत्रियोंका कर्त्तव्य है। क्षत्रिय शब्दका अर्थ है, दुःखोंसे दूसरोंकी रक्षा करना। क्षत्रिय कभी भी निरपराधियोंकी जान नहीं लेते, वे सर्वदा दुःखियों, दरिद्रों और निर्बलोंकी सहायता करते हैं। जिस प्रकार बालकके सुखके लिए माँ सभी प्रकारके कष्ट स्वयं सहन करती है, सुखकी कामना करनेवाला जैसे चारित्र और शीलकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्षा करता है, उसी प्रकार पुत्रवत् प्रजाका पालन करना राजाका कर्त्तव्य है। जो प्रशासक अपनी प्रजाको प्राणोंके समान नहीं समझता वह अत्यन्त क्षुद्र और नीच है।"

"चन्द्रमा जिस प्रकार समस्त कलाओंसे युक्त होनेपर शोभित होता है, सूर्य प्रकाशसे युक्त होनेपर शोभता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाका हित करनेपर ही शोभित होता है। जो प्रशासक जनताको सन्तुष्ट नहीं कर सकता, वह कर्त्तव्य च्युत होनेके कारण नीच और पापी माना जाता है। प्रशासकका परम कर्त्तव्य है कि वह जनताकी सब प्रकारसे देखभाल करे और उसके जान-मालकी रक्षा करे।"

राजा अरिमतने कुमार ललितांगको बुलाकर डाँटते हुए कहा—"अरे कुमार! जैसे दूध पिलानेपर भी साँप विष ही उगलता है, उसी प्रकार तुम मेरे उपदेशामृतके अनन्तर भी अपने उपद्रवोंको नहीं छोड़ सके। अग्निका छोटा-सा कण जिस प्रकार वायुके झोंकेसे तेज हो जाता है, उसी प्रकार तुम भी गुण्डोंके सम्पर्कमें वैसे ही बन जाते हो। तुमने अभी अपने पुराने कार्योंका त्याग नहीं किया है। तुम्हारे अत्याचारोंसे जनता कराह रही है। अतएव अब तुम्हें मेरे राज्यमें रहनेकी आवश्यकता नहीं। तुम्हें राज्यसे बाहर हो जाना चाहिए, अन्यथा तुमको प्राणदण्ड प्राप्त होगा।"

ललितांग पिताके क्रोधपूर्ण वचनोंको सुनकर सहम गया। वह डरता हुआ माँके पास पहुँचा और नम्रता पूर्वक कहने लगा—"मेरी स्नेहमयी माँ! पिताजीने मुझे देश निकाला दे दिया है, अब तो आप ही मेरी रक्षा कर सकती हैं। पिताजीके क्रोधानलसे बचानेकी शक्ति आपमें ही है। आपकी जिस स्नेहमयी गोदमें मैंने आनन्दसे बचपन बिताया, युवावस्थाको प्राप्त हुआ, क्या अब उस गोदमें मुझे स्थान नहीं मिलेगा।"

माँ—"पुत्र! तुम नहीं जानते, तुम्हारे पिता तुमको कितना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नेह करते थे। उन्होंने तुमको सुमार्गपर लानेके लिए कितना समझाया। तुमने राजसभामें उपद्रव और अत्याचार छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा भी ली, पर तुम उस प्रतिज्ञाका पालन चार-छः दिन तक भी नहीं कर सके। प्रेम पूर्वक समझानेका तुम्हारे ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ। अतएव इस राज्यमें तुम्हारे लिए स्थान नहीं है। स्त्रीका बन्ध्या रह जाना अच्छा है, पर दुष्ट सन्तानका होना अच्छा नहीं। तुमने मेरे उदरसे जन्म लेकर मुझे भी निन्दनीय बनाया है। तुम कुलके लिये कलंक हो, अतः तुम्हारा अब इस राज्यमें निवास करना उचित नहीं। तुमको यहाँसे शीघ्र ही चले जाना चाहिए। महाराज के क्रोधसे मैं तुम्हारी रक्षा करनेमें असमर्थ हूँ।"

माताके इन वचनोंको सुनकर ललितांग क्रोधाभिभूत हो गया। मदिरापान किये रहनेके कारण वह माँ-बापको गालियाँ देने लगा। वह अपना होश खो चुका था, अतः नाना प्रकारसे माँ-बापकी भर्त्सना करता हुआ घरसे बाहर चला गया।

ललितांगने अपने धूर्त साथियोंको एकत्रकर एक गिरोह तैयार किया। वह सैकड़ों साथियोंके साथ नैपालकी ओर चल दिया। वह चौर्यकलामें इतना निपुण था कि जिस कार्यको कोई नहीं कर सकता था, उसे वह कर दिखलाता। हत्या करना, नारियोंके सतीत्वका अपहरण करना उसके लिए साधारण बात थी।

चौर्यकलामें सफलता प्राप्त करनेके लिए उसने 'अंजनवटी विद्या' को सिद्ध किया, जिससे अदृश्य होकर इच्छित वस्तुको चुरा लेता था। अंजनवटीके प्रभावसे वह तो सभीको देख सकता था, पर उसे कोई नहीं देख पाता। ललितांगके विचित्र कार्योंकी प्रसिद्धि सर्वत्र हो गई, जिससे सर्वसाधारणमें उसका नाम अंजनचोर प्रसिद्ध हो गया।

ललितांग व्यसन सेवनमें आकण्ठमग्न हो गया। चोरी करना, जुआ खेलना, मांस खाना, मदिरापान करना, शिकार खेलना, वेश्यागमन करना और परस्त्री सेवन करना इन सात व्यसनोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिदिन सेवन करने लगा। सदाचार और धर्म-कर्मको भूलकर निरन्तर दुराचारमें प्रवृत्त रहने लगा।"

कुछ दिनोंके पश्चात् नाना देशोंमें भ्रमण करता हुआ ललितांग अपने दलके साथ राजगृह नगरमें आया। इस नगरमें अप्रतिम सुन्दरी अनंगसुन्दरी नामकी वेश्या निवास करती थी। ललितांग इस वेश्याको देखते ही मोहित हो गया और उसीके यहाँ निवास करने लगा। ललितांगके पास धनकी कमी थी ही नहीं; चोरी और लूट-पाटमें वह प्रचुर धन लाता। साधारणतः उसका गिरोह ही उसके लिए धनकी व्यवस्था करता था। जब कहींसे अतुल धनराशि लानेकी समस्या उपस्थित होती, तभी ललितांग अंजनवटीके प्रभाव से चोरीमें प्रवृत्त होता। अनंगसुन्दरीकी प्रत्येक इच्छाको पूर्ण करनेमें ही वह अपने जीवनको सार्थक मानता था।

:४:

अनंगसुन्दरी ललितांगके धन-वैभवसे बहुत प्रसन्न थी। प्रत्येक रात्रिमें लाखों रुपयोंकी वस्तुएँ उसके घर आ जातीं। मणि-मणिक्य-मय आभूषण एवं दिव्य वस्त्रोंकी उसे कमी नहीं थी। ललितांग चोरीमें इतना प्रवीण था कि नारियोंकी आँखोंका अंजन भी चुरा लाता था। संसारके किसी भी वैभवको प्राप्त करना उसके लिए कठिन नहीं था। अनंगसुन्दरीको भी उसकी क्षक्तिपर पूरा विश्वास था। ललितांग अपनी प्रेयसी अनंगसुन्दरीको अपने साहसकी कथाएँ सुनाता और चोरी करनेकीं विधि, स्थान एवं अन्य समस्त प्रक्रियाएँ भी वतलाता रहता था। उसकी शारीरिक क्षमता और रूप-लावण्य-से भी अनंगसुन्दरी मुग्ध थी। अनायास ही इस प्रकारके व्यक्तिकी प्राप्तिको वह अपने जीवनके लिए वरदान मानती थी। दोनोंका जीवन एक दूसरेको प्राप्तकर सुखी और समृद्ध था। संसारके समस्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैभवको वे लोग तुच्छ समझते थे और बिना किसी बाधाके विषय-सुखोंमें संलग्न रहते थे।

एक दिन राजगृह नगरका नृपति अपने परिवार सहित जल-क्रीड़ा और वनविहारके लिए जा रहा था। साम्राज्ञी भी राजाके साथ हाथीपर बैठी हुई थी। रानीके गलेमें ज्योतिप्रभा नामक मणियोंका हार चमक रहा था। जब वेश्याकी दृष्टि रानीके गलेके हारपर पड़ी, तो वह उसे देखकर ललचा उठी और उसे प्राप्त करनेके लिए अपने प्रेमी ललितांगसे कहने लगी—

"आपने आज तक मुझे नाना प्रकारके वस्त्राभूषण प्रदान किये हैं, पर इस ज्योतिप्रभा हारके अभावमें वे सभी आभूषण निरर्थक हैं। आपके पास अंजनवटिका विद्या है, जिसके प्रभावसे आप इस हारको सरलता पूर्वक ले आ सकते हैं। आपका अंजनचोर नाम भी तभी सार्थक माना जायगा, जब आप इस हारको लाकर मुझे दे देंगे।"

अंजनचोर—"प्रिये! तुम्हारा यह आग्रह मेरे प्राणोंपर संकट डालनेवाला है। राजाके यहाँ अनेक पहरेदार रहते हैं। कोतवाल आदि भी सदा सतर्क रहकर पहरा देते हैं। अतः रनिवाससे इस हारका अपहरण करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है।"

अनंगसुन्दरी—"प्रियतम! आप आज कैसी बातें कर रहे हैं, आपके लिए संसारका कौन-सा कार्य असाध्य है? आप जब आँखोंका अंजन ला सकते हैं, तो यह हार क्या वस्तु है?"

अंजनचोर—"प्राणवल्लभे! आप समस्त परिस्थितियोंको नहीं जानती हैं, इसी कारण इस प्रकारका आग्रह है। प्राण संकटमें डालकर कार्य करना उचित नहीं। जीवन है, तो सभी वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं, जब जीवन ही नहीं रहेगा तो फिर वस्तुओंका उपयोग ही क्या होगा। मैं जानता हूँ कि इस हारको प्राप्त करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है। यदि मैं इसे प्राप्त करनेकी अनधिकार चेष्टा करूँगा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो निश्चय ही मैं पकड़ा जाऊँगा और मुझे प्राणदण्ड भोगना पड़ेगा।"

अनंगसुन्दरी—"मेरे हृदयसम्राट् ! आपकी अंजनवटिका विद्या कब काम आयेगी ? इस प्रकारकी परिस्थितियोंमें ही तो आप उसका उपयोग कर सकते हैं। अतः आप अंजनवटिकाके प्रयोगद्वारा ज्योतिप्रभा हारको प्राप्त करनेमें सफलता प्राप्त करनेका श्रम कीजिए।"

अंजनचोर—"तुम जानती नहीं, इसीलिए इस प्रकारकी बातें कर रही हो। अंजनवटिकाका प्रभाव शुक्लपक्षमें नहीं होता। जब शुक्लपक्ष समाप्त हो जायगा, तब आपकी इच्छाको, मैं पूर्ण करनेका प्रयास करूँगा। यद्यपि इसमें भी खतरा है, तो भी मैं आपकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए बद्धकटि रहूँगा।"

अनंगसुन्दरी—"आपका मेरे ऊपर यथार्थ प्रेम नहीं है, इसी कारण बातें बनाकर टाल देना चाहते हैं। यह हार आपके लिए दुर्लभ है, यह आश्चर्यकी बात है। मैं साफ-साफ कह देना चाहती हूँ कि यदि कल तक मुझे हार न मिला तो मैं प्राणघात कर लूँगी। इस हारके बिना मैं एक क्षण भी जीवित रहना नहीं चाहती, एक-एक क्षण सौ-सौ वर्षोंके समान प्रतीत हो रहा है। आपको मेरे प्राणोंकी परवाह नहीं है, तो कोई बात नहीं। मैंने आजसे अन्न-जलका त्याग किया, जब तक हार नहीं आ जायगा, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी।"

अंजनचोर—"हठ करना अच्छी बात नहीं है। हार लानेमें मेरे प्राण संकटमें फँसे रहेंगे। बहुत संभव है कि मुझे पकड़े जानेपर शूलीकी सजा प्राप्त हो।"

अनंगसुन्दरी अपने हठपर दृढ़ रही और उसके स्त्रियोचित नाज-नखरोंने अंजनचोरको द्रवित कर दिया, जिससे उसे पट्टमहिषीके गलेमेंसे ज्योतिप्रभा हारको चुरानेके लिए प्रवृत्त होना पड़ा। अंजनचोरने मन्त्रित अंजन अपने नेत्रोंमें लगाया, जिससे उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई। अपनेको छिपाता हुआ रनिवासमें प्रविष्ट हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवसर प्राप्तकर उसने मणियोंके तेजसे चमकते हुए ज्योतिष्प्रभा नामक हारको रानीके गलेसे निकाल लिया। अभी तक इस हारके तेजसे समस्त अन्तःपुर व्याप्त था, चारों ओर मणितेज फैल रहा था, जिससे दीपकोंका प्रकाश भी क्षीण हो गया था। अंजनचोरने हारको एक कपड़ेमें बाँध लिया, किन्तु उसके तेजको वह छिपा न सका। जब अन्तःपुरका मणिप्रकाश नष्ट हो गया, तो पहरेदारोंको अशंका हुई। उन्होंने कोतवालको सूचित किया। कोतवाल तथा अन्य कई सिपाहियोंने अंजनचोरका पीछा किया। अंजनचोर भागने लगा, पर हारका प्रकाश इतना दिव्य और स्वच्छ था कि प्रयत्न करनेपर भी वह अपनेको छिपा नहीं सका। अंजनविद्याका प्रयोग शुक्लपक्षके कारण हो नहीं रहा था, जिससे अंजनचोरको अत्यन्त विपत्तिका सामना करना पड़ा।

: ५ :

जब अंजनने देखा कि अब इस हारके तेजको छिपाना सम्भव नहीं। इसके रहनेसे पकड़े जानेमें विलम्ब नहीं है, तो उसने हारको फेंक दिया और स्वयं जी-तोड़ दौड़ने लगा। वह नगरकी चहार-दीवारोंको लाँघकर श्मशान भूमिकी ओर बढ़ा, वहाँपर एक वृक्षके नीचे दीपक जलते हुए देखकर वह उस पेड़के नीचे पहुँचा और ऊपरकी ओर देखने लगा। उसने देखा कि उस वृक्षपर एक एकसौ आठ रस्सियोंका सींका लटक रहा है और उस सींकेके नीचे भाला, वर्छा, तलवार, असिधेनुका, फर्सा, शूल आदि बत्तीस प्रकारके अस्त्र गाड़े गये हैं। एक व्यक्ति पूजाकर णमोकार मन्त्र पढ़ता हुआ एक-एक रस्सी काटता जाता था। प्रत्येक रस्सी काटनेके बाद वह भयसे नीचेकी ओर देखता जाता था, क्योंकि नीचे गिरते ही अस्त्रोंसे कट-कर मृत्यु निश्चित थी। अंजनने उससे पूछा—"मित्र तुम कौन हो? तुम्हारा क्या नाम है? और तुम कौन-सा अनुष्ठान कर रहे हो?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधक—"मेरा नाम वारिषेण है। मैं गगनगामिनि विद्या सिद्ध कर रहा हूँ। विद्यासाधक णमोकार मन्त्र जिनदत्त सेठने दिया है और उसीने विद्यासिद्धिकी समस्त विधि बतलायी है।"

अंजन—"तुम्हारे व्यवहारसे ऐसा ज्ञात होता है कि तुम्हें जिनदत्तसेठके वचनोंपर विश्वास नहीं है, इसी कारण तुम भयभीत होकर विद्या सिद्ध कर रहे हो। विद्यासिद्धिमें तुम्हें शंका है, शंकालु-को मन्त्रसिद्धि नहीं हो सकती है। मन्त्रसिद्धिके लिए दृढ़ विश्वासका होना आवश्यक है। जो श्रद्धालु है, जिसके हृदयमें आप्तपुरुषोंके वचनोंपर अटूट श्रद्धा है, वही कार्य सिद्ध कर सकता है।"

"णमोकार मन्त्रका प्रभाव अद्भुत है। इस मन्त्रकी साधना करनेसे बड़े-से-बड़े कार्य सिद्ध हो सकता है। आगममें बताया गया है कि णमोकार मन्त्रका जाप करनेवाला सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो सकता है। मैंने अब तक जीवनमें निन्द्य आचरण किया है। अब मैं णमोकार मन्त्रकी साधनासे समस्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर सकता हूँ।"

"मैंने राज परिवारमें जन्म ग्रहण किया है। मेरे वंशमें अर्हंत पूजा होती है, मेरी माँ प्रतिदिन णमोकार मन्त्रका जाप करती है। वचपनमें मैंने भी णमोकार मन्त्रको याद किया था। कुसंगतिमें पड़कर मैं अपने कुलधर्मसे पृथक् हो गया और हिंसा, चोरी आदि कुकर्मोंमें प्रवृत्त रहा। मेरा आचरण विगड़ चुका है, किन्तु णमोकार मन्त्रके प्रभावसे मैं पुनः अपने कुलधर्मको प्राप्त कर सकता हूँ। आश्चर्य है कि इतने दिनों तक मैं अशुभोदयके कारण अपने वास्तविक मार्गको भूला रहा। अब समय आ गया है, जिससे मुझे णमोकार मन्त्रका स्मरण हो आया है।"

अंजनने अपने मनमें भक्तिभाव पूर्वक णमोकार मन्त्रका जाप करते हुए वारिषेणसे अनुरोध किया—"महानुभाव! यदि आपको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यासिद्धिपर आस्था नहीं है, तो आप मुझे इस मन्त्रको दे दीजिए। मैं गगनगमिनी विद्याको सिद्ध कर लूँगा।"

वारिषेण प्राणोंके मोहमें फँस गया। वह सोचने लगा—"यदि इस अन्तिम रस्सीके कटनेपर विद्यादेवी उपस्थित नहीं हुई तो मृत्यु निश्चित है। प्राणोंकी आशंका है, अतः इस विद्यासिद्धिको छोड़ देना ही कल्याणकारी है। यदि मैं इस आराधनामें मर गया तो इस लोकके अभ्युदयोंको कौन प्राप्त करेगा।"

वारिषेणका मन आन्दोलित हो गया, वह घबड़ा गया। उसकी श्रद्धा विचलित हो गई अतएव वह साधना छोड़नेके लिए तैयार हो गया।

अंजनने वारिषेणका स्थान णमोकार मन्त्र जपते हुए स्वीकार किया। उसने आस्थापूर्वक मन्त्र-जाप करना आरम्भ किया तथा विधिपूर्वक रस्सियोंको छिन्न करने लगा। जैसे-जैसे वह रस्सियोंको काटता जाता, वैसे-वैसे उसके मनमें अपूर्व उत्साह और श्रद्धाका संचार होता जाता। पंचपरमेष्ठीका ध्यान करनेमें वह अपना सर्वस्व भूल गया। जीवनभर अशुभाचरण करनेपर भी आज उसके मनमें अपूर्व पवित्रता और विशुद्धता विद्यमान थी। उसे णमोकार मन्त्रके प्रभावसे एक नया आलोक दिखलाई पड़ रहा था। वह यह भूल चुका था कि कोतवाल उसका पीछा कर रहा है, और उसने ज्योतिष्प्रभा हारको चुराया है। वह अनंगसुन्दरीसे प्रेम करता है तथा उसके साथी लूट-पाट करते हैं।

"आश्चर्य यह है कि विचारधाराके बदलते ही उसका मन-मस्तिष्क सब कुछ परिवर्तित हो गया। कुछ क्षण पूर्वका अंजन अब अंजन नहीं रहा, उसका मन निरंजन बननेके लिए आतुर हो गया। उसने अपूर्व साहस, दृढ़ता और उत्साहपूर्वक रस्सियोंका काटना आरम्भ किया। अन्तिम रस्सीके कटते ही जैसे ही वह अस्त्रोंके ऊपर गिरनेवाला था कि विद्यादेवीने आकर उसे ऊपर ही उठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिया और उपस्थित हो कहने लगी—"वत्स, तुम्हारी साधनासे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति बेजोड़ है। तुम क्या चाहते हो, शीघ्र बतलाओ।"

अंजन—"देवि ! अब मुझे किसी भी प्रकारकी लौकिक कामना नहीं है। मैं आकाशगामिनी विद्या द्वारा समस्त त्रिलोकवर्ती चैत्य-चैत्यालयोंके दर्शन करना चाहता हूँ। सर्वप्रथम मैं अपने उपकारी जिनदत्तसेठके दर्शन कर उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ। इस जीवनमें मानवताका संचार जिनदत्त सेठकी कृपासे ही हुआ है। मैंने अबतक दुराचारका सेवन किया, पर आज मेरा-कायापलट हो गया। जीवनकी दिशा ही मुड़ गई, मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह अभिनव प्रभात कैसे हो गया। अनंग-सुन्दरीको भी धन्यवाद दूँगा, जिसने अपने दुराग्रह द्वारा मुझे इस मार्गको प्राप्त करनेका अवसर दिया। आज मेरा वास्तवमें नया जन्म हुआ है। अब मैं अपने इस अवशिष्ट जीवनको रत्नत्रयकी साधनामें लगाऊँगा।"

गगनगामिनी विद्यादेवी—"वत्स ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। इस समय सेठ जिनदत्त सुमेरु पर्वतपर स्थित नन्दन और भद्रशाल वनमें जिनेन्द्रप्रभुकी पूजा कर रहे हैं। अतः मैं अपने प्रभावसे आपको उनके पास पहुँचा देती हूँ।"

अंजन सुमेरु पर्वतपर स्थित जिनालयोंको देखकर आश्चर्यमें पड़ गया। यहाँ विविध ऋतुके फल-पुष्प विकसित हो रहे थे। पुष्पों पर नाना प्रकारके भ्रमर गुंजार कर रहे थे। मलयानिल पुष्पोंकी गन्धको लेकर बह रहा था। विद्याधरदम्पति विहार कर रहे थे। चैत्यालयोंमें जय-जयकारकी ध्वनि गूँज रही थी। भक्त आत्मविभोर होकर भगवद्भक्तिमें संलग्न थे। अंजनने चैत्यालयोंके दर्शन किये,

अपने किये गये पूर्वकृत्योंकी आलोचना की तथा मनमें प्रायश्चित्त ग्रहण किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ६ :

जिस चैत्यालयमें जिनदत्तसेठ पूजन कर रहा था, उस चैत्यालय में सब जगह स्फटिक मणियाँ लगी हुई थीं। सोपान वज्रका बना हुआ था, दरवाजोंपर वैडूर्य मणियाँ जटित थीं। वज्रके कपाट और सूर्यकान्त मणिकी चौखट बनायी गयी थी। पद्मराग मणियोंके कलश, मरकत मणियोंके तोरण एवं मोतियोंकी झालरें लगी हुई थीं। चैत्यालयोंमें माणिक्य और हीरोंके बिम्ब विराजमान थे। अंजन इन चैत्यालयोंके सौंदर्यको देखते ही मुग्ध हो गया। उसकी भक्तिका सरोवर उमड़ पड़ा और वह भावविभोर होकर प्रार्थना करने लगा।

सर्व प्रथम अंजनने जिनदत्त सेठसे साक्षात्कार किया। जिनदत्त ने अंजनसे पूछा—"आपको यह गगनगामिनी विद्या किस प्रकार प्राप्त हुई ?"

अंजन—"सम्यक्त्वचूडामणे ! यह विद्या मुझे आपकी कृपासे ही प्राप्त हुई है। मैंने आपके द्वारा बतलायी गयी विधिसे ही आकाशगामिनी विद्याको सिद्ध किया है। मैंने यह अनुभव किया—'जो जिनेन्द्रप्रभुके वचनोंपर अटूट श्रद्धा रखता है, संसारमें उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। मैंने कुसंगतिमें पड़कर नाना प्रकारके पाप किये हैं, व्यसनोंका सेवन किया है और संसारमें जितने प्रकारके निन्द्य कर्म हो सकते हैं, उन सभीका आचरण किया है। यदि आपका पारम्पर्य सम्बन्ध प्राप्त न होता, तो मेरी अवस्था कभी भी सुधर नहीं पाती। आपने नरकसे मेरा उद्धार कर दिया। वरिषेणकी विचलित होती हुई श्रद्धाने मेरी श्रद्धाको पुष्ट कर दिया। वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी एवं अनन्त चतुष्टयके धनी जिनेन्द्रकी भक्ति मेरे हृदयमें प्रादुर्भूत हो चुकी है। मैं आपको अपना गुरु मानता हूं, अतः आपके प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति समर्पित करता हूँ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनदत्त—"भद्र ! तुम्हारे हृदयमें सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो चुका है, तुम निकटभव्य हो, जो कुछ तुमने पहले किया है, उसके लिए आलोचना, प्रतिक्रमण और पश्चात्ताप करना ही श्रेयस्कर है। अब तुम्हें रत्नत्रयकी प्राप्ति हो जानेसे अहिंसाकी साधना द्वारा आत्मोत्थान करनेमें बिलम्ब नहीं होगा।"

"जीवनकी गतिविधि समान नहीं रहती। जीवनका छोटा-सा झटका ही परिवर्तन करनेमें समर्थ होता है। मोहके कारण ही प्राणी परवस्तुओंको अपना मानता है। अतः जीवनमें त्यागका स्थान सर्वोपरि है। त्यागमें जो आनन्द है, वह भोगमें कभी नहीं प्राप्त हो सकता है। त्यागका सीधा-सादा अर्थ यही है कि जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे पर समझकर छोड़ना और अपनी वस्तुको ग्रहण करना। ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, गुण, आत्माके हैं, इनको ग्रहण किये विना आत्मसाधना संभव नहीं। धन, वैभव, स्त्री-पुत्र आदि सब पर हैं, इनको छोड़ना आवश्यक कर्त्तव्य है। पौद्गलिक कर्म जिनका आत्माके साथ सम्वन्ध है, उनका भी त्याग करना त्यागमें सम्मिलित है। कषाय, राग, द्वेषरूप आत्माकी विभाव परिणतिका त्याग करना ही सच्चा त्याग है। अतएव जो व्यक्ति अपनी आत्माका कल्याण करना चाहता है, उसे त्यागमार्गका अवलम्बन करना चाहिए।"

"जीवन-शोधनके लिए रत्नत्रयका सेवन आवश्यक है। सदाचार और संयमसे व्यक्ति जीवनमें मंगलद्वीप प्रज्वलित करता है।"

जिनदत्तके उक्त प्रवचनसे अंजनको बड़ी शान्ति मिली और वह दुर्गम स्थानोंमें स्थित चैत्यालयोंकी वन्दना कर वापस लौट आया। वह अपने माता-पिताके समक्ष उपस्थित हुआ और आत्म-निवेदन करता हुआ कहने लगा—

"पिताजी मैंने आपकी आज्ञाकी अवहेलना कर महान् अपराध किया है। युवावस्थाके आरम्भमें दुष्टोंकी संगतिमें फँस जानेसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैंने अपना सर्वनाश किया। प्रजाको नाना प्रकारके कष्ट दिये। बहू-बेटियोंका शील भ्रष्ट किया और न करने योग्य कितने ही कार्य किये। अब एक छोटे-से परिवर्तनने मेरे जीवनको बदल दिया। अब मैं अपनी भूल समझ गया हूँ। आप अपराधोंके लिए मुझे दण्ड दीजिए। प्रजाको कष्ट देनेवाले व्यक्तिको अवश्य दण्ड मिलना चाहिए।"

अरिमत—"पुत्र ! सुबहका भूला हुआ शामको घर आ जाय, तो उसे भूला हुआ नहीं माना जाता। व्यक्ति जब भूलको समझ लेता है, तो वह उसकी भूल नहीं रहती। गलतीको न समझना ही गलती है। मैं तुम्हारे इस परिवर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मेरे कुलके आधार हो और हो राज्यके उत्तराधिकारी। अब मैं तुमको उत्तराधिकार समर्पित कर निश्चिन्त हो आत्म-साधनामें प्रवृत्त होना चाहता हूँ।"

अंजन—"पिताजी ! आपका ललितांग अंजन चोर बना और अब यह अंजन निरंजन बननेके लिए प्रस्तुत है। मैं केवल आपसे स्वीकृति लेनेके लिए आया हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मैं अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर सकूँ।"

अंजनने अपनी माताके चरणस्पर्श कर उससे भी दीक्षा धारण करनेकी अनुमति माँगी। माता-पिताका उत्तर सुननेके पूर्व ही अंजन वनकी ओर चल पड़ा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संशयात्मा

जिनपालित नामके मुनिराज विहार करते हुए उज्जैनी नगरीके उद्यानमें पधारे। सन्ध्या हो जानेसे उन्होंने श्मशानभूमिमें योग-धारण कर लिया। मध्य रात्रिके इसी श्मशानमें विद्या सिद्ध करनेके लिए बिडम्ब नामक मन्त्रसाधक आया। योगस्थ जिनपालित मुनि-को मुर्दा समझ उसने अन्य मुर्दाओंके साथ चूल्हा तैयार किया और इस चूल्हेमें आग जलाकर भात बनाने लगा। जब अग्नि प्रज्वलित हो गयी, तो उसकी लपटें मुनिके मस्तक तक पहुँच गयीं और उनका समस्त शरीर जलने लगा। मुनिराज आत्मध्यानमें लीन थे और संसारकी अनित्यताका चिन्तन कर रहे थे।

मुनिराजकी ध्यान-दृढ़ताको देखकर श्मशानभूमिके रक्षकदेवका आसन हिल गया। वह समुद्रकी गर्जनाके समान भयंकर गर्जना करने लगा। मुनिराजका जयघोष सभी ओर सुनायी पड़ रहा था। इस विचित्रताको देखर बिडम्ब घबड़ा गया। उसने अग्निको बुझा दिया तथा मुनिकी परिचर्या करने लगा। प्रातःकाल होनेपर यह समाचार उज्जैनीमें पहुँचा और अनेक श्रावक मुनिराजके दर्शन करने आये।

इस नगरीमें जिनदत्त नामका एक धनिक श्रावक रहता था। वह भी मुनिराजके दर्शन करने आया और उनके दग्ध स्थानोंको देखकर दुःखी हुआ। वह आग्रह कर मुनिराजको अपने घर ले गया और वहाँ उनके घावोंकी चिकित्सा घरने लगा। सात दिनके पश्चात् जब मुनि विहार करने लगे, तो जिनदत्तने उनसे कुछ दिन और रहनेका आग्रह किया। मुनिराजने साधुके व्रतोंका वर्णन करते हुए कहा—"चातुर्मासके अतिरिक्त अन्य दिनोंमें सात दिनसे अधिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी भी नगरमें नहीं रहा जा सकता है। अतः नियमानुसार विहार करना परमावश्यक है।"

मुनिराजके विहार करनेके पश्चात् जिनदत्तने देखा कि गुप्तधन-को जिस स्थानपर रखा था, उस स्थानपर अब धन नहीं है। किसीने खोदकर धन निकाल लिया है और धनके गर्तको मिट्टीसे भर दिया है।

जिनदत्त सोचने लगा—"कई वर्षोंसे धन इसी स्थानपर रखा था। कल रात्रिमें जब मैं उसका निरीक्षण कर रहा था, तब मुनिराजने उसे देख लिया। अतः आज वही खोदकर मेरी जवाहरातको ले गये हैं। आश्चर्य है कि महान् उपसर्ग सहन करनेवाले मुनि भी चोरी करते हैं। मैं जल्दी ही जाता हूँ और उनको यहाँ लौटाकर लाता हूँ। जीवन भरकी उस कमाईको व्यर्थ नहीं जाने दूँगा। यह निश्चय है कि मुनिराजके अतिरिक्त अन्य किसीने वह धन नहीं लिया है।"

जिनदत्त निकट ग्राममें पहुँचा और वहाँ मुनिराजके चरणोंमें 'नमोऽस्तु' कहकर बैठ गया। उसने मुनिराजसे प्रार्थना की—"प्रभो! आपका विहार करनेका नियम भी पूरा हो गया। आप अब पुनः उज्जैनी चलिए। आपके घाव अभी बिल्कुल ठीक नहीं हैं, अतः आपको कुछ दिन और उज्जैनीमें रहना होगा। आप नहीं लौटेंगे तो मैं अनशन करूँगा, मेरे घरके सभी लोग सत्याग्रह करेंगे। आप अब लौटकर पुनः मेरे बाड़ेमें निवास करें। वहीं पर श्रावकोंकी सभाका प्रबन्ध हो जायगा।"

मुनिराज लौटना नहीं चाहते थे, पर जिनदत्तके अत्यधिक आग्रह के कारण उनको लौटकर उज्जैनी आना पड़ा।

अपने घर लेजाकर जिनदत्तने मुनिको एक पटा पर बैठा दिया और धन निकालनेके अभिप्रायसे निम्न कथा कहने लगा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"प्रभो! व्याघ्रखेट नगरमें दिनकर नामक व्यक्ति रहता था। इसके पुत्रका नाम कराल था। यह पुत्र बचपनमें अधिक लाड़-चाव रखनेके कारण कुसंगतिमें पड़ गया और सप्त व्यसनोंका सेवन करने लगा। वेश्याव्यसनकी अति आसक्तिके कारण उसने चोरी करना आरम्भ किया। एक दिन वह राजाके यहाँ चोरी करनेको गया। धन चुराकर जब वह जाने लगा तो पहरेदारोंने उसे देख लिया और पकड़नेके लिए उसका पीछा किया। कराल बेतहाश भागा और भागते-भागते जब थक गया और भाग निकलनेकी आशा न रही तो एक दयालु सज्जनके चरणोंपर गिर पड़ा और कहने लगा—"स्वामिन्! मैं आजसे कभी चोरी नहीं करूँगा, आप मेरी रक्षा करें।"

सज्जन व्यक्तिने उसे अपने घरमें शरण दी और जनाने वस्त्र पहनाकर अपने घरकी स्त्रियोंमें छिपा दिया। कोतवाल और पीछा करनेवाले सिपाहियोंने उसके घरकी तलाशी ली और स्त्री समझकर उसे छोड़ दिया। वह रातभर घरमें रहा, जब सभी लोग सो गये तो चुपचाप उठा और उस घरकी सारी धन-सम्पत्ति लेकर चलता बना।"

प्रभो! क्या करालका ऐसा करना उचित है? शरणागत बनकर किसीको धोखा देना कितना बड़ा पाप है? जिसने शरण दी उसीको ठगना और उसके साथ विश्वासघात करना कहाँ तक उचित है? आप स्वयं विचार करें।

जिनपालित मुनि इस कथाको सुनकर आश्चर्यमें पड़ गये और सोचने लगे कि ज्ञात होता है कि जिस कमरेमें मैं ठहरा था, उसमें धन रखा था। उस धनको किसीने चुरा लिया है और इसे मेरे ऊपर अशंका हो रही है। अतः ऐसी कथा कहनी चाहिए, जिससे इसकी शंका स्वयं ही दूर हो जाय। मुनिराज बोले—

"वत्स! द्वारावती नगरीमें नारायण नामका राजा राज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता था। यह अर्धचक्री था। एक दिन इस नगरमें दण्डक नामके मुनिराज आये। राजा मुनिका आगमन सुन प्रसन्न हुआ और उनके निकट आ 'नमोऽस्तु' कर उपदेश सुनने लगा। मुनिराज व्याधिसे पीड़ित होनेके कारण बहुत ही कृश हो गये थे। मुनिराजको रोगी समझ उनकी परिचर्या करनेकी दृष्टिसे राजाने प्रार्थना की—'प्रभो! चतुर्मास यहीं कीजिए, हम लोगोंको आपके उपदेशामृतका लाभ होगा। आप जैसे गुरुओंका समागम बड़े पुण्योदयसे होता है।' राजाका अत्यधिक आग्रह देखकर मुनिराजने 'तथास्तु' कह दिया। द्वारावतीमें चतुर्मास करनेका निश्चय हो गया।"

राजाने श्रीकान्त नामके वैद्यको एकान्तमें वुलाया और मुनिराजकी व्याधिको दूर करनेके लिए आग्रह किया। वैद्यराजने राजाके आदेशसे औषध तैयार की और उसे रानियोंके पास भिजवा दिया तथा यह कहलवाया कि इस औषधको चावलके आटेमें मिलाकर लड्डू बनाकर आहारके समय मुनिराजको दे दिया जाय। जहाँ-जहाँ मुनिराजका आहार होता, वहाँ-वहाँ औषधमिश्रित लड्डू पहुँच जाते। औषधिके इस प्रयोगसे मुनिराजकी व्याधि घटने लगी और कुछ दिनोंमें वे पूर्ण स्वस्थ हो गये।

वैद्यराजने विचार किया—'यदि मैं अपनी औषधिके चमत्कार की चर्चा मुनिराजसे करूँ तो वे बहुत प्रसन्न होंगे और यश सर्वत्र व्याप्त हो जायगा।'

श्रीकान्तने मुनिराजके समक्ष अपना परिचय प्रस्तुत करते हुए कहा—'असाध्य रोगको मैंने बड़ी बुद्धिमानी पूर्वक दूर किया है। मेरी औषधिका चमत्कार विचित्र है। मणि, माणिक्य आदिकी भस्में असाध्य रोगोंमें तत्काल कार्य करती देखी जाती हैं।'

वैद्यराजकी उक्त बातोंको सुनकर मुनिराजने वैद्यजीकी कुछ भी प्रशंसा नहीं की। केवल इतना ही कहा—'जब तक अशुभ कर्मोदय रहता है, तब तक आधि-व्याधिजन्य कष्ट भोगना ही पड़ता है, पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब शुभोदय आता है, तो समस्त व्याधियाँ तत्काल दूर हो जाती हैं।'

मुनिराजके उक्त वचनोंका मर्म न समझ सकनेके कारण वैद्य-राज सोचने लगा—"यह मुनि कृतघ्न है, मैंने इसका इतना उपकार किया और यह मेरी प्रशंसामें एक शब्द भी नहीं कह सका। वचनोंका दारिद्रय तो अत्यन्त आश्चर्यका विषय है।"

श्रीकान्तने इस प्रकार मुनिनिन्दाकर अशुभकर्मोंका आस्रव किया। संयोगवश वैद्यराज स्वयं ही बीमार पड़े और चारपाईसे उठ न सके। आर्त्तध्यानपूर्वक मरण करनेके कारण वानर पर्यायको प्राप्त हुए।

मुनिराज विहार करते हुए उसी वनमें पहुँचे, जहाँ वैद्यराजका जीव वानर निवास करता था। ज्यों ही प्रत्याख्यानकर मुनि आम्र-वृक्षके नीचे बैठकर सामायिक करने लगे, त्यों ही वृक्षपर बैठे वानर की दृष्टि उनपर पड़ी। और पूर्वजन्मके वैरका स्मरणकर उसने एक सूखी लकड़ी तोड़कर उनकी जाँघमें घुसेड़ दी। मुनिराज उपसर्ग समझकर आत्मध्यानमें लीन हो गये और उन्होंने अपने शरीरसे मोह दूर कर दिया।

बन्दरने जब सुमेरुपर्वतके समान मुनिराजको आत्मध्यानमें लीन देखा तो उनके अहिंसक आचरणका उसपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसका हृदय बदल गया, परिणामोंमें परिवर्तन हो गया। पश्चात्ताप करते हुए वह किसी जंगली पेड़का पत्ता तोड़कर ले आया और उसे मुनिराजके घावमें डाल दिया, जिससे उनका घाव तत्काल अच्छा हो गया। बन्दरने मुनिराजके पास बैठकर अणुव्रत ग्रहण किये और धर्मध्यान पूर्वक शरीरका त्याग किया, जिसके प्रभावसे वह वानर पर्याय छोड़कर देव हुआ।

श्रेष्ठिन्! विना विचारे काम करनेसे दुर्गति प्राप्त होती है। प्रायः बिना विचारे ही लोग साधुओंको कष्ट देते हैं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस आख्यानको सुनकर जिनदत्त सोचने लगा—'मुनिराजका कथन सत्य हो सकता है, पर मैं जीवनपर्यन्त अर्जित सम्पत्तिको कैसे छोड़ सकता हूँ। अतएव इन्हें सचेत करनेके लिए एक अन्य कथा कहता हूँ। शायद इस कथासे इन्हें बोध प्राप्त हो जाय।' वह बोला—

'भानुपुरा नामके नगरमें हीनबुद्धि कपिल नामका ब्राह्मण रहता था। एक दिन वह सोचने लगा कि गारुड विद्या सीखकर चारों ओर चमत्कार फैलाया जा सकता है। अतएव यश कमानेकी लालसासे पूर्वदेशके मन्त्रवादियोंके पास जाकर मन्त्र-तन्त्र सीखना चाहिए। वह अपने संकल्पके अनुसार पूर्वदेशमें गया और वहाँ उदरपोषणके हेतु कुछ कार्य करता हुआ मन्त्रविद्या सीखने लगा। विद्या समाप्तकर वह अपने घरको वापस लौटा। मार्गमें उसे एक मृत व्याघ्र मिला। यह व्याघ्र सर्पदंशसे पञ्चत्वको प्राप्त हुआ था।' उसने मन्त्र-परीक्षा करनेके लिए उस व्याघ्रकी हड्डियोंको एकत्र किया और मन्त्रित जल उसपर छोड़ दिया, जिससे व्याघ्र जीवित हो गया और उपकारका स्मरण न कर कपिलका भक्षण कर गया।'

मुनिराज! क्या उस व्याघ्रका यह कार्य उचित कहा जायगा। उपकारीके उपकारका इस प्रकार बदला चुकाना कहाँ तक उचित है? आप स्वयं विचार करें।

उक्त आख्यानको सुनकर मुनिजीको आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि जिनदत्त मूढ़मति है, इसमें विवेकशक्ति नहीं। धनकी अत्यधिक आसक्तिके कारण इसका विवेक लुप्त हो गया है। अतएव एक अन्य कथा कहकर इसके विवेकको जाग्रत करना परमावश्यक है। भ्रमोच्छेदन करनेके हेतु मुनिराज बोले—

'केसरीपुर नगरमें वासव नामका राजा राज्य करता था। इस राजाका उज्ज्वल यश सर्वत्र व्याप्त था। इस नगरके राजसेठके लड़केका नाम नन्दन था। लड़का नाना प्रकारके आभूषण पहनकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खेलने जाया करता था। पड़ोसकी एक स्त्रीको उस बच्चेके आभूषणों को देखकर लोभकषायका उदय हो गया। उसके मनमें नीच विचार उत्पन्न हुए। उसने निश्चय किया कि बच्चेकी हत्याकर आभूषण ग्रहण कर लेना चाहिए। यहाँ कौन देखता है। ये बहुमूल्य आभूषण माणिक्य, हीरे और पन्ने द्वारा निर्मित हैं। वह अपने जघन्य विचारानुसार बच्चेको फुसलाकर अपने घरके भीतर ले गई तथा गला दबाकर उसकी हत्या कर दी और कोई उसके ऊपर आशंका न करे, इसलिए लाशको साँड़के सींगोंमें लटका दिया। लोगोंने समझा कि साँड़ने ही अपने सींगोंसे बच्चेको मार डाला है।

बच्चेके न मिलनेसे माँ-बापको अत्यधिक चिन्ता हुई। वे नाना प्रकारसे विलाप करने लगे। उन्होंने पुत्रको ढूँढ़नेका प्रयास किया। अकस्मात् सींगमें बच्चेको लटकाये हुए दौड़ते साँड़को देखा। वे तुरन्त समझ गये कि इस पापी साँड़ने ही हमारे बच्चेको मार डाला है, अतः पूँछ पकड़कर साड़को मारने लगे। साँड़ मार खानेसे मुँह फाड़कर डकारने लगा।

साँड़ दौड़कर एक लुहारकी दुकानमें घुस गया और वहाँसे गर्म लोहेको मुँहसे उठाकर अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए, लेकर आ गया। जनताने जब साँड़के इस कृत्यको देखा तो वह अत्यन्त प्रभावित हुई और उसने साँड़को निर्दोष समझ लिया।

लोगोंने अनुमान लगाया कि आभूषणोंके लाभसे अवश्य किसी व्यक्तिने बच्चेको मारा है, अतः वास्तविक हत्यारेका पता लगाना चाहिए यह साँड़ सर्वथा निर्दोष है, इसने बच्चेकी हत्या नहीं की है। हत्यारा कोई अन्य ही धनलोभी है।

कोतवालको सूचना दी गई। पुलिस और राजकर्मचारियोंने गुप्तरूपसे हत्यारेका पता लगाना आरम्भ किया। राजकर्मचारियोंकी तत्परतासे वास्तविक हत्यारेका पता लगाया गया और उस दुष्टा स्त्रीको पकड़ लिया गया। राजसेठ साँड़के साथ किए गये व्यवहारसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात्ताप करने लगा। उसने अपनी गलतीका अफ़सोस किया। अतः सम्यक् जानकारी प्राप्त किये विना किसीको दोषी समझ लेना नितान्त अनुचित है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण यथार्थ स्थितिको विना जाने गलती कर बैठता है। जो व्यक्ति अपनी भूलको स्वार्थान्ध होनेके कारण नहीं देख पाता है, वह अपनी गलतीको दूसरोंके ऊपर आरोपित करता है।'

इस आख्यानको कहकर मुनिराज शान्त हो गये। उनके मुखमण्डलपर ज्योत्स्ना बरस रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि समाधिस्थ योगीके उत्तमांगपर दिव्य तेज व्याप्त है।

उपर्युक्त कथाको सुनकर जिनदत्तने विचार किया कि अपरिग्रही मुनि होनेपर भी इन्हें धनसे ममता है। इन्हींके पास मेरा धन है, अतः एक अन्य कथा सुनाकर इनसे धन प्राप्त कर लेना आवश्यक समझता हूँ। वह बोला—

'भारती नामकी नदीके किनारेपर कापालिक नामका साधु रहता था। एक दिन नदीमें बाढ़ आयी। इस बाढ़में एक हाथीका बच्चा एक वृक्षके सहारे बहते हुए चला जा रहा था। कापालिकको हाथीके बच्चे पर दया आई। अतः उसने अनेक व्यक्तियोंकी सहायतासे जलके भीतरसे उस बच्चेको निकाला और उसका पालनपोषण करने लगा।

जब यह हाथीका बच्चा बड़ा हो गया तो ऐरावत हाथीके समान मालूम पड़ता था। राजाको किसी व्यक्तिने सूचित किया कि कापालिकका हाथी सर्वश्रेष्ठ है, उस हाथीके आनेसे ही गजशालाकी शोभा हो सकती है। अभीतक जितने हाथी आपके आलानमें हैं, वे सभी कापालिकके हाथीके समक्ष तुच्छ हैं।

राजाका आदेश प्राप्त कर कापालिकने हाथी राजाके पास भेज दिया। कापालिकका हाथी अत्यन्त सबल और शक्तिशाली था। वह प्रतिदिन सांकल तोड़कर राजाके यहाँसे चला आता था। कापालिक उसे प्रतिदिन राजाके यहाँ पहुँचा देता था। जब राजाकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गजशालामें हाथीको बलपूर्वक रखनेके लिए तंग किया गया, तो हाथी बिगड़ गया और उसने लोगोंको मारना आरम्भ किया। हाथीके उन्मत्त होनेका समाचार राजाको सुनाया गया, राजा बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने कापालिकको बुलाकर उसे वश करनेका आदेश दिया। कापालिकने हाथीको पकड़ लिया और उसे आलान-में बाँध दिया। हाथी कापालिकसे बहुत बिगड़ गया और उसने एक दिन कापालिकको ही मार दिया। मुनिराज, क्या हाथीका यह कार्य उपयुक्त है। कृतघ्न व्यक्ति उपकार करनेपर भी अपकार करता है।'

जिनपालित मुनि इस कथाको सुनकर मनमें विचार करने लगे कि लोभीके मन और बाढ़के पानीको निर्मल करना बड़ा कठिन है। मैंने आख्यान सुनाकर इसके मनकी आशंकाको उन्मूलित करनेका पूरा प्रयास किया, पर इस लालचीके मनमें मेरी बात तनिक भी प्रविष्ट नहीं हुई। एक बार और मैं प्रयास करके देखता हूँ, शायद अबकी इसका मन स्वच्छ हो जाय। अतः मुनिराज कहने लगे—

'दन्तीपुर नामका नगर है। इस नगरमें अनन्तश्री नामकी सुन्दरी वेश्या रहती थी, इसकी वासवदत्ता नामकी सखी थी, इसने अनन्तश्रीको एक सुन्दर तोता लाकर दिया। पिंजड़ेमें रखकर तोते-को सारी चेष्टाएँ और हाव-भाव सिखलाने आरम्भ किये। तोतेके कारण नगरकी सभी वेश्याएँ उससे ईर्ष्या करने लगीं, जिससे उन लोगोंने उसकी हत्या करनेका भी षड्यन्त्र किया। उन वेश्याओंने वासवदत्ताको प्रलोभन देकर अपने अनुकूल बनाया। वासवदत्ताने शराबमें विष मिलाकर अनन्तश्रीको दिया। अनन्तश्री कहने लगी— "थोड़ी देरमें पीऊँगी, अभी तू गिलासको आलेमें रख दे।" वासव-दत्ता किसी कामसे बाहर चली गयी और अनन्तश्रीकी आँखोंमें नींद आ गयी।

पिंजड़ेमें बन्द तोतेका ध्यान जब शराबकी ओर गया तो उसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखा कि शराबके बर्तनके ऊपर जितनी मक्खियाँ बैठती हैं, वे सभी शराब पीते ही मर जाती हैं। अतः उसे निश्चय हो गया कि शराब-में विष मिश्रित है। उसने अपनी स्वामिनीकी रक्षाके लिए शराबके गिलासको गिरा दिया।

जब अनन्तश्रीकी आँख खुली तो शराबके गिलासको गिरा हुआ देखकर उसे उस तोतेपर बहुत क्रोध आया और तोतेको पिंजड़ेसे उठाकर पटक दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी।

शराब पर मरी हुई मक्खियोंको देखकर अनन्तश्रीको शराबमें मिले हुए विषका निश्चय हो गया और बिना विचारे किये गए कार्य पर पछताने लगी। उसके मनमें तोतेके मरनेका बड़ा भारी शोक हुआ और वह नाना प्रकारसे विलाप करने लगी।'

श्रेष्ठिन्! बिना विचारे काम करना या अपनी गलत धारणा बना लेना कहाँ तक उचित है? निर्दोष तोतेको मारनेसे जिस प्रकार अनन्तश्रीको पश्चात्ताप करना पड़ा, उसी प्रकार अज्ञानी जीव भ्रम-वश कोई काम कर देनेसे घबड़ाता है।

मुनिराजके उक्त वचनोंको सुननेसे भी जिनदत्तसेठके मनकी मैल दूर नहीं हुई। अतः वह धन निकालनेके लिए एक और कथा कहने लगा—

'अवनीभूषण नगरमें एक बढ़ई रहता था, वह बहुत ही बुद्धि-मान था। विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर प्रतिदिन वृक्ष काटकर लाता था। एक दिन वह वृक्ष काट रहा था, एक मदोन्मत्त जंगली हाथी उसी रास्तेसे निकला। हाथीसे डरकर वह पेड़पर चढ़ गया। जब हाथी निकल गया तो वह वृक्षसे नीचे उतर आया और उसी वृक्षको काट लिया।'

महाराज! क्या उपकार करनेवालेके साथ इस प्रकारका उप-कार करना उचित है? मुनिराज सेठके मनमें सन्देह जानकर कथा सुनाने लगे—

'अमरखेट नामक नगरमें चन्द्रदत्त नामका ब्राह्मण अपनी यज्ञ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दत्ता स्त्रीके साथ निवास करता था। इस स्त्रीने एक नेवला पाला। सन्तान न होनेके कारण ब्राह्मणी नेवलेको पुत्रवत् प्यार करती थी। कुछ समय पश्चात् यज्ञदत्ताको पुत्रलाभ हुआ। ब्राह्मणी अभी भी नेवलेको उसी प्रकार स्नेह करती थी। एक दिन जब ब्राह्मण ग्रामान्तरको चला गया तो ब्राह्मणीको जल-भरने जानेकी आवश्यकता हुई। अतः वह पालनेमें बच्चेको सुलाकर पानी भरने चली गयी। बच्चा नींदमें सो रहा था, इतनेमें एक साँप निकला और बच्चेको काटनेके लिए दौड़ा। नेवलेने बीचमें ही झपटकर उस भयंकर सर्पको पकड़ लिया और टुकड़े-टुकड़े कर डाले। नेवला अपनी स्वामिभक्तिको दिखलानेके लिए दरवाजेपर आ गया। जब ब्राह्मणी पानी भरकर लौटी तो नेवलेके मुखमें खून लगा देखकर बहुत क्रुद्ध हुई और आवेशमें आकर भरा घड़ा उसके ऊपर पटक दिया तथा विलाप करने लगी—"पापी तूने मेरे बच्चेको मार डाला, ले अपनी करनीका फल भोग"।

जब ब्राह्मणी रोती हुई घरमें प्रविष्ट हुई तो बच्चेको आनन्दपूर्वक सोते देखकर तथा उसके पासमें कृष्णसर्पके कई टुकड़े देखकर विलाप करने लगी। उस नेवलेकी याद सताने लगी और बिना विचारे किये गए कार्य पर उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।'

श्रेष्ठिन्! जो सन्देहमें पड़कर विना विचारे कार्य करते हैं, उन्हें पीछे वहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है।'

उक्त कथाको सुनकर भी जिनदत्त सेठके मनका भ्रम दूर नहीं हुआ और धन निकालनेके लिए पुनः कथा कहने लगा—

'प्राचीन समयमें कामुक नामक वन था। इस वनमें एक कुँआ था। इस कुँएमें एक बाघ, साँप, वन्दर और मनुष्य भूलसे गिर गये थे। एक दिन एक ब्राह्मण उस रास्तेसे गंगा-स्नान करनेके लिए निकला, उसे रास्तेसे वहुत प्यास लगी। अतः वह जलकी तलाश करता हुआ, उसी कुँए पर आया। जैसे ही उसने अपनी रस्सी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुँएमें लटकाई कि बाघने लोटेको पकड़ लिया। जिस-किसी तरह उसने बाघको कुँएसे निकाला। बाहर आकर बाघने आश्वासन दिया कि तुम घबड़ाओ मत, मेरे द्वारा तुम्हारी किसी भी प्रकारकी हानि नहीं होगी, वल्कि मैं तुम्हारे उपकारका वदला चुका दूँगा।

दूसरी वार लोटेमें साँप चला आया और वह भी प्रत्युपकार करनेका आश्वासन देकर जंगलकी ओर चला गया। तीसरी बार लोटा लटकाने पर बन्दर चला आया और वह भी नमस्कार कर कहने लगा—"आपने मुझे जीवन दान दिया है, अतः मैं आपकी सब प्रकारसे सहायता करता रहूँगा।"

ब्राह्मणने उन तीनों प्राणियोंसे कहा—इस समय मुझे सहायता की आवश्यकता नहीं है। समय आनेपर आपलोग मेरी सहायता करेंगे। प्रत्येक प्राणीका धर्म है कि वह अपने उपकारका स्मरण रखे।

चौथी बार लोटा फाँसने पर सुनार लटककर चला आया और वह भी नमस्कारकर विपत्ति पड़ने पर सहायताका आश्वासन देकर चला गया।

गंगा स्नान कर जव ब्राह्मण लौटा तो उसने सर्वप्रथम बन्दरसे भेंट की। बन्दरने उसे मधुर, सुस्वादु फल दिये। कुछ समय तक विश्राम करनेके उपरांत वह वाघके पास गया। उसने भी सम्मान और विनय पूर्वक नमस्कार किया और अमूल्य रत्न भेंट किये। इसके पश्चात् वह ब्राह्मण ताम्रकूट नगरमें सुनारके पास आया। यह भी अपने उपकारीको प्राप्त कर प्रसन्न हुआ। पर ज़व उसने ब्राह्मणके पास अमूल्य रत्न देखे तो उसके मनमें लोभ प्रविष्ट हुआ। उस दुष्ट सुनारने ब्राह्मणको एक स्थान पर ठहरा दिया और पुलिस को सूचना दी कि इसने चोरी की है। सूचना पाकर पुलिस आ गई और उसने ब्राह्मणको पकड़ लिया तथा राजाके समक्ष उपस्थित किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विपत्ति आई हुई समझकर ब्राह्मणने सर्पका स्मरण किया। अपने वचनानुसार सर्पराज उपस्थित हुआ और उसने राजकुमार को डँस लिया। साँपके डँसते ही राजकुमार मूर्छित हो गया। साँपने राजाको स्वप्न दिया कि जब तक तुम निर्दोष ब्राह्मणको मुक्त नहीं करोगे, राजकुमार अच्छा नहीं हो सकता है। इस प्रकार सर्पने ब्राह्मणको कारागृहसे मुक्त कराया और उसका धन भी दिला दिया।'

मुनिराज क्या उस सुनारका उक्त व्यवहार ठीक था? जो उपकारीके साथ अपकार करता है, उससे बड़ा नीच कौन हो सकता है। ऐसे व्यक्तिके लोक-परलोक सभी बिगड़ जाते हैं।

जिनदत्तसेठके मनमें ज्यों-के-त्यों सन्देहको देखकर मुनिराज पुनः कथा कहने लगे—'उज्जैनी नगरमें महेन्द्र नामका राजा राज्य करता था। इसका कुबेरदत्त नामका राजश्रेष्ठि था। एक दिन राजा अपने सभी सभासदोंके साथ वनक्रीड़ाके लिए गया। बनमें कुबेरदत्तको एक आमका पका फल मिला, जिस फलकी यह विशेषता बतायी गई कि इसके खानेसे वृद्ध युवा बन जाता है, पलितकेश कृष्ण हो जाते हैं। समस्त रोग-शोक नष्ट हो जाते हैं। शरीरका कायापलट इस फलके सेवनसे हो जाता है।

आम्रफलके उक्त गुणोंको अवगतकर कुबेरदत्तने निश्चय किया कि इस फलके बीजको राजाको भेंट करूँगा। राजा इसे अपनी वाटिकाओंमें बो देंगे और उस समय इसके फलोंको खाकर राज-परिवार, सेठ-सामन्त एवं प्रजा वर्ग सभी युवावस्थाको प्राप्तकर लेंगे। राजा इस बीजको प्राप्तकर मुझे अपार धनराशि प्रदान करेंगे।

अपने निश्चित विचारानुसार कुबेरदत्तने उस बीजको राजाको भेंट किया।

राजा—"श्रेष्ठिन् यह बीज कहाँसे आया है? और इसके फलके क्या गुण हैं?"

सेठ—"राजन्! यह बीज अमृत-फल-बीज है। इसके फलके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्षणसे वृद्ध युवक बन जाते हैं, समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं और शरीरमें नया कायापलट हो जाता है।"

राजा—"तब तो यह फल बहुत ही उपयोगी है। आपने इस बीजको लाकर मेरा बड़ा उपकार किया।"

राजाने सेठको पुष्कल धनराशि पुरस्कारमें दी और उस बीजको अपनी बाटिकामें बो दिया।

थोड़े दिनोंमें आमका वृक्ष बड़ा हुआ। विशिष्ट मालियोंद्वारा उसकी देखरेख की गयी। अतः उसमें फल भी आ गये। एक दिन एक चील मृत सर्पको लेकर आकाश मार्गसे चली जा रही थी और सर्पके शरीरसे रक्त टपक रहा था। इस विषैले रक्तकी एक बूँद आमके फलपर गिर गई, जिससे विषके प्रभावके कारण आमका फल पीला पड़ गया। वनमालीने उस फलको पका समझकर राजाको भेंट कर दिया। राजाने अपनी मनोकामना पूर्ण होते हुए देखकर मालीको पुरस्कार दिया और फल राजकुमारको खानेके लिए दिया। उस विषैले फलके भक्षणसे राजकुमारकी तत्काल मृत्यु हो गयी, जिससे राजा कुबेरदत्त सेठसे बहुत अप्रसन्न हुआ। सेठकी सम्पत्ति लूट ली गई और उसे कारागृहमें बन्दकर दिया गया। अन्य लोगोंका अनिष्ट न हो जाय, अतः राजाने उस आम्रवृक्षको काटनेका आदेश दे दिया।

जब नगरके दुःखी, दीन और वृद्धोंने यह समाचार सुना कि राजाकी वाटिकाके कटे हुए आमके वृक्षके फलोंके खानेसे तत्काल मृत्यु हो जाती है, तो वे बेचारे जीवनके कष्टोंसे छुटकारा पानेके लिए बगीचेमें गये और उस तथाकथित विषवृक्षके फलोंको खाकर स्वस्थ तथा तरुण बन गये। धीरे-धीरे यह सब समाचार राजाके पास पहुँचा, तो वास्तविक बात ज्ञातकर राजाको बहुत कष्ट हुआ। राजा पश्चात्ताप करता हुआ कारागृहमें गया और कुबेरदत्त-सेठको बन्धनमुक्त कर क्षमा याचना करने लगा।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेष्ठिन् ! विना विचारे जो कार्य करता है, उसे महेन्द्र राजाके समान पश्चात्ताप करना पड़ता है। किसी पर झूठा सन्देह कर लेना अच्छी वात नहीं है।

जिनदत्त सेठका संशय इस कथासे भी दूर नहीं हुआ। उसे वार-वार धनकी याद आ रही थी, अतः वह पुनः धन प्राप्तिकी लालसासे कथा कहने लगा—

'सानन्दगिरि नगरमें पुलिन्द और अमित नामक मित्र निवास करते थे। एक दिन वे घूमते हुए दैत्य नामक वनमें प्रविष्ट हुए। चलते-चलते पुलिन्दको प्यास लगी। पानीका पता उसे एक बन्दरसे मिला। उसने जलाशयमें जाकर यथेष्ट जल पिया। पश्चात् सोचने लगा कि आगे चलने पर पुनः प्यास लगेगी, अतः इस बन्दरको मारकर इसके चमड़ेकी थैली बनाकर पानी रख लेना चाहिए। अपने निश्चयके अनुसार उसने बन्दरको मार दिया और उसके चमड़ेकी थैली बनाकर उसमें पानी भर लिया और आगे चला।' मुनिराज, आप ही बतलाइये कि उपकारी वन्दरके साथ इस प्रकारका अपकार करना उचित था।

मुनिराज उक्त कथाको सुनकर आश्चर्यमें पड़ गये और सेठके सन्देहका निराकरण करनेके लिए कथा कहने लगे—

'कौशम्बी नामकी नगरीमें विशाख नामका एक सेठ रहता था, इसके पुत्रका नाम अंगारक था। अंगारकको रत्न, सोना और जरी के वहुमूल्य वस्त्रोंसे बहुत मोह था। अतएव वह अपने प्रिय पदार्थों-को कमरेमें एकत्र कर रहने लगा। उसे एक चन्द्रकान्तमणि बहुत प्रिय थी। इस मणिको जरीके वस्त्रोमें छिपाकर रख दिया। इसी समय एक मुनिराज आहारके लिए पधारे। सेठ विशाखने मुनिराज को पड़गाहा, उन्हें भक्तिपूर्वक आहार दिया। आहारदानके प्रभावसे पञ्चाश्चर्य हुए। विशाख दौड़ा-दौड़ा कमरेमें आया, पर उसे जरी में लिपटा चन्द्रकान्तमणि नहीं मिला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात यह हुई कि एक चील उड़ती हुई आई। लाल जरीके संयोगसे उसने चन्द्रकान्तमणिको मांसपिण्ड समझा और उसे आकाश में लेकर उड़ गई। मणिको उसने निगल भी लिया, मणि गलेमें जाकर अटक गई।

विशाखने मुनिराजको चोर समझ लिया और मणि प्राप्तिके हेतु उसको मारना आरम्भ किया। जब वह मारते-मारते थक गया तो उसने डंडा लेकर मुनिराजको पीटा। डंडेका एक अंश टूटकर वृक्षपर बैठी चीलके गलेमें जाकर लगा, जिससे चन्द्रकान्त-मणि निकल पड़ी। मणिके देखते ही विशाखको अत्यधिक कष्ट हुआ। उसका मन पश्चात्तापसे भर गया, वह मुनिराजके चरणोंमें बैठकर क्षमा याचना करने लगा। उसे रह-रहकर अपनी सन्देह-बुद्धिपर दुःख होता था। आत्मालोचना करनेसे विशाखको संसारसे विरक्ति हो गई और वह मुनिदीक्षा ग्रहण कर विचरण करने लगा।'

मुनिराज उक्त आख्यान कहकर मौन हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अज्ञानीके साथ बातें करना व्यर्थ है। सन्देहीके सन्देहको दूर करना साधारण बात नहीं है। अतः उपसर्ग समझकर उन्होंने अन्न-जलका त्याग कर समाधि ग्रहण कर ली।

क्रोधसे फुफकारता हुआ जिनदत्त बोला—"अब जल्दी मेरा धन निकालकर दे दो, ज्यादा बातें सुननेकी मुझमें शक्ति नहीं है। यदि चोरी ही करनी थी, तो फिर मुनि बननेकी क्या आवश्यकता थी। पाखण्ड और ढोंग तुम्हारा अब नहीं चल सकता है जल्दी निकालो, अन्यथा अब तुम्हारे एक-एक अंगको काटना आरम्भ करता हूँ। समझ लो, इतना कष्ट दूँगा, जितना शायद नरकमें भी कभी नहीं मिला होगा।"

वह मुनिराजको मारनेवाला ही था कि उसके पुत्रका हृदय पिघल गया। वह सोचने लगा—"धन तो मैंने खोदकर निकाला है और मेरे पिता अपनी मूर्खतावश इस वीतरागी साधुको कष्ट दे रहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। मुझ पापीको धिक्कार है, जो अपना पाप दूसरेके ऊपर आरोपित कर रहा हूँ। अब मुझे शीघ्र ही भेद खोल देना चाहिए।"

जिनदास अपने पिताके पास गया और मुनिराजको ताड़ना देनेसे रोकते हुए कहने लगा—"पिताजी! आप भूल कर रहे हैं। इन वीतरागी साधुने धन नहीं चुराया है, धन मैंने लिया है। मैं अभी आपको लाकर समर्पित करता हूँ। आप मुनिराजको कष्ट देना बन्द कीजिए। जो वीतरागी मुनि अपना घर-द्वार छोड़ चुके, वे आपका धन चुरायेंगे। आपमें बुद्धिकी कमी है। लोभी व्यक्ति समस्त संसारको लोभी रूपमें देखता है।"

जिनदासने समस्त धन लाकर अपने पिता जिनदत्तके समक्ष डाल दिया। धनको देखते ही जिनदत्तका मुख उदास हो गया। उसे अपने कृत्योंपर पश्चात्ताप हुआ। वह मुनिराजके चरणोंमें गिरकर क्षमा याचना करता हुआ बोला—"प्रभो! संसार पापकी खान है। धनासक्ति नरक ले जानेवाली है। मैंने अब सच्चा बोध प्राप्तकर लिया है। संसार त्यागनेके बिना मुझे शान्ति नहीं मिल सकती। अतएव आप ही मुझे दिगम्बरी दीक्षा प्रदान करनेकी कृपा कीजिए। अज्ञानके समान संसारमें कोई भी शत्रु नहीं है। यही समस्त दुःख और कष्टोंका कारण है। अभी तक मेरे विवेक-चक्षु बन्द थे। आज आपकी कृपासे मेरे विवेकरूपी नेत्र उद्घाटित हो गये हैं। संसार, शरीर और विषयभोग मुझे आगके अंगारोंके समान प्रतीत होते हैं। अब मुझे शीघ्र ही जिनदीक्षा देनेकी कृपा कीजिए।"

मुनिराज भी जिनदत्तकी उक्त प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हुए और उसे जिनदीक्षा धारण करनेकी अनुमति दे दी।

जिनदत्तकी दीक्षाविधि धूमधाम पूर्वक सम्पन्न की गयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पातिव्रतका शव

सुदर्शन नगर निवासी वैश्रमण सार्थवाह और उसकी पत्नी श्रीदेवी विपुल सम्पत्तिके रहनेपर भी प्रसन्न नहीं हैं। उनके मनमें उत्तराधिकारका प्रश्न वार-वार उत्पन्न होता है। कुबेरके तुल्य इस सम्पत्तिका यदि उपभोक्ता कोई नहीं रहेगा, तो परिवारके ऋणसे मुक्ति नहीं मिल सकेगी। जहाँ दारिद्र्य है, वहाँ सन्तानकी भरमार और जहाँ विपुल सम्पत्ति है, वहाँ सन्तानका अत्यन्ताभाव, यह कैसी विधिकी विडम्बना है। काश, हम लोगोंको एक पुत्र उत्पन्न हो जाय तो हमारी मनोकामना पूर्ण हो जाती। इस घरका दीपक सदा प्रज्वलित रहता। अब लगता है कि घरका दीपक बुझनेवाला है। कई दिनोंसे उद्यानवासी धनदेव यक्षकी भी उपासना की जा रही है, पर अभी तक फल कुछ भी दिखलायी नहीं पड़ा। अब यदि पुत्रलाभ होगा तो यक्षके नामपर ही उसका नामकरण किया जायगा।

आज सूर्यका उदय नयी अरुणिमाको लेकर हुआ है। दिशाएँ प्रसन्न दिखलायी पड़ रही हैं। शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रहा है। वैश्रमण सार्थवाहके घर मंगलवाद्य बज रहे हैं। उसके घरमें एक नये सदस्यका पदार्पण हुआ है। पुत्रके वार्धापन समरोह-को सम्पादित करनेकी पूरी व्यवस्था की गयी है। धनदेव यक्षकी उपासनाके फलस्वरूप पुत्रलाभ होनेसे पुत्रका नाम धन रखा गया है।

इसी नगरमें पूर्णभद्र सार्थवाह भी रहता था, इसकी पत्नीका नाम गोमती था। इनके यहाँ एक कन्यारत्नने जन्म ग्रहण किया। कन्याका नाम धनश्री रखा गया। धनश्री सुन्दर और रूपलावण्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वती थी। जब वह युवावस्थाको प्राप्त हुई, तो माता-पिताको उसके विवाहकी चिन्ता हुई।

एक दिन नगरमें चन्द्राष्टमीके अवसरपर मदनमहोत्सवकी योजना की गयी। इस महोत्सवमें धन एवं धनश्री भी सम्मिलित हुए। जब उन दोनोंकी आँखें चार हुईं, तो वे परस्पर एक दूसरेके अधीन हो गये। उत्सव सप्पन्न होनेके पश्चात् उक्त सामान्यावलोकन प्रेम-विवाहके रूपमें परिणत हो गया। पूर्णभद्रको इस बातसे प्रसन्नता थी कि उसकी कन्या नगरके सबसे बड़े श्रेष्ठिकी बहू बनने जा रही है और वैश्रमणको इस बातसे प्रसन्नता थी कि उन्हें रूप-लावण्यवती वधूकी प्राप्ति होगी।

धन और धनश्रीका विवाह सम्पन्न हो गया। धनश्री अपने पिताके गृहका त्यागकर धनके साथ रहने लगी। धनके यहाँ नन्दक नामक एक सेवक रहता था, शनैः शनैः धनश्रीका प्रेम नन्दकके साथ हो गया और वह उसके साथ सांसारिक विषयोंका सेवन करने लगी।

एक दिन धन और धनश्री अपने कक्षमें शयन कर रहे थे। वार्तालापके क्रममें धनने कहा—"प्रिये! पिता-पितामहद्वारा अर्जित सम्पत्तिका उपभोग करनेवाला व्यक्ति निष्क्रिय हो जाता है। उसका जीवन उस तालाबके जलके समान है, जिसमें शैवाल छाया रहता है। स्वोपार्जित वित्तद्वारा ही दान-पुण्यके कार्य किये जा सकते हैं। अतः अब मेरी इच्छा विदेश जाकर धनार्जन करनेकी है।"

जब वैश्रमणको पुत्रके उक्त भावकी जानकारी हुई तो उसने पुत्रको बुलाकर समझाया—"वत्स! मेरे यहाँ विपुल सम्पत्ति है, उसका उपभोग करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। अतः तुमको विदेश जानेकी आवश्यकता नहीं। यहाँ रहकर ही तुम धनका यथेष्ट उपभोग करो।"

धन—"पिताजी! आपका कहना यथार्थ है, पर अपने द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्जित सम्पत्तिमें ही मुझे पूरा आनन्द प्राप्त होगा। अतः आपको मुझे विदेश जानेकी अनुमति दे देनी चाहिए।"

जब वैश्रमणने पुत्रका अत्यधिक आग्रह देखा तो उसे व्यापारके हेतु विदेश जानेकी अनुमति दे दी। नन्दक भी कुमारके साथ विदेश जानेके लिए प्रस्तुत हो गया। नाना प्रकारकी विक्रय योग्य वस्तुएँ खरीदी जाने लगीं और देखरेखकी समस्त जिम्मेदारी नन्दकको सौंप दी गयी।

धनश्रीने देखा कि कुमारके साथ नन्दक भी जा रहा है, तो उसके मनमें चिन्ता हुई। वह नन्दकके विना एक दिन भी नहीं रह सकती थी। अतः उसने कृत्रिम प्रेमका अभिनय प्रदर्शित मरते हुए धनसे निवेदन किया—

"आर्यपुत्र मैं आपके विना यहाँ नहीं रह सकती हूं। पतिव्रता नारीके लिए पति ही सब कुछ है। अतः मैं भी आपके साथ चलूँगी।"

धन—"प्रिये, तुम यहीं रहकर गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा करो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है। मैं एक वर्षके भीतर लौट आऊँगा। तुम धैर्य धारणकर यहीं रहो।"

धनके उक्त वचनोंको सुनकर रुदन करनेका अभिनय करती हुई वह कहने लगी—"आप मुझे अपने साथ नहीं ले जायेंगे तो मेरा शरीर यहीं रहेगा और प्राण आपके साथ जायँगे। आप विश्वास कीजिए, मैं यहाँ जीवित नहीं रह सकती हूँ।"

बहूके इन वचनोंको श्रीदेवीने सुन लिया। उसने पुत्रको समझाना प्रारम्भ किया—"वत्स! बहूका आग्रह बिल्कुल यथार्थ है, तुमको उसे अवश्य साथ ले जाना चाहिए।"

धनका जलयान विविध प्रकारके पदार्थोंसे युक्त ताम्रलिप्तिकी ओर चल दिया। दो महीने तक अनवरत चलनेके पश्चात् वह जलपोत ताम्रलिप्तिमें पहुँच गया। यहाँ धनके सामानकी अच्छी बिक्री नहीं हुई, अतः धनालाभ न होनेसे धनके मनमें क्लेश उत्पन्न हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने विचार किया कि अभी निकटवर्ती समुद्रको पारकर और दूर जाना चाहिए। सफलता स्वयं नहीं आती, उसे लाना पड़ता है। उसने अपना यह विचार धनश्री और नन्दकके समक्ष विचारार्थ रखा।

: २ :

स्नानका समय हो चुका था। स्नान करनेकी समस्त सामग्री धनके समक्ष प्रस्तुत की जा चुकी थी, कि एक व्यक्ति जीर्ण-शीर्ण लंगोटी लगाये हुए विकृत वेषमें आया। इसका पीछा करते हुए कई व्यक्ति चले आ रहे थे, जो उसे मार-पीट भी रहे थे। धनने कौतूहलवश उस व्यक्तिका परिचय जानना चाहा। उसने कहा—"प्रथम आप मुझे अभयदान दीजिए, इन पीछा करनेवाले जुआरियोंसे मेरी रक्षा कीजिए, तब मेरा परिचय पूछिये।"

"मैं वैश्यकुलका कलंक, उभयलोक विरुद्ध आचरण करनेवाला जुआरी, निन्द्यकर्ममें आसक्त कुसुमपुर निवासी महेश्वरदत्त नामक सार्थवाह हूँ।"

धनके नन्दकको आदेश दिया कि बाहर जो जुआरी घूम रहे हैं, उनसे पूछकर इस व्यक्तिके ऊपर जो धन बकाया है, उसे चुकता कर लें।

नन्दकने जुआरियोंसे पूछ-ताछकर ज्ञात किया कि कुल सोलह स्वर्ण सिक्के इसके ऊपर बकाया हैं। उसने अपने स्वामीके आदेशानुसार उक्त सिक्के देकर जुआरियोंको विदा किया।

महेश्वरदत्तने कृतज्ञता ज्ञापित की और मन ही मन कुमारकी उदारताकी प्रशंसा करता हुआ चला गया। उसे अब अपने जीवनसे विरक्ति हो चुकी थी। अतएव उसने योगेश्वर कापालिकके पास जाकर प्रवृज्या ग्रहण कर ली।

जब धन अपने यानको आगे समुद्र पार ले जानेका कार्यक्रम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बना रहा था, तो धनश्रीने नन्दकसे कहा—"इसे मारकर हमलोग अन्यत्र चलें, समुद्र पार करनेमें क्या लाभ ?"

नन्दक—"देवि ! आप कैसी बातें करती हैं, हमारा यह स्वामी बहुत ही उदार, सज्जन और लोकहित करनेवाला है। इसकी हत्या करनेवाला एक जन्मकी तो बात ही क्या, लाख जन्मोंमें भी सुखी नहीं हो सकेगा। तुम्हारे इन नीच विचारोंकी मैं निन्दा करता हूँ"।

नन्दकके उक्त कथनको सुनकर धनश्री सोचने लगी—"कुमार की हत्यामें इसका सहयोग प्राप्त नहीं हो सकता है। अतएव मुझे स्वयं ही कोई उपाय करना होगा।"

धनश्रीका परिचय नागदत्ता परिव्राजिकाके साथ हुआ। उसने इस परिव्राजिकासे कार्माणयोग नामक एक औषधिका प्रयोग सीखा, जिसके खिलानेसे किसीको भी कुष्ठरोग हो सकता था।

धनका जलपोत समुद्रकी लहरोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ आगे बढ़ रहा था। कुछ दिनों तक जयानके चलनेपर धनश्रीने कार्माण-योगका प्रयोग धनपर किया, जिससे धनके सर्वाङ्गमें प्रतिकाररहित कुष्ठ हो गया। उसके हाथ-पैरकी अंगुलियाँ गलने लगीं, शरीरसे दुर्गन्ध आने लगी। न भोजन पचता था और न जल। इस स्थितिसे धनका मन बहुत घबड़ा गया। वह सोचने लगा—"मेरे शरीरकी इस स्थितिसे नन्दक भी चिन्तित और धनश्री भी। इस जीवनसे मृत्यु अच्छी है।" दूसरे क्षण उसके मनमें विचार आया—"माताने कहा था कि विपत्तिके समय घबड़ाना नहीं। समुद्रका किनारा निकट है। जहाजको किनारेपर ठहराकर मालका स्वामी नन्दकको बना दूँगा और मैं रोगप्रतिकारका उपाय करूँगा।"

उसने नन्दकसे कहा—"भई ! तुम्हारा स्नेह मेरे ऊपर भाई जैसा है। अतः इस सामानके तुम स्वामी हो। तुम माल बेचकर धनश्रीके साथ चले जाना और माता-पिताको इस नारीरत्नको सौंप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देना। मैं समुद्रके ऊपर तटपर कुछ कालतक निवास करूँगा और रोग अच्छा हो जानेपर घर चला आऊँगा।"

धनके इन वचनोंको सुनकर नन्दक रोने लगा और धनश्री भी कपटपूर्वक रोनेका अभिनय करने लगी।

धन—"मित्र नन्दक! यह समय विषाद करनेका नहीं है, पुरुषार्थ ही हमें इस विपत्तिसे छुड़ा सकता है। समयोचित कार्य करनेवाला व्यक्ति ही जीवनमें सफलता प्राप्त करता है।"

जलयान महाकटाह द्वीपमें पहुँचा। नन्दक भेंट लेकर राजासे मिला। राजाने उसका सम्मान किया और ठहनेके लिए उन लोगोंको स्थान दिया। यहाँ योग्य चिकित्सकोंको बुलाकर धनकी चिकित्सा की गई, पर व्याधि दूर न हुई। अतएव सामान बेचकर दूसरा सामान खरीद लिया गया और शीघ्र ही जलयानको स्वदेशकी ओर ले चलनेका आदेश दिय। धनने कहा—"मेरी वास्तविक चिकित्सा भी स्वदेशमें ही हो सकेगी, अतएव अब शीघ्र ही स्वदेश पहुँचनेका प्रयास होना चाहिए।

जव चलते हुए कई दिन वीत गये तो धनश्री सोचने लगी—"अभी तक तो यह मरा नहीं। स्वदेश पहुँचने पर तो इसका मरना असम्भव है। अतएव अव यथाशीघ्र इसको मार डालनेका प्रयत्न करना चाहिए। नन्दक मेरे कार्यमें सहयोग नहीं देता है, अतः मुझे अकेले ही सव कुछ करना होगा।"

धन पादप्रक्षालनके लिए उठा और यानके किनारे पैर धोने लगा। धनश्रीने पीछेसे आकर उसे जोरका धक्का दिया, जिससे धन समुद्रमें गिर गया। उसे किसी पुराने टूटे जलयानका पाटा प्राप्त हो गया, जिसके सहारे तैरते हुए सात दिन-रातमें वह समुद्रके किनारे लगा। आश्चर्य यह कि जो रोग अमृततुल्य औषधियोंसे अच्छा नहीं हुआ था वही रोग समुद्रके खारे जलसे ठीक हो गया। सारी व्याधि उसकी दूर हो गयी और उसका शरीर कंचन जैसा हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धनके गिर जानेसे नन्दकको बहुत कष्ट हुआ। उसके जलयान को समुद्रके बीचमें रोककर धनकी तलाश की, पर पता न लग सका। फलतः उसे लाचार होकर आगे चलना पड़ा।

धन, धनश्रीके कपटाचरणके सम्बन्धमें सोचने लगा कि उसने मुझे क्यों धक्का देकर गिराया ? वह अधिक विचार न कर समुद्र तट पर चलने लगा। उसने देखा कि श्रावस्तीकी राजकुमारी सिंहल द्वीप जा रही थी, पर यानभंग हो जानेसे उसकी दासी समुद्रतटपर मृत पड़ी थी। महाराजने आभूषणोंको संभालनेका भार इसी दासी को सौंपा था। अतः इसके उत्तरीयमें "त्रैलोक्यसार रत्नावली" बंधी हुई थी।

कुमार धनने उस रत्नावलीको ले लिया। आगे चलनेपर महेश्वरदत्त कापालिक मिला, महेश्वरदत्तने कुमारको पहचान लिया और पूछा—"सार्थवाह पुत्र ! तुम कहाँ, तुम्हारी यह अवस्था किस प्रकार हुई ?"

धन—"यानपोत भंग होनेसे मेरी यह स्थिति हो रही है।"

महेश्वरदत्त—भाग्य धनिकोंको भी नष्ट करनेमें समर्थ है, लक्ष्मी चंचल है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। जो परकल्याणमें अपने जीवनको लगाता है, उसीका जीवन धन्य है। विपत्ति पड़नेपर सज्जन-दुर्जन की पहचान हो जाती है। जिस प्रकार अग्निका संयोग प्राप्त किये विना कालागुरुकी सुगन्ध नहीं आती, उसी प्रकार विपत्तियोंको प्राप्त किये विना मानवताकी गन्ध धिकसित नहीं होती है।

"आप मेरे उपकारी हैं, अतः आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी कौन-सी भलाई करूँ ?"

धन—"भगवान् ! मैं आपके इन वचनोंसे ही अनुगृहीत हूँ। मेरी कुशलताकी चिन्ता करना ही आपकी कृपा है, यही आपका उपकार है। अन्य उपकार करनेकी क्या आवश्यकता है।"

"सार्थवाहपुत्र ! तुमने ताम्रलिप्तिमें मुझे जुआरियोंसे छुड़ाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा अत्यन्त उपकार किया है। अतः इस समय मैं आपको सर्प विष दूर करनेवाले गारुड़मन्त्रको देता हूँ। इसे आप अवश्य स्वीकार कीजिए।"

गारुड़मन्त्र सीख धन महेश्वरदत्त द्वारा निर्दिष्ट मार्गसे चलकर श्रावस्तीमें आया। वह अपने उत्तरीयमें बँधे हुए 'त्रैलोक्यसार रत्नावलीहार' को छिपाता हुआ चला जा रहा था।

विगत रात्रिमें राजाके कोषसे विविध प्रकारके मणि-माणिक्य, और स्वर्णमुद्राओंकी चोरी हो गई थी। अतः नगरके सभी चौराहों पर आनेवाले भिक्षुक, विदेशीजन पकड़े जा रहे थे। धनको भी राजकर्मचारिओंने पकड़कर मन्त्रीके पास पहुँचा दिया। वहाँ उसकी तलाशी ली गयी। 'त्रैलोक्यसार रत्नावली हार' के प्राप्त होनेपर मन्त्रीने उससे विविध प्रकारके प्रश्न किये, पर वह उन प्रश्नोंका असंगत उत्तर देता गया। इस मन्त्रीका सन्देह बढ़ गया और उसने समझा कि राजकुमारीकी हत्या कर दी। यह त्रैलोक्यसार रत्नावली इसे उसीसे प्राप्त हुई होगी। यह चोर, डकैत और हत्यारा है। अतएव उसने धनको राजाके पास पहुँचा दिया।

राजाके सामने जानेपर भी वह झूठ बोलता रहा, जिससे राजा बहुत नाराज हुआ और उसे शूलीका दण्ड दिया गया। वधिक उसका काला शरीरकर नीरस वाद्य बजाते हुए वध्य स्थानकी ओर ले गये।

इस दिन शूली देनेका कार्य लोहितमुख चाण्डालका था। राजकर्मचारी लोहितमुखको बुलाकर लाये। लोहित इस कार्यसे अरुचि करता था, पर उसे राजाके भयसे इस कार्यको स्वीकार भी करना पड़ता था।

जब लोहितने धनको देखा तो वह सोचने लगा—"इसकी आकृति चोर-डकैतकी नहीं है। यह अवश्य निर्दोष है, अपनी मूर्खतासे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रपंचमें फँस गया है। पर मुझे तो राजाज्ञाका पालन करना है, मैं क्या कर सकता हूँ।"

लोहितने धनसे कहा—"मित्र! तुम अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट करो। हमारे महाराजने यह आदेश प्रसारित किया कि मरनेवाला व्यक्ति अपनी अन्तिम इच्छा, जो भी प्रगट करे, उसे पूर्ण करनेका प्रयास करना आवश्यक है। इच्छाके तृप्त होनेपर ही वध किया जाता है। अतः तुम अपनी इच्छा प्रकट करो।"

धन—"मित्र! मुझे अब किसी बातकी आकांक्षा नहीं है। तुम शीघ्र ही राजाज्ञा पूर्ण करो।"

लोहित नंगी तलवारकर धनको मारनेको प्रस्तुत हुआ कि उसके हाथ हिल जानेसे तलवार छूटकर जमीनमें गिर गयी। उसने यह प्रयास तीन बार किया और तीनों बार तलवार छूटकर गिरती रही। इस आश्चर्यको देखकर लोहितमुखने नम्र स्वरमें निवेदन किया—"महानुभाव आपकी अभी आयु शेष है, मुझे आपके ऊपर दया आ रही है। मेरा मन आपको मारनेका तनिक भी नहीं है, पर राजाज्ञाके समक्ष मैं असमर्थ हूँ। कृपया आप अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त कीजिए, उस इच्छाकी पूर्त्ति होने पर ही आपका वध किया जा सकेगा।"

धन—"बन्धु! मेरी कोई भी इच्छा नहीं है, आप अपना काम कीजिए।"

आपसके इस संघर्षमें कुछ समय बीत गया। इतनेमें एक घोषणा सुनाई पड़ी—"श्रावस्ती नरेशके पुत्रको वाटिकामें घूमते हुए सर्पने डस लिया है। जो गुणी इस सर्प-विषको दूर कर देगा, उसे पुरस्कार प्राप्त होगा। अभी तक सभी गुणी, वैद्य अपने कार्यमें विफल रहे हैं, और राजकुमार चेतनाशून्य होकर भूमिपर मृतवत् पड़ा हुआ है।"

इस घोषणाको सुनकर धनने लोहितमुखसे कहा—"बन्धु!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप अधिक आग्रह करते हैं तो मेरी इच्छा यही है कि मैं चलकर राजकुमारको अपने मन्त्रके प्रभावसे निर्विष कर दूँ। और राजाके आशारूपी दीपको वचा दूँ।"

लोहितमुख इस प्रस्तावको सुनकर वहुत प्रसन्न हुआ। वह तत्काल धनको उक्त स्थलपर ले गया। धनने वहाँ पहुँचकर गारुड-मन्त्रके प्रभावसे राजकुमारको निर्विष कर दिया, और वह सोतेसे उठे हुएके समान उठ वैठा। राजकुमारको जीवित देखकर राजाको अत्यधिक प्रसन्नता हुई और उसने धनसे कहा—"तुम अभीष्ट वरदान माँगो। जो माँगोगे वही प्राप्त होगा।"

धन—"महाराज! आप प्रसन्न हैं तो मेरे उपकारी इस लोहित-मुखकी इच्छा पूर्ण कीजिए। मैं तो इस समय इसीके आधीन हूँ। यह जातिसे भले ही चाण्डाल हो, पर कार्यसे चाण्डाल नहीं। इसका हृदय विशाल है, यह परोपकारी है और दयालु। अतएव आप इसीकी इच्छा पूर्ण कीजिए"।

धनके उक्त वचनोंको सुनकर राजा हर्षसे नाचने लगा। वह सोचने लगा—"यह व्यक्ति चोर नहीं हो सकता है और न इसने राजकुमारीकी हत्या की होगी। इसमें कोई रहस्यपूर्ण बात है, जो प्रकट होगी"।

लोहितमुखको वुलाया गया। उसने कहा—"सज्जनोंका चरित्त अमूल्य होता है और न कभी सज्जनताका अन्त होता है"।

वह महाराजसे वोला—"स्वामिन्! आप प्रसन्न हैं तो सर्वप्रथम मुझे इस निन्दनीय पेशेसे मुक्त कर दीजिए"।

महाराज—"अरे यह चाण्डाल बड़ा विवेकी और निर्लोभी है"।

धन—"महाराज! यह पवित्रात्मा और भद्र है। आप इसकी इच्छा पूर्ण कीजिए"।

महाराजने लोहितमुखकी माँगको स्वीकार करते हुए कहा—"एक लाख स्वर्ण दीनार और नगरके दूसरे ओरकी भूमि, जिसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विन्ध्यवासिनी देवीका मन्दिर है, जिसमें हजारों चाण्डाल निवास करते हैं, पुरस्कारस्वरूप दी जा रही है"।

लोहितमुख धनके जीवित रहनेसे बहुत प्रसन्न था।

राजाने धनका पूरा परिचय प्राप्त कर उसका यथेष्ठ सम्मान किया। इसी समय प्रतिहारीने आकर निवेदन किया कि महाराज! मनोरमा नामकी उद्यानपालिका यानपोतके भंग हो जानेसे परिजन सहित राजकुमारीका समाचार कहना चाहती है। आपकी जैसी आज्ञा हो—

मनोरमा—"स्वामिन्! इधरसे जाते समय प्रचण्ड हवाके वेग-के कारण यानपोत छिन्न-भिन्न हो गया और राजकुमारी विनयवती काष्ठाफलकके सहारे जीवित बचकर अपनी नगरीके निकट आ पहुँची हैं। उन्होंने मुझे सन्देश देनेके लिए आपकी सेवामें भेजा है। अब आप प्रमाण हैं, जैसा उचित हो, आदेश दीजिए"।

राजा स्वयं शीघ्रतापूर्वक चलकर मेघवनमें पहुँचा और वहाँ राजकुमारीसे मिला। राजकुमारीको सम्मानतापूर्वक श्रावस्तीमें बुला लिया गया। राजाने 'त्रैलोक्यसार रत्नावली' के सम्बन्धमें पूछा।

राजकुमारी—"यानभंगके दिन आम्रलताओंमें रखकर चादरसे उसे छिपा दिया गया। इसके पश्चात् क्या हुआ, पता नहीं"।

अब राजाने धनसे पूछा—"भद्र! यह तुम्हारे हाथ किस प्रकार आई"।

धन—"समुद्रके किनारे स्वयं पड़ा हुआ यह हार प्राप्त हुआ"।

राजा—"महानुभाव! क्या तुमने वहाँ कोई कंकाल-हड्डियोंका ढाँचा देखा था"?

धन—"हाँ! महाराज देखा तो था, इसी कारण परद्रव्यका अपहरण करनेवाला अपनेको चोर मानता हूँ"।

राजा—"तुमने परद्रव्यका अपहरण नहीं किया। बीती बात-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को भूल जाओ। बताओ तुम्हारे लिए कौन-सा प्रिय कार्य किया जाय" ?

धन—"जो आप उचित समझें"।

राजा धवलने उसे सुशर्मनगर तक पहुँचा देनेके लिए कर्मचारियोंको नियुक्त किया तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषण भी दिये।

कुछ दिन चलनेके उपरान्त धन गिरिस्थल नामक नगरमें पहुँचा। यहाँ पर भी इसी दिन राजा चन्द्रसेनके सर्वसार नामक भाण्डारसे चोरी हो गयी थी, जिससे नागरिक और नगर-रक्षक घबड़ाये हुए थे। चोरोंकी तलाश की जा रही थी, घरोंकी गलियाँ बन्द थी और आगन्तुकोंकी परीक्षा ली जा रही थी। राजकर्मचारियोंने धनको पकड़ लिया, उसकी तलाशी लेनेपर अनेक आभूषण और रत्न मिले। श्रावस्तीनरेश महाधवलके कर्मचारियोंके सहित धनको पञ्चकुलके समक्ष उपस्थित किया गया।

पञ्चकुलने पूछा—"आप लोग कहाँसे आये हैं" ?

धन और उसके साथी—"श्रावस्तीसे"।

पञ्चकुल—"ये आभूषण कहाँ मिले" ?

धन—"श्रावस्तीनरेशने दिये हैं"।

पञ्चकुल—"क्या इन आभूषणोंके अतिरिक्त और भी कुछ आपके पास हैं', ?

धनके साथी—"हाँ, हमारे पास रत्न और आभूषण और भी है"।

जब उन रत्न और आभूषणोंको देखा गया तो भाण्डागारिकने कहा—"ये आभूषण पहले चोरी हुए आभूषणोंमेंसे हैं"।

इन लोगोंको राजाकी सेवामें उपस्थित किया गया और राजाने समस्त धनको छीनकर एक स्थान पर रखा दिया। धन अपने साथियों सहित कुछ दिनों तक वहीं रहा। इस बीच राजकर्मचारियों ने एक परिव्राजक वेशधारी साधुको पकड़ा, जिसका नाम भुजंगम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। राजकर्मचारी उसे विकृत वेष बनाकर वधस्थानकी ओर ले जाने लगे।

भुजंगमके मनमें सद्‌विचार उत्पन्न हुआ और उसने पृथ्वीमें गड़े हुए समस्त धनको बतला दिया। अन्य ममस्त धन तो प्राप्त हो गया, पर राजालंकार प्राप्त नहीं हुए। अतः मन्त्रीने भुजंगमसे पूछा—"आपने परिव्राजकके वेशमें क्यों चोरी की ? यह तो परस्पर विरोधी धर्माचरण है"।

भुजंगम—"विषयसक्त व्यक्तिके लिए विरोधी आचरण कुछ भी नहीं है"। पर, आपने मेरा जो वृत्तान्त जानना चाहा है, उसे आप सुनिये।

"इस भरतक्षेत्रमें पुण्ड्र जनपद है। इसमें पुण्ड्रवर्धन नामका नगर है। इस नगरमें वात्स्यायनगोत्री सोमदेव ब्राह्मण रहता है। इसीका नारायणदेव नामका पुत्र हूँ। मैं कर्मकाण्डका प्रचार करता हुआ निवास करता था कि मैंने देखा कि कुछ बदमाशोंको चोरी-डकैतीके सन्देहमें लोग पकड़कर ले जा रहे थे, उन्हें देखकर मैंने कहा—इन्हें मार डालो। जनताके धनका अपहरण करनेवालोंको जीवित रहनेका कोई अधिकार नहीं। पासमें स्थित अवधिज्ञानी मुनिराजके मुखसे निकला कि आश्चर्य है—'अज्ञानके समान कष्ट-दायक अन्य कोई कारण नहीं। अज्ञानसे ही यह संसारका प्राणी कष्ट उठाता है।'

मैंने साधुचरणोंमें पड़कर पूछा—'स्वामिन्! क्या अज्ञान है, आपकी बातोंका रहस्य क्या है ?'

साधु—'महानुभाव ! झूठा दोषरोपण करना अज्ञान है, किसीको बिना जाने महाभुंजगम—बदमाश कहना, कहाँ तक उचित है, इसे अज्ञान नहीं तो औ क्या कहा जायगा।

प्राणियोंको किये हुए कर्मोंके अनुसार विपत्ति भोगनी पड़ती है। तथ्य यह है कि किसीको कटु वचन नहीं कहने चाहिए। कटु वचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोलनेसे हृदयको अपार कष्ट होता है। जहाँ तक हो सके मनुष्यको मधुर व्यवहार करना चाहिए।'

पुनः मैंने पूछा प्रभो! इन व्यक्तियोंपर जन्मान्तरका अभियोग किस प्रकारका है? क्या वास्तवमें इन लोगोंने चोरी नहीं की है। कृपया इनका पूर्वभवका वृत्तान्त बतलानेका कष्ट कीजिए।

"साधु! 'वत्स! उत्तरापथमें गज्जनक नगर है। इसमें आषाढ नामक ब्राह्मण रहता था। इसकी पत्नीका नाम हिच्छुक था। उन दोनोंके तुम पञ्चम जन्म पूर्व पुत्र थे और तुम्हारा नाम चण्डदेव था। तुमने वेद-वेदांगका अध्ययन किया। तुम्हें विद्याका अहंकार हो गया। गज्जनकके नरपति वीरसेन तुम्हारी विद्वत्तासे विशेष प्रभावित हुआ और उसने तुमको अपने यहाँ आचार्य पदपर प्रतिष्ठित किया।

इसी नगरके विनीत सेठकी बालविधवा पुत्री वीरमती मोहाधिक्यके कारण सिंहल नामके मालीके साथ घर छोड़कर भाग गयी। उन्हीं दिनों उस नगरीमें योगात्मा नामक परिव्राजक आया हुआ था, अतः नगरनिवासियोंको भ्रम हो गया कि सम्भवतः वह परिव्राजक ही वीरमतीको भगाकर ले गया है। तुमने भी उक्त तथ्यकी पुष्टि की और राजासे कहा—'महाराज! ये साधु-संन्यासी बड़े ढोंगी होते हैं, ये अपने मायाचार द्वारा स्त्रियोंका अपहरणकर ले जाते हैं। इनके कृत्योंकी मुझे सम्यक् जानकारी है। आप इसमें तनिक भी सन्देह न करें।'

तुम्हारे इन वचनोंसे राजा तथा नगरवासियोंको पूरा विश्वास हो गया कि वीरमतीको भगानेका कार्य योगात्मा साधुका है। जब यह बात साधुसंघको ज्ञात हुई तो योगात्माका बहिष्कार कर दिया गया। गृहस्थ भी योगात्माका तिरस्कार करते थे, जिससे उसका जीवित रहना कठिन हो गया। दूसरोंकी झूठी निन्दा और उनपर मिथ्या दोषारोपण करनेसे तुमने तीव्र कर्मोंका बन्ध किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम विद्वान् होनेपर भी मिथ्याचरण करते थे। अन्यकी निन्दा करना, दूसरोंको कटुवचन कहना एवं सदा साधु-महात्माओंको गाली देना तुम्हारा धर्म हो गया था। अतएव अशुभ कर्मोंके बन्धके कारण तुमने कोल्लाक सन्निवेशमें भेड़के रूपमें जन्म ग्रहण किया। कर्मदोषके कारण तुम्हारी जिह्वा तालुसे चिपट गयी, जिससे तुमको महान् कष्ट हुआ। वहाँसे मरणकर श्रृगाल आदि योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेके पश्चात् साकेत निवासी राजाकी स्त्री मदनलेखाके गर्भसे तुमने पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया। तुमने पूर्वजन्मके दोषके कारण कोई अपराध किया, जिसके कारण तुम्हारी जिह्वा काट ली गयी। इस कारण तुमको अपार कष्ट और वेदना हुई। तुमने अनशन व्रत द्वारा प्राणोंका त्याग किया, जिसके फलस्वरूप तुमने पुण्ड्रवर्धन नगरमें ब्राह्मणपुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया है।"

इस विगत वृत्तान्तको सुनकर मुझे संवेग उत्पन्न हुआ। मैंने विचार किया कि प्रमादपूर्वक किया गया आचरण दुःखका कारण होता है। मैंने साधुसे पूछा—'भगवन्! कितना और कैसा फल अभी शेष रह गया है ?"

साधु—"वत्स अविवेकी लोगोंके अनुरूप विडम्बना और तिरस्कार सहन करना अभी अवशेष हैं।"

मैंने संसारसे भयभीत हो सुगृहीत मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण कर ली। गुरुने मुझे आकाशगामी और पातालगामी विद्याएँ सिखलायीं और बतलाया कि इन विद्याओंका उपयोग विपत्तिके समय केवल धर्मकार्यको सम्पन्न करनेके लिए ही करना, अन्य समय नहीं। तुम तुम अहिंसाके साथ सत्यका पालन करना। प्राण जाने पर भी मृषा न बोलना।

पापासक्त होनेके कारण मैं मिथ्या भाषणका त्याग न कर सका। फलस्वरूप उक्त दोनों विद्याएँ मेरे पास न रह सकीं और मैं यहाँ चोरी करते समय पकड़ लिया गया। अन्य दिनोंमें मैं मिथ्याभाषणके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् जलमें खड़ा होकर आठ हजार मन्त्रजाप्य द्वारा विद्याओंकी पुनरावृत्ति कर लेता था, पर आज उस कार्यको न कर सकता, जिससे पकड़ा गया।

मन्त्री—"राजाके यहाँसे एक दिन चुराये गये अलंकार तुम्हारे पास क्यों नहीं हैं?"

मैंने उत्तर दिया—"वे अलंकार मैंने श्रावस्ती नरेशको भेंट कर दिये।"

मन्त्री—"क्यों आपने भेंट किये?"

मैंने उत्तर दिया—"श्रावस्ती निवासी गन्धर्वदत्त नामका मित्र मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है। वह वहाँकी श्रेष्ठ कन्या वासवदत्ताके साथ विवाह करना चाहता था, इस कन्याका पिता उसका विवाह अन्यत्र करना चाहता था। फलतः यह विवाद राजाके पास पहुँचा और श्रावस्तीनरेशने गन्धर्वदत्तको नगरीसे निष्कासित कर दिया। इस घटनासे गन्धर्वदत्तको मारणान्तिक वेदना हुई। वह मेरे पास आया और मैंने राजाको उक्त अलंकार भेंट कर प्रसन्न किया, जिससे गन्धर्वदत्तके विरुद्ध लगाये गये आरोप उठा लिये गये और उसका विवाह वासवदत्ताके साथ हो गया।"

मन्त्रीने श्रावस्तीसे लौटनेवाले धन और उनके साथियोंको निर्दोष समझकर मुक्त कर दिया। धनने भी श्रावस्तीके राजकर्मचारियोंको समझा-बुझाकर लौटा दिया और स्वयं समुद्रके किनारे स्थित वैराट नामक नगरकी ओर चला। वह चलता हुआ दयावती नामक अटवीमें पहुँचा। इस अटवीके एक भागमें भिक्षुक निवास करते थे। उनके निवासस्थानपर जंगली हाथियोंका एक झुंड प्रविष्ट हुआ और भिक्षुओंको कष्ट देने लगा। एक उन्मत्त हाथीने धनको पकड़ लिया और सूंड़में लपेटकर ऊपर उछाल दिया, धन वटवृक्षकी जटाओंको पकड़कर ऊपर चढ़ गया। वहाँ उसने श्येन-पक्षी द्वारा गिराये गये त्रैलोक्यसर रत्नावली नामक हारको देखा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सोचने लगा—"इस हारको श्रावस्ती नरेशको भेंट कर अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करूँगा।" अतः वह गजोपद्रवसे छूटकर श्रावस्ती की ओर चल दिया।

जब धनद्वारा वापस किये हुए राजकर्मचारी श्रावस्ती पहुँचे और उन्होने मार्गका समाचार राजाको बतलाया तो राजा उन कर्मचारियोसे बहुत नाराज हुआ। उसने कहा—"तुम लोग उस परोपकारी पुण्यात्माको अकेला छोड़कर क्यों चले आये? तुम्हारा यह कार्य अत्यन्त निन्दनीय है। अतएव तुम इस नगरीमें कुमारके साथ ही प्रविष्ट हो सकते हो।"

वे लोग धनकी तलाश करनेके लिये चले और उन्हें प्रियमेलक नामक सन्निवेशमें वह सार्थवाहपुत्र मिल गया। वे प्रसन्नतापूर्वक उसे लेकर श्रावस्ती आये। धनने राजाको रत्नावली हारकी उपलब्धिका समस्त वृत्तान्त कहा।

राजा—"वस्तुओंकी परिणति विचित्र होती है। पता नहीं कौन-सी वस्तु कब कहाँ पहुँच सकती है।"

धनने राजाको उक्त हार भेंट करना चाहा, पर राजाने उसे स्वीकार नहीं किया और यह कहते हुए वापस कर दिया—"भेंटमें दी हुई वस्तु वापस नहीं ली जा सकती है।"

बहुत दिनों तक श्रावस्तीमें रहनेके उपरान्त कुमार धन नाना प्रकारकी व्यापारिक सामग्रियोंको खरीदकर जलयान द्वारा सुशर्म नगरके लिए रवाना हुआ। कुछ दिनोंमें उसका जलपोत सकुशल पहुँच गया और व्यापारहेतु खरीदे गये मालमें पर्याप्त लाभ हुआ।

माता-पिताने पुत्र धनका सम्मान, स्वागत किया। उसके मिल जानेके उपलक्ष्यमें आठ दिनों तक पूजाएँ करायीं। गरीबोंको मुँह-मांगा धन दिया गया। धर्मशाला, प्याऊशाला आदिकी व्यवस्था हेतु धन वितरित किया गया। मित्रोंको भोजन कराया। माता-पिता पुत्रको पाकर निहाल हो गये, उनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी।

१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दिन पिताने एकान्तमें धनसे धनश्रीके सम्बन्धमें पूछा कि धनश्री कहाँ चली गयी है ? उसका क्या हुआ, तो धनने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। पिताको धनश्रीके इन कार्योंसे बड़ी घृणा हुई और उन्होंने धनसे दूसरा विवाह करनेका आग्रह किया। धनने संसारके मायाजालका वर्णन करते हुए विवाह करनेसे इन्कार कर दिया।

एक दिन धन बाहर भ्रमण करनेके लिए गया था कि उसे यशोधर नामक सुन्दर युवकमुनि मिले। उसने मुनिराजकी वन्दना की और अन्य औपचारिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेके पश्चात् उनसे उनकी विरक्तिका कारण जानना चाहा! मुनिराज यशोधरके आत्माख्यानको सुनकर धनको संसारसे अत्यधिक विरक्ति उत्पन्न हुई। उसने जनसेवा करनेकी अनुमति अपने पितासे माँगी। पिताने पहले तो धनको खूब समझाया। वैभव-विभूतिकी चर्चा की और कुलदीपको प्रज्वलित बनाये रखनेके लिए विवाह कर लेनेपर जोर दिया।

धन अपने आग्रहपर दृढ रहा। उसने जीवनकी नश्वरताकी स्थितिका चित्रणकर अपने माता-पिताको भी प्रभावित किया। फलतः वह जनसेवाके हेतु मुनिदीक्षा गहणकर विचरण करने लगा।

एक दिन वह विहार करता हुआ कौशाम्बी आया। यहाँ आगमसाहित्यका अध्ययन और कर्मनिर्जरा करनेके हेतु उग्र तपश्चरणका अभ्यास करने लगा। धन तपस्वी संसारके समस्त विषयोंसे विरक्त एवं आत्मसाधनामें लीन रहनेवाला था। उसकी उग्र चर्याको देखकर सभी लोग आश्चर्य चकित थे।

धनश्री और नन्दक भी आनन्दपूर्वक जीवन यापन करने लगे। जो नन्दक धनका इतना बड़ा भक्त था, वही स्त्री और वैभवको प्राप्तकर धनके समस्त उपकारोंको भूल गया। समुद्र पारकर वह कौशाम्बीमें आया और अपना नाम समुद्रदत्त प्ररिवर्तितकर रहने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगा। धनश्री नन्दकके साथ रहती थी अवश्य, पर उसका मन सदा कुशील-सेवनके लिए लालायित रहता था।

धनको समुद्रमें गिरा देनेके पश्चात् वह निराकुलताका अनुभव करने लगी थी, पर कर्मसंयोग विचित्र होता है। आज धनको चर्याके हेतु विहार करनेके लिए आते देख उसके मनमें अपार वेदना हुई। वह सोचने लगी—"मेरा प्रयास निष्फल हुआ। यह जीवित कैसे बच गया। इसका तो काम तमाम हो जाना चाहिए। आज मेरे सिरमें अपार वेदना है। कहीं इसने रहस्य खोल दिया तो मेरी क्या स्थिति होगी। कौशाम्बी नरेशके यहाँ हमारा अत्यधिक सम्मान है, पापाचरणका भण्डाफोड़ होनेपर कौन हमको पूछेगा। सभी कोई हमसे घृणा करेगा और हमें बुरी दृष्टिसे देखेगा, इस प्रकारका जीवन अत्यन्त कष्टपूर्ण होगा।"

उसने अपनी दासीको बुलाया और उससे कहा—"तुम इस साधुका पीछा करो, यह कहाँ ठहरा हुआ है और साथमें कितने अन्य साधु हैं? सब बातोंका पता लगाकर आना। कार्य हो जानेपर तुमको पुरस्कृत किया जायगा।"

दासी मुनिराज धनके पीछे चलने लगी। साधु चर्याके हेतु धन कभी इस घरमें जाता और कभी उस घरमें। इस प्रकार कई घरोंका चक्कर लगानेके बाद भी उसकी चर्या नहीं हो सकी। अतः वह आहार ग्रहण किये बिना ही लौट आया। नगरके बाहर चण्डिका देवीके मन्दिरके पश्चिम भागमें अवस्थित उद्यानमें कायोत्सर्ग करनेमें संलग्न हो गया।

दासीने लौटकर अपनी स्वामिनीसे मुनिराजका सारा वृत्तान्त निवेदित कर दिया। धनश्रीने मनोवेदनाको छिपाते हुए नन्दकसे कहा—"प्रियतम! जब आप बीमार थे, तो मैंने मनौती मनाई थी कि अष्टमीकी रात्रिको उपवासपूर्वक देवीकी उपासना करूँगी। मन्दिरमें ही रात्रिजागरण करूँगी। मुझे कई दिनोंसे स्वप्न आ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहे हैं कि तुम देवीकी पूजामें विलम्ब कर रही हो, जिससे तुम्हारे पतिका अनिष्ट होगा। अतः आज मैं अवश्य पूजा करने जाऊँगी। आज मैंने उपवास किया है और यह मेरा निश्चय है कि रात्रिजागरण और रातभर उपासना कर मैं देवीको अवश्य प्रसन्न करूँगी।"

नन्दक कुछ समझ न सका। उसके मनमें लोभ अवश्य था, पर मायाचार नहीं। उसने धनश्रीके लिए सभी पूजा-वस्तुएँ खरीदीं। वह अपनी प्रमुख दासियोंके साथ चण्डिकायतनमें पहुँची और दासीके कथनानुसार जिस उद्यानमें धन ध्यान कर रहा था, उसी उद्यानकी ओर चल दी। उसने देखा कि एक कृषक लकड़ी भरी गाड़ी लिए चला जा रहा है। उसकी गाड़ी कुछ खराब हो गयी, अतः वह गाड़ीको वहीं छोड़ बैल खोलकर नगरकी ओर चल दिया।

धनश्रीकी दृष्टि उस गाड़ीपर पड़ी और वह सोचने लगी—अच्छा हुआ, इन लकड़ियोंसे ही मैं इसे जलाऊँगी। उसने चण्डिकाके मन्दिरमें भीतर पहुँचकर देवीकी पूजा की और दास-दासियोंको भोजन कराया। जब सभी परिजन सो गये, तो वह अकेली ही मुनिराजके पास गयी। अज्ञान और क्रोधसे हतबुद्धि होकर उसने मुनिराजके पास लकड़ियाँ संचित कीं। ध्यानस्थ मुनिराजको न तो धनश्रीके आनेका पता चला और लकड़ियोंके एकत्र करनेका। यह सत्य है कि आत्मध्यानीको संसारके प्रपंच दिखलायी नहीं पड़ते।

धनश्रीने लकड़ियोंके मध्यमें अग्नि जला दी। मुनिराजको अग्निकी लपटोंने आक्रान्त कर लिया। मुनिराज इस उपसर्गसे विचलित न हुए और सोचने लगे—मोहके कारण सांसारिक प्राणी कष्ट सहन करता है। जो आत्मजयी है, वहीं नाना प्रकारके उपसर्गों पर विजय प्राप्त करता है। यह मानव-पर्याय और इस पर्यायमें जन्य ज्ञान आत्मोद्धारके लिए ही होता है। जो कर्मकलंकको नष्ट करना चाहता है, उसे आत्मध्यानमें लीन रहना होगा। वास्तवमें मोह ही समस्त प्राणियोंको कष्ट देता है। मोहको पराजित करदा सहज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है। आत्मध्यानमें वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जो मोह और क्षोभको जीत लेता है।

आत्मसाधक मुनिराजका शरीर भस्म हो गया, पर वे आत्मध्यानसे विचलित न हुए। उन्होंने शान्ति और समतापूर्वक मरण किया, जिसके फलस्वरूप उन्होंने शुक्रस्वर्गमें जन्म प्राप्त किया।

धनश्री घबड़ाकर चण्डिकायतनमें प्रविष्ट हुई। पापकर्म करनेके कारण उसकी आत्मा काँप रही थी। जब वह मन्दिरमें प्रवेश कर रही थी तो उसके ऊपर दासीकी दृष्टि पड़ी। उसने पूछा—"स्वामिनी! आप इस मध्यरात्रिमें कहाँ गई थी?"

धनश्री—"कहीं नहीं, देवी चण्डिकाकी प्रदक्षिणा की है।"

दासीको अग्निकी लपटें उठती हुई दिखलाई पड़ीं। अतः उसके मनमें सन्देह हुआ कि इस समय यह स्वामिनी अवश्य किसी रहस्यपूर्ण कार्यको सम्पादित करनेके लिए कहीं गई होगी। यह अपने मनकी बात मुझसे छिपाती है, प्रातःकाल होनेपर इसका रहस्य ज्ञात हो ही जायगा।

प्रातःकाल होनेपर धनश्री अपने दास-दासियों सहित नगरको लौट गयी। मार्गमें उन्हें मुनिका शव दिखलाई पड़ा। दासियोंने कहा—'यहाँ किसी दुष्टने मुनिराजकी हत्या की है, इस मुनिवधका पाप अवश्य ही प्राप्त होगा।'

दासी सोचने लगी—"नारीबुद्धिका पता लगाना सम्भव नहीं है। जहाँ नारी सेवा और त्याग कर सकती है, वहाँ महापाप भी। ममता, करुणा और सहानुभूति नारीके विशेष गुणोंमें परिगणित हैं। इन गुणोंके अभावमें नारी, नारी नहीं, प्रत्युत पिशाचिनी है। नारीकी सार्थकता नम्रता और सेवामें है।"

प्रातः होनेपर गाड़ीवान आया। जब उसने मुनिराजकी लाश देखी तो उसके मनमें अपार वेदना हुई। वह सोचने लगा कि इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनिराजकी हत्या करनेवाला कोई चाहे क्यों न हो, पर मेरी लकड़ियाँ भी निमित्त हैं। अतः मुझे भी हत्याजन्य पाप लगेगा। इस प्रकार वह पश्चात्ताप करने लगा।

वह मुनिहत्याका समाचार राजा तक पहुँचानेके लिए नगरकी ओर चल दिया और आधे दिनमें राजाके पास पहुँचा। जब राजाको उक्त समाचार प्राप्त हुआ तो उसने कोतवालको बुलाकर मुनि-हत्यारेको शीघ्र ही पकड़ लेनेका आदेश दिया।

कोतवाल चला और चण्डिकाके मन्दिरमें पहुँचा। उसने पुजारिनसे पूछा—"यहाँ रात्रिमें कौन ठहरा था।"

पुजारिन—"मुझे मालूम नहीं।"

कोतवालने पुजारिनको पीटते हुए पुनः पूछा—"सच सच बताओ यहाँ कौन ठहरा था, अन्यथा तुझको ही प्राणदण्ड मिलेगा"

पुजारिनने भयसे काँपते हुए कहाँ—"कोई बदमाश तो यहाँ नहीं आया; किन्तु समुद्रदत्तकी पत्नी अपने दास-दासियोंके साथ यहाँ अवश्य ठहरी थी।"

कोतवाल—धनश्री यहाँ किस लिए आई थी, उसका कौन-सा कार्य था। कल न तो अष्टमी थी, न चतुर्दशी और न अन्य कोई पर्व तिथि ही थी, जिससे उसे देवीकी पूजा करनी होती। अवश्य ही इस कार्यमें उसका कोई रहस्यपूर्ण हाथ होना चाहिए। अतः साधारणतः नारी अपनी दुष्टतावश अनेक रहस्यपूर्ण कर्मोंको कर सकती है। नारीके हृदयको पहचानना बड़ा कठिन है। उसके हृदय में मोह-ममताका सद्भाव कृत्रिमरूपमें भी संभव है।" कोतवाल समुद्रदत्तके घर पहुँचा। उसने द्वार पर स्थित दासीसे पूछा—"सार्थवाहकी पत्नी धनश्री यहाँ है या नहीं?"

दासीने घबड़ाकर पूछा—"उनसे आपको क्या काम है?"

कोतवालने डाँटते हुए—अरी पापिनी! मुनिहत्याके समाचार को भूल गई है क्या?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दासी—"मुझे स्वामिनीने मुनिराजके स्थानका पता लगाने भेजा था। जब कल तीसरे पहर मुनिराज भिक्षाके लिए आये, तो उन्हें आते देखकर स्वामिनी उद्विग्न हो गईं, उनके शरीरसे पसीना निकलने लगा और घबड़ाकर मुझसे बोलीं कि तुम जरा पता लगाओ कि यह साधु कहाँ ठहरा है। मैंने छिपकर साधुका पीछा किया और जब यह समाचार सुनाया कि साधु चण्डिकायतनके पश्चिमवाले उद्यानमें ठहरा हुआ है, तो वह सन्ध्या होते ही चण्डिकायतन चलनेकी तैयारी करने लगीं। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देवीकी पूजा की और मध्यरात्रिके समय वे कहीं वाहर भी गई थीं। जब लौटकर आईं तो मैंने उनसे पूछा कि आप इस समय कहाँ गई हुई थीं? इस पर उन्होंने उत्तर दिया—'मैं प्रदक्षिणा देने गई थी।' मैंने उस समय अग्निकी उठती हुई लपटें भी देखी थीं।"

कोतवालको परिस्थिति समझनेमें बिलम्ब नहीं हुआ। उसने भीतर प्रविष्ट हो धनश्रीको गिरफ्तार कर लिया। धनश्री प्रधान न्यायाधीशके समक्ष उपस्थित की गयी। न्यायाधीशने इस मुकद्दमे-को पेचीदा समझकर राजाके पास भेज दिया।

राजा सोचने लगा—"क्या नारी इतनी क्रूर हो सकती है? जो नारी जननी है, क्या वही हत्यारी हो सकती है?"

राजाने पूछा—"तुम चण्डिका देवीके मन्दिरमें किस लिए गई थीं।"

धनश्री—काँप रही थी, पर उसके मुखसे उत्तर नहीं निकल सका।

राजा—'तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? तुम्हारा वास्तविक पति कौन है? क्या तुमने ही यह घृणित कार्य किया है?

धनश्री—"मैं सुशर्म नगरके सार्थवाह पूर्णभद्रकी पुत्री हूँ और समुद्रदत्तकी पत्नी।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके पति समुद्रदत्तकी खोज की गयी, पर उसका पता नहीं चला। जब नन्दकको घर लौटनेपर यह पता चला कि धनश्रीने धन मुनिराजकी हत्या कर दी है, तो उसके मनमें पश्चात्ताप हुआ और भयके कारण वह नगर छोड़कर दूर देश चला गया।

राजाने सुशर्म नगरसे पूर्णभद्रको भी बुलाया। पूर्णभद्रने यथार्थ परिस्थितिपर प्रकाश डाला, जिससे राजाको संसारसे विरक्ति हो गयी। नारी और इतने कठोर कर्म, यह कैसे संभव हुआ।

क्या नारीका पातिव्रत केवल दिखावटी है, वह पातिव्रतके शवको जला सकती है? श्रद्धा और विवेकके अभावमें नारीका पातिव्रत सचमुच मुर्दा है। मुर्दा पातिव्रत किस प्रकार समाजोपयोगी हो सकता है। जीवनकी यथार्थता सेवा, त्याग, प्रेम, और इन्द्रियजयमें है। भले ही वासनाके दास उक्त गुणोंको आदर्शके अन्तर्गत रखें, पर वास्तविकता यह है कि उक्त गुणोंसे ही मानवताकी प्रतिष्ठा होती है, अतः इन गुणोंको यथार्थमें स्थान प्राप्त होना आवश्यक है।

धनश्रीको नगरसे निर्वासित कर दिया और वह रूपके बाजारकी शोभा बढ़ाने लगी।

●

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्वचिदपि कुमाता

प्राचीन कालमें कौशाम्बी नगरीमें अत्यन्त शक्तिशाली और शूर-वीर अजितसेन नामक नृपति निवास करता था। इसने अनेक युद्धोंमें बड़े-बड़े अहंकारी और बलशाली राजाओं परास्त किया था। इस राजाका बुद्धिसागर नामक मन्त्री था। बुद्धिसागर यथार्थ नाम-वाला था; अजितसेनको राजकार्यमें मन्त्रीसे बड़ी सहायता प्राप्त होती थी। सन्तान न होनेसे बुद्धिसागरको चिन्ता हुई, उसने तीर्थों-की यात्रा की, साधुओंका समागम किया और मन्त्र-तन्त्रकी साधना की। शुभोदयसे उसके यहाँ पुत्रजन्म हुआ, जिसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। ब्रह्मदत्त प्रतिभाशाली और भविष्णु था। जो भी उसके रूप-सौन्दर्यकी ओर देखता था, वह इकटक दृष्टिसे उसे देखते ही रह जाता था। शनैः शनैः पुत्र वृद्धिगत होने लगा और वह अपने बौद्धिक कार्योंमें प्रवीणता प्रदर्शित करने लगा।

ब्रह्मदत्तका विवाह इन्द्रशर्माकी पुत्री जालिनीके साथ सम्पन्न हो गया। जालिनीका रूप-सौन्दर्य अद्‌भुत था, पर उसका स्वभाव प्रारम्भसे ही क्रूर था। पता नहीं कौनसा विधिका विधान था, जिसके कारण जालिनी अपने कर्त्तव्य और कार्य-व्यवहारोंमें भी जालिनी बनी हुई थी।

समय पाकर जालिनी गर्भवती हुई। उसके गर्भमें पुण्यात्मा जीव था, अतः उसे तीर्थयात्रा, देवपूजा, सामायिक और स्वाध्याय करनेका दोहद उत्पन्न हुआ। उसके मनमें एक इच्छा उत्पन्न होती थी कि किसी प्रकार इस गर्भको गिरा दिया जाय तो अच्छा है। यद्यपि उसे दोहद मंगलमय वस्तुओंका अथवा तीर्थभूमियोंके दर्शन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ही उत्पन्न हुआ था, पर पूर्व जन्मके निदानके कारण उसकी इच्छा बार-बार गर्भपातकर देनेकी होती थी। उसने गर्भपातकर देनेका प्रयास भी किया, पर उसे सफलता नहीं मिली।

जब जालिनीकी पापमयी मनोवृत्तिका परिज्ञान ब्रह्मदत्तको हुआ, तो उसने परिचारिकाओंको दृढ़तापूर्वक आदेश दिया कि जालिनीको इस पापकृत्यसे रोका जाय। यदि वह इस प्रकारके पापकृत्य करनेका प्रयास करे, तो तत्काल इसकी सूचना दी जाय।

परिचारिकाओंकी सतर्कताके कारण जालिनी अपने उक्त कृत्यमें सफल नहीं हो सकी। जब प्रसव-काल निकट आया तो ब्रह्मदत्तने पहलेसे ही पुत्रको पाषाणहृदया माताके पाससे उठाकर अन्यत्र रख देने तथा पालन-पोषणकी समुचित व्यवस्था कर देनेका दृढ़ संकल्प किया। ब्रह्मदत्तकी इस व्यवस्थाका परिणाम यह हुआ कि जालिनी पुत्रकी हत्या न कर सकी।

जिस कक्षमें पुत्र जन्म हुआ, उस कक्षमें सर्वत्र तेज व्याप्त हो गया। पुत्र अत्यन्त प्रभावशाली, तेजस्वी और रूप-लावण्य युक्त था। जो भी उस पुत्रको देखता, वही उसके रूप-लावण्यकी प्रशंसा करता। उसमें एक अद्‌भुत आकर्षण था, पर आश्चर्य यह कि स्वयं माँको ही वह पुत्र अच्छा नहीं लग रहा था, उसने उसे मार डालनेका पूरा प्रयास किया।

ब्रह्मदत्तने उत्पन्न होते ही बालकको माताके पाससे हटा दिया और यह घोषितकर दिया कि मृतपुत्र उत्पन्न हुआ है। जालिनीको इस सूचनासे बड़ी खुशी हुई, वह सोचने लगी—"मेरी मनोकामना सिद्ध हो गयी। पापगर्भके बालकको रखनेसे मैं पापिनी बन जाती। माताको सन्तानसे वात्सल्यभाव रहता है, पर न मालूम मेरा क्यों इस बच्चेसे इतना द्वेष है। मैं उसकी मंगलकामनाकी अपेक्षा अमंगलकी अभिलाषा करती हूँ। अवश्य ही यह किसी कार्यका विपाक है। कर्मविपाक ही प्राणियोंको अनेक कष्टोंको देता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मदत्तने पुत्रका नाम शिविकुमार रखा। उसके विद्याध्ययन-की पूरी व्यवस्था तथा गुप्तरूपमें पुत्रको योग्य बनानेके लिए सभी प्रकारके साधनोंको एकत्र किया। जालिनीको विश्वास हो चुका था कि उसका पुत्र जन्म लेते ही मृत्युको प्राप्त हो गया है। अतः वह निश्चिन्त होकर अपने पड़ौसको नारियोंसे चर्चा किया करती कि हाय, मेरा पुत्र जन्म लेते ही चल बसा, यह मेरे किसी अशुभ कर्मका उदय है।

ब्रह्मदत्तने शिविकुमारकी शिक्षा-दीक्षाका सुन्दर प्रबन्ध किया। वह बौद्धिक विकास करनेवाली शिक्षाके अतिरिक्त शरीरको विकसित करनेवाले व्यायाम एवं खेलकूदोंमें भी प्रवीण हो गया। व्यवसाय-वाणिज्यकी शिक्षा भी उसने प्राप्त की। कुशाग्रबुद्धि और दृढ़ अध्य-वसायके कारण शिविकुमारने लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी शिक्षा प्राप्त कर ली। पिताने सोचा कि अब पुत्र वयस्क हो गया, अतः इसे छिपाकर रखना उचित नहीं। छिपाकर रखनेसे न तो पुत्रका ही विकास होगा और न मेरे परिवारका। यद्यपि इसकी माँ इससे स्वाभाविकरूपमें द्वेष करती है, पर कब तक कुमारको छिपाया जायगा। इस प्रकार ऊहा-पोहकर उसने घोषित कर दिया कि शिवि-कुमार जीवित है और उसे घर बुला लिया गया है।

माता जालिनीने दिखावटी प्रसन्नता प्रकट की और छल-कपट प्रदर्शितकर पुत्रपर अपना विश्वास जमाना चाहा। एक दिन जालिनीने ब्रह्मदत्तसे कहा—"स्वामिन्! यह दुष्ट किस प्रकार जीवित रह गया। आप तो कहा करते थे कि जन्म लेते ही उसकी मृत्यु हो गयी। आपने मेरे साथ यह धोखा क्यों किया? अब स्पष्ट है कि इस घरमें या तो कुमार रहे, या मैं रहूँ। दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं।"

इस प्रकारके पापमय संकल्प और कथाएँ संसाररूपी वृक्षके लिए जलके समान हैं। मोक्षके लिए प्रयत्नशील व्यक्तिको इनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्याग करना आवश्यक है। इन कषायोंसे कर्मका संचय होता है, कर्मोदयसे भय और भयसे दुःख प्राप्त होता है।

कषायोदयसे अनर्थ करनेवाले कार्योंका सम्पन्न होना भी कठिन नहीं। राग, द्वेष और मोहके वशीभूत होकर ही संसारी प्राणी जघन्य पाप करनेमें प्रवृत्त होता है। जो पाप कर्म करनेसे अपनेको बचाना चाहता है, उसे कषायभावोंका नियन्त्रण करना चाहिए। कषायोंका नियन्त्रण ही व्यक्तिको शान्ति प्रदान करता है।

: २ :

जब शिविकुमारने माता-पिताके उक्त वार्तालापको सुना, तो उसे महान् आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—"जन्म देनेवाली माँ भी क्या अपने बेटेके लिए इस प्रकारकी बातें सोच सकती है। अभी तक विमाताओंके कुव्यवहारकी ही कथाएँ मिलती थीं, पर अब जालिनी जैसी सगी माताके पापकर्मोंकी कथाएँ भी मिलने लगेंगी। अब मैं इस घरमें नहीं रह सकता हूँ। मेरे रहनेसे पिताजीको भी कष्ट होगा। पिता मेरे निर्दोष हैं, मुझसे अत्यन्त स्नेह करते हैं। वे मेरे उपकारके लिए अपने समस्त सुखोंका त्यागकर सकते हैं, पर मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण पिताजीको कष्ट हो। अतएव अब मुझे अपने लिए कोई रास्ता तैयार करना पड़ेगा।"

शिविकुमार अशोकवनमें पहुँचा। वह प्रकृतिके सौन्दर्यका अवलोकन करने लगा। उसने देखा कि अशोकवृक्षके नीचे एक मुनि ध्यानस्थ हैं। वे आर्त, रौद्र इन दोनों ध्यानोंसे रहित मन, वचन, कायको वशमें करनेवाले, चारों कषायोंके दमनमें समर्थ, पञ्चेन्द्रियोंके निग्रहमें संलग्न, छः कायके जीवोंपर दयाभाव करनेवाले, सात प्रकारके मन्त्रोंसे युक्त, आठ मद रहित, ब्रह्मचर्यकी नव बाड़ोंसे रक्षित, धर्माराधनामें प्रवृत्त एवं श्रुतके पारगामी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन आचार्यका नाम विजयसिंह था। शिविकुमार उनके पादमूलमें गया और 'नमोऽस्तु' कहकर वन्दना की। धर्मलाभका आशीर्वाद प्राप्त होनेपर उसने आचार्यजीसे पूछा—

"प्रभो! आपके विरक्त होनेका क्या कारण है? अभी आपकी अवस्था पच्चीससे अधिक नहीं और शरीर भी अत्यन्त सुन्दर है। इस सुन्दरतासे आपके वैभवकी भी सूचना प्राप्त होती है। अतः कृपाकर यह बतलाइये कि आप स्वजनवर्गसे निरपेक्ष हो इस प्रकारकी अपरिग्रहताको कैसे प्राप्त हुए।"

गुरु—"वत्स! क्या अस्थि-माँस और रुधिर निर्मित इस शरीरमें भी सौन्दर्य होता है! क्षणविध्वंसी वैभव क्या कभी किसीको सुखदायक हो सकता है? क्या वैभव और विषयभोगोंसे किसीकी तृप्ति हुई है? स्वप्नके समान चंचल इस स्वजन-समागमसे क्या? जिसप्रकार रात्रिमें पक्षी एक वृक्षपर वसेरा लेते हैं और प्रातःकाल होते ही वे अपने-अपने स्थानको उड़ जाते हैं, उसीप्रकार संसारके स्वजन हैं। इनका समागम भी क्षणिक है। इष्टवियोग और अनिष्टसँयोग जन्य कष्ट तो भोगना ही पड़ता है।"

"कुटुम्बियोंके मध्यमें रोगपीड़ित होनेपर भी इस अकेले प्राणीको ही कष्ट भोगना पड़ता है। कुटुम्बी उसके रोगको न तो बांट सकते हैं और न दूर ही कर सकते हैं।"

"बान्धवोंको रोता छोड़कर यह जीव अकेला ही मरण करता है। मरनेवालेको न तो बन्धु ही मरणसे बचा सकते हैं और न पत्नी ही। मृत्युकी अनिवार्यता कोई रोक नहीं सकता। संसारमें जन्म लेते ही मरण निश्चित हो जाता है। अन्य बातें भले ही अनिश्चित रहें।

"अकेला ही प्राणी कर्म करता है और अकेला ही उसका फल भोगता है। अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरण करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक व्यक्ति अपने किये गये कर्मका फल अकेला ही प्राप्त करता है। अतः संसारमें कौन स्वजन है और कौन परजन ? शत्रु मरकर पिता बनजाता है और पुत्र शत्रु। इस अस्थिर संसारमें सम्बन्धोंकी कल्पना करना ही निराधार है।"

"वत्स ! मैं लक्ष्मीनिलय नामक नगरके सागरदत्त और श्रीमती का पुत्र हूँ। मैं एक दिन इस नगरके निकटवर्ती लक्ष्मीपर्वतपर गया। इस पर्वतके एक ओर स्थित स्निग्ध पत्तोंवाला, पृथ्वीमें दूर-दूर तक लम्बी-लम्बी जड़ोंवाला एक नारियलका वृक्ष दिखलायी पड़ा। इसे देखकर मेरे मनमें कौतुक उत्पन्न हुआ और मैंने विचार किया—'अरे ! यह महान् आश्चर्यका विषय है कि वृक्षकी जड़ें पर्वतसे उतरकर पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गई हैं ? इसका अवश्य कोई कारण होना चाहिए।'

"इसी समय सुगन्धित वायु चलने लगी, प्रमोद उत्पन्न हो गया और पशु-पक्षी अपना स्वाभाविक वैर-भाव छोड़ प्रेमसे रहने लगे। समस्त ऋतुओंके फल-पुष्प विकसित हो गये। भ्रमर मनोहर-रूपमें गुंजार करने लगे। सारा प्राकृतिक वातावरण आनन्दमय हो गया, सर्वत्र हर्षोल्लास व्याप्त हो गया।"

इसी बीच मध्यकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, विशुद्ध तपे हुए स्वर्णके समान कमनीय, जय-जय ध्वनिसे युक्त एवं देवों द्वारा परि-वेष्टित मैंने अजितनाथ स्वामीके धर्मचक्रका दर्शन किया। इनकी इस समवशरण सभामें अष्टप्रतिहार्य विद्यमान थे। इसमें मणि और स्वर्ण निर्मित तीन परकोटे थे, दिव्य तोरण बनाये गये थे, रत्नमय विचित्र दरवाजे थे, जिन पर उन्नत ध्वजाएँ लहरा रही थीं। गूँजते हुए भ्रमरोंसे युक्त सुगन्धित पुष्प सुशोभित थे, ऊँचे-ऊँचे श्वेत आतपत्र मनका हरण कर रहे थे, वैडूर्य मणियोंसे निर्मित दिव्य सिंहासन शोभित हो रहा था।

भगवान् अजितनाथका धर्मोपदेश हो रहा था। वे षट्द्रव्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्ततत्त्व, नवपदार्थकी व्याख्या कर रहे थे। इसी बीच मैंने प्रश्न किया—'भगवन् ! उस नारियलके वृक्षकी जड़ें पृथ्वीमें इतनी दूर तक क्यों गई हैं? क्या वहाँ सम्पत्ति है, इस सम्पत्तिको किसने रखा है, उस सम्पत्तिका परिमाण क्या होगा ?'

तीर्थंकरकी दिव्य ध्वनिमें बताया—"लोभ कषायको तीव्रताके कारण इस वृक्षकी जड़ें पहाड़से नीचे उतर कर पृथ्वीमें धँस गई हैं। वहाँ सात लाख दीनार प्रमाण धन है। इस धनको तुमने और नारियलके जीवने स्थापित किया है।"

मैंने पूछा—"प्रभो ! मैंने इस धनको क्यों स्थापित किया ? इससे धर्मसाधनरूप परिणाम किस प्रकार होगा ?"

"इसी विजयक्षेत्रमें अमरपुर नामक नगर है। इस नगरमें अमरदेव नामका गृहस्थ रहता था। उसको सुन्दरी नामकी भार्या थी। उस दम्पतिके गुणचन्द्र और बालचन्द्र नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। यौवन प्राप्त होने पर वे दोनों व्यापारके हेतु इसी दिशामें आये। उन्होंने अपना सामान बेच कर बहुत धन लाभ किया। इसी समय विजयवर्म राजाने लक्ष्मीनिलयके राजा सूरतेज पर आक्रमण किया। राजा नगरके समस्त धनको लेकर इस पर्वत पर आ गया और तुम दोनों भी उस राजाके साथ धन लेकर शत्रु सेनाके भयसे लक्ष्मीनिलम पर्वत पर आ गये और उस धनको पृथ्वी में गाड़ दिया। कुछ दिनों पश्चात् गुणचन्द्रने, तुम धनका बटवारा कर लोगे, इस भयसे तुमको विष दे दिया, जिससे तुम्हारी मृत्यु हो गयी। इधर गुणचन्द्रको भी एक सर्पने काट लिया और वह मर कर रत्नप्रभा पृथ्वीमें नारकी हुआ। अनन्तर तुम कुछ कम पल्योपमायुको बिता कर इसी विजयक्षेत्रमें टंकणपुर नगरमें हरिनन्दन सार्थवाहकी वसुमतिनामक पत्नीके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। कालक्रमसे बढ़ने लगे और तुम्हारा नाम देवदत्त रखा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणचन्द्रका जीव नरकसे निकल कर इसी पर्वत पर सर्प-पर्यायमें उत्पन्न हुआ और उसने उक्त धनको अपना आवास बनाया। एक दिन तुम लक्ष्मीनिलय पर्वतपर भ्रमण करनेके उद्देश्यसे आये। गुणचन्द्रके जीव सर्पने अपने धनका प्रतिद्वन्द्वी समझ तुमको काट लिया। तुम्हारे सेवकोंने सर्पको मार डाला, जिससे वह इसी पर्वत पर सिंहपर्यायमें उत्पन्न हुआ और तुम कृताञ्जला नगरीमें कुलपुत्र शिवदेवकी यशोधरा पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए। यहाँ तुम्हारा नाम इन्द्रदेव रखा गया।

तुम्हारे युवा होने पर राज्यवीरदेवने तुमको लक्ष्मीनिलयके लिए भेजा। तुम अपने सैनिकों सहित यहाँ आये और नीमके वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। जब गुफा निवासी सिंहकी दृष्टि तुम्हारे ऊपर पड़ीं, तो वह तुम्हारे ऊपर झपटा। तुमने तलवारका आघात किया। फलतः तुम और सिंह दोनों ही मृत्युको प्राप्त हुए।

इसके पश्चात् तुम दोनों श्रीस्थल नामके नगरके यक्षदास नामक चाण्डालकी पत्नी मातृयक्षीके गर्भसे यमल—जुड़वा भाईके रूपमें उत्पन्न हुए। समय बीतने पर तुम्हारा नाम कालसेन और उसका नाम चन्द्रसेन रखा गया।

किसी समय शिकार खेलते हुए तुम दोनों लक्ष्मीनिलय पर्वत पर आये। यहां तुमने एक शूकरको बाण मारा। चन्द्रसेन अपनी कटारीसे पर्वतको खोदने लगा और खोदते-खोदते उसे वही निधि-कलश दिखलायी दिया। उसने इस डरसे, कहीं तुम उस निधिकलश मेंसे अपना हिस्सा माँगने न लगो, अतः उसने तुमको निश्चिन्त समझ कटारसे मार दिया। तुम मरकर बालुकप्रभामें पाँच सागरो-पमायुके नारकी हुए। चन्द्रसेन वहाँ निधिकी रक्षा करता हुआ रहने लगा। एक दिन उसे भी भिल्ल राजोंने मार दिया, जिससे वह अठारह सागरोपमायु प्राप्त कर तमप्रभामें नारकी हुआ। अनन्तर तुम अपनी आयुको पूर्ण कर नरकसे निकल इसी विजय-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षेत्रमें श्रीमती नामकी नगरीके शालिभद्र नामक गृहस्थकी नन्दिनी नामकी पत्नीके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। तुम्हारा नाम बाल-सुन्दर रखा गया। युवावस्था आनेपर तुमको शीलदेव नामक श्रमण-के दर्शन हुए और उनके उपदेशसे तुमने अहिंसाधर्म स्वीकार किया। विधिपूर्वक श्रावकके व्रतोंका अनुष्ठान किया। तुमने समाधिमरण-पूर्वक शरीरका त्याग किया, जिससे तुम लौकान्तिक देव हुए। वहाँसे च्युत हो इसी विजयक्षेत्रके हस्तिनापुर नगरमें सुहस्ति नामक सेठकी कान्तिमती पत्नीके गर्भसे पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए और द्वितीयने भी नरकसे निकलकर तुम्हारे पिताकी सोमिला नामकी दासीके गर्भसे पुत्ररूपमें जन्म प्राप्त किया। तुम्हारा नाम समुद्रदत्त और उसका नाम मङ्गलक रखा गया। तुम्हारा विवाह लक्ष्मी-निलयके अचल सार्थवाहकी पुत्री जिनमतीके साथ सम्पन्न हुआ।

एक दिन तुम मंगलकके साथ इस लक्ष्मीनिलय पर्वतपर आये और यहाँ इस नारियलके पेड़की जड़ोंको देखकर तुमने भूमिमें निधि होनेका अनुमान किया। मंगलकने एक नुकीली लकड़ीसे भूमि खोदना आरम्भ किया। जब वह कुछ दूर तक खोद ले गया तो उसे कलशका किनारा दिखलाई पड़ा। उसे विश्वास हो गया कि यहाँ धन होना चाहिए। तुमने मंगलकसे कहा—भद्र ! चलो, लौट चलें, इस कलशको यों ही ढककर छोड़ दो। इस समाचारको अभी किसीसे नहीं कहना चाहिए। अतः इस निधिके लिए न मालूम कितने लोग मर मिटेंगे।

मंगलक सोचने लगा—'यह अवश्य ही अकेले धन ग्रहण करना चाहता है, इसी कारण इस प्रकारकी बातें कर रहा है। यह मुझे धोखा देना चाहता है और मैं इसे। देखें, अब विजय किसकी होती है।

दोनों वहाँसे चलकर लक्ष्मीनिलय नगरके निकट आये। एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उद्यानमें ठहरनेके अनन्तर तुमने मंगलकसे कहा—"मंगलक जाओ, मेरी सुसरालमें मेरे आनेका समाचार निवेदित कर दो। मंगलक सोचने लगा—"धन-प्राप्तिके लिए यह मुझे धोखा देना चाहता है, इसीलिए सुसराल जाना चाहता है। यह मेरी बुद्धिमत्तासे परिचित नहीं।"

"वह नगरमें गया और इधर-उधर घूमकर लौट आया। उसने बताया कि आपकी भार्या जिनमती पुंश्चली है, यह किसी अन्य पुरुषके साथ चली गयी है। इसी कारण आपके ससुर और अन्य कुटुम्बी बहुत लज्जित हैं। स्त्रीके स्वभावका क्या विश्वास?"

मंगलकके इन वचनोंको सुनकर तुमने विचार किया कि यों तो मुझे अपनी पत्नीके शीलपर अटूट विश्वास है, वह व्रती है, कभी इस प्रकारका कार्य नहीं कर सकती है। अवश्य इसमें कोई बात है। दूसरे क्षण उसके मनमें विचार उत्पन्न हुआ कि चंचला लक्ष्मी और पत्नीपर विश्वास करना उचित नहीं।"

तुम विरक्त हो चल पड़े गुरुकी तलाशमें। तुम अनंगदेवकी तलाशमें ग्राम, नगर और वन-पर्वतोंको पार करते हुए उनके समीप पहुँचनेका प्रयास करने लगे। तुमने मंगलकसे कहा—'भाई अब तुम लौट जाओ, मैं तो अध्यात्मिक मार्गका पथिक हूँ। अब मेरे साथ चलना उचित नहीं।'

मंगलकने निवेदन किया—'स्वामी, मैं आपको तब तक अकेला नहीं छोड सकता हूँ, जब तक आप किसी निश्चित स्थानपर नहीं पहुँच जायेंगे।'

मंगलकके मनमें आशंका थी कि संभवतः तुम उसे धोखा देकर धनका कलश अकेले ही ग्रहण करना चाहते हो, अतएव वह तुमको मारनेके प्रयासमें था। जब तुम आगे बढ़े तो मौका पाकर मंगलकने छुरा मारनेका प्रयत्न किया। छुरेका वार खाली गया; तुमने पीछेकी ओर मुड़कर देखा तो मंगलक भागता दिखलायी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ा। तुमने मंगलकको रुकनेके लिए आवाज लगाई, पर वह रुका नहीं और अधिक तेजीसे दौड़ने लगा।

इसी बीच वहाँ एक साधु-संघ आया। तुमने साधुओंकी वन्दना की, साधुओंने तुमको धर्मलाभका आशीर्वाद दिया। इसी संघमें आचार्य अनंगदेव भी थे, तुमने गुरुकी वन्दना की। तुम गुरु अनंगदेवके साथ थानेश्वर गये, वहाँ अनंगदेव एक महीने तक निवास करते रहे। यहाँ तुमको जिनमतीका वास्तविक समाचार मिला। मंगलकने जिनमतीके सम्बन्धमें जो निवेदन किया था, वह मिथ्या था। जिनमती अत्यन्त सती-साध्वी और पतिभक्ता थी। तुमने जिनमतीके सम्बन्धमें मंगलक द्वारा दिये गये समाचारोंको वंचना समझा, पर तुम मोहके प्रपंचको छोड़नेके लिए बद्धपरिकर थे, अतः तुम अपने संकल्पको छोड़ न सके।

जिनमतीको जब पतिकी विरक्तिका समाचार प्राप्त हुआ, तो वह भी संन्यासिनी बननेके लिए तैयार हो गयी। वह तुमको तलाश करती हुई आई और बोली—'आर्यपुत्र! आपने अच्छा विचार किया है, मैं आपके सुन्दर विचारोंकी प्रशंसा करती हूँ।

तुम दोनोंने दीक्षा धारणकर ली और तपश्चरण द्वारा तुमने ग्रैवेयकमें जन्म प्राप्त किया। मंगलक उस निधिकी रक्षा करता हुआ वहीं पर रहने लगा। लुब्धक परिणामोंसे मरणकर उसने तम नामक नरकमें जन्म लिया। वहाँसे च्युत हो राष्ट्रवर्धन गाँवके वेल्लितक चाण्डालके घरमें बकरेके रूपमें जन्मा। एक दिन वेल्लितक अन्य बकरियोंके साथ उस बकरेको लेकर इसी निधिके पास आया। यहाँ आते ही उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया और निधिकी ममता जागृत हो गयी।' चाण्डाल द्वारा बार-बार घसीटनेपर भी वह वहाँसे जाना ही नहीं चाहता था। फलतः इसी घसीटनेमें उसकी मृत्यु हो गयी और वह घनाश्रम चूहा बना। किसी समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमचण्ड नामका धूताचार्य वहाँ आया और शालबृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। जब चूहेने देखा कि वह धूताचार्य कदाचित् मेरी इस निधिको लेना चाहता है, वह क्रोधित होकर उसके चारों ओर चक्कर काटने लगा। यहाँ वह धूताचार्य द्वारा मारा गया और उसकी पत्नीके गर्भसे नाक-कान रहित पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ। युवा होनेपर उसने चोरी-डकैतीका कार्य करना आरम्भ किया। एक दिन वह चोरीमें पकड़ा गया और राजा द्वारा उसे शूलीका दण्ड प्राप्त हुआ। मरणकर नरक गया और वहाँसे च्युत हो लक्ष्मीनिलयके अशोकदत्त सेठकी पत्नी शुभंकाराके गर्भसे कन्यारूपमें उत्पन्न हुआ। कन्याका नाम श्रीदेवी रखा गया। यौवनवती होनेपर श्रीदेवीका विवाह सागरदत्त सार्थवाहके पुत्र समुद्रदत्तके साथ सम्पन्न हुआ।

तुम स्वर्गसे च्युत होकर इसी श्रीदेवीके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। देवशर्मा नामक आचार्यके पास तुमने शिक्षा प्राप्त की। युवा होनेपर तुम्हारा विवाह ईश्वरस्कन्द श्रावककी कन्या नन्दिनीके साथ सम्पन्न हुआ। पुत्र उत्पन्न होनेपर पुत्रका वार्धापन संस्कार सम्पन्न किया गया। इस संस्कारके सम्पन्न करनेके हेतु तुम ध्वज गाड़नेके लिए इसी पर्वतके पार्श्व प्रदेशमें आये। यहाँ गड्ढा खोदते समय तुमको वह निधिकलश मिला। उस कलशको अन्यत्र रखकर और उस स्थानको उसी तरह भरकर नगरीमें आये। तुमने विचार किया कि माँसे पूछकर इस सम्बन्धमें निर्णय किया जायगा।

जब मातासे तुमने उस निधिकी बात कही तो उसने कहा कि मुझे उक्त स्थानको दिखलाओ तभी कुछ निर्णय किया जा सकेगा। जब तुमने अपनी माँ श्रीदेवीको वह निधि दिखलायी तो श्रीदेवीके मनमें लोभ उत्पन्न हुआ। पूर्व जन्मके संस्कारवश श्रीदेवीने तुमको प्रोषधोपवासकी पारणाके अनन्तर विष खिला दिया। विषके प्रभावसे मूर्छित होनेपर तुम्हारी पत्नी नन्दिनीने रोना-धोना शुरू

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। कपटवश श्रीदेवीने भी जोर-जोरसे रोना आरम्भ किया। संयोगवश इसी समय वहाँ एक सिद्ध पुरुष आया और उसने विषापहार मन्त्र द्वारा तुम्हारा विष दूर कर दिया। जब तुम्हें चेतना प्राप्त हुई तो तुमने विचार किया कि यह संसार स्वार्थपूर्ण है। इसमें माता भी पुत्रको धनके लोभसे विष खिला सकती है, फिर अन्य सम्बन्धोंकी बात ही क्या। अतएव इस संसारसे मुक्त होनेका उपाय दीक्षा धारणकर तप करना है। तुमने अपने निश्चयके अनुसार श्रमणदीक्षा ग्रहण की और तपश्चरण द्वारा प्राण त्यागकर ग्रैवेयक स्वर्गमें जन्म प्राप्त किया।

श्रीदेवी धनलोभसे निधिकलशके पास ही निवास करने लगी। उसने वहाँ एक पीठकी स्थापना की। न तो वह उस निधिमेंसे एक मुद्रा स्वयं लेती और न अन्य किसीको लेने देती। केवल संरक्षक बन उसकी रक्षा करती रही। इस लोभके कारण वह नरक, तिर्यञ्च आदि अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करती हुई अन्तमें नारियलके पेड़के रूपमें उसने जन्म प्राप्त किया है। अत्यधिक लोभप्रवृत्तिके कारण इस वृक्षकी जड़ें धनकलश तक पहुँच चुकी हैं।

तुम स्वर्गादिके परिभ्रमणके पश्चात् सागरदत्तके घर श्रीमतीके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए हो।"

उपर्युक्त आत्माख्यानको सुनकर मेरे मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और मैंने विजयधर्म गणधरके निकट दीक्षा धारण कर ली। युवावस्थामें दीक्षा ग्रहण करनेका उक्त कारण है।

शिखीकुमार—"प्रभो ! धर्मका मार्ग क्या है?"

विजयसिंह आचार्य—"दान, शील, तप और सद्भावना धर्मका मार्ग है।"

"दान तीन प्रकारका है—ज्ञानदान, अभयदान और धर्मोपग्रहदान।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"जिस ज्ञानके प्राप्त करनेसे जीव बन्ध, मोक्षका ज्ञाता हो जाता है तथा मोक्ष-सुखकी प्राप्तिका साधन ज्ञान है, ऐसे ज्ञानका प्रचार-प्रसार करना ज्ञान-दान है। ज्ञान प्राप्त करनेमें किसी भी प्रकारसे सहायता करना भी ज्ञानदान के अन्तर्गत है। ज्ञानके समान संसारमें कोई चीज सुखदायी नहीं है। ज्ञानी व्यक्ति इन्द्रियों और मन, वचन, कायका निग्रहकर कर्मोंकी अनन्तगुणी निर्जरा कर सकता है। चतुर्गतिका परिभ्रमण भी ज्ञान द्वारा ही रोका जा सकता है। ज्ञान-प्राप्तिके लिए सहायक साधनों द्वारा सहायता देना, ग्रन्थ अध्ययनार्थ प्रदान करना, शिक्षककी व्यवस्था करना, सम्यक्-ज्ञानकी प्राप्तिके हेतु द्वादशांग श्रुतज्ञानके अध्ययनार्थ सहयोग देना ज्ञानदानके अन्तर्गत है।

षट्कायके जीवोंकी रक्षा करना, दयाधर्मका पालन करना और समस्त प्राणियोंके ऊपर समताभाव रखना अभयदानके अन्तर्गत है।

संसारके दुःखी प्राणी भी जीवित रहना चाहते हैं, अतः सभी प्राणियोंको प्राण अत्यन्त प्रिय हैं। जो अन्य प्राणियोंकी प्राणरक्षा करता है, वह अभयदानी है।

अभयदानके प्रभावसे प्राणी दीर्घायु, सुन्दर, स्वस्थ और नीरोग होता है तथा अन्य गतिमें भी यह समस्त प्राणियों द्वारा प्रशंस-नीय होता है।

मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनारूप नवकोटिसे शुद्ध होकर धर्मात्मा व्यक्तियोंको धर्मसाधनमें सहायक वस्तुएँ दान देना धर्मोपग्रह दानके अन्तर्गत है।

दाताको मदरहित, श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए। जिस प्रकार अच्छे खेतमें बोया गया बीज अधिक फलवान् होता है, उसी प्रकार अच्छे पात्रको दिया गया दान अधिक सफल होता है।

शीलका तात्पर्य सदाचारसे है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और परिग्रहरूप पाँच पापोंका त्यागकर व्रतोंका पालन करना शील है। क्रोध, मान, माया और लोभरूप कषायोंका निग्रह करना एवं क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयमका पालन करना शीलके अन्तर्गत है।

समस्त कर्मोंके क्षयके लिए जो अनुष्ठान—आचरण किया जाता है, वह तप है। इस तपके बाह्य और अभ्यन्तर दो भेद हैं। अनशन—भोजनत्याग, ऊनोदर—कम भोजन करना, वृत्तिपरिसंख्यान—आजीविकाके लिए सीमित साधनोंका नियम अथवा भोजनके लिए गृहोंका नियम, रसत्याग—गरिष्ठ भोजनका त्याग और कायक्लेश—उपवास, व्रत आदिके द्वारा शरीरको कृश करना बाह्यतप है। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग अभ्यन्तर तप हैं। इस प्रकार तपश्चरण द्वारा कर्मोंकी निर्जरा करनेमें प्रवृत्त होना चाहिए।

भक्ति, संसारसे जुगुप्सा, कामविरक्ति एवं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावना सद्भावना है। मित्र-शत्रुमें समता रखना, गुणियोंके गुणोंको देखकर प्रमोद करना भी सद्भावना है।"

शिखीकुमारने आचार्य द्वारा उक्त धर्मका स्वरूप अवगतकर श्रमणधर्मके स्वरूपको जाननेकी इच्छा प्रकट की। आचार्यने संक्षेपमें श्रमणधर्मका पूरा स्वरूप समझाया तथा कुमारको श्रमण-दीक्षा ग्रहण करनेका अधिकारी भी समझा। उत्तम क्षमादि दश धर्म, ईर्या-भाषादि समितियों, बाईस परीषहों एवं छः प्रकारके चारित्रोंका विश्लेषण किया।

शिखीकुमार श्रमणधर्मके तत्त्वोंको अवगतकर प्रसन्न हुआ। वह आचार्यसे अन्य बातोंकी चर्चा कर रहा था कि इतनेमें ब्रह्मदत्त हथिनीपर सवार होकर वहाँ आया। शिखीकुमारने प्रणाम कर कहा—"तात! मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिए।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मदत्त—"वत्स, क्या बात है, मेरा जीवन तुम्हारे अधीन है। अतः जो भी कहना चाहो, निर्भीक होकर कहो।"

शिखीकुमार—"तात ! आप संसारके स्वभावसे अवगत हैं। मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। प्रियजनोंका समागम अनित्य है, सम्पत्ति चंचल है, यौवन पुष्पसारके समान है, विषय-वासनाएँ संसारमें परि-भ्रमण कराती हैं, विषय-फल भयंकर होता है। एवं मृत्यु सदा अनि-वार्य है। अतः आप मुझे श्रमण-दीक्षा धारण करनेकी अनुमति दीजिए।"

शिखीकुमारने आचार्य विजयसिंहसे श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली और वह आत्मशोधनमें प्रवृत्त हुआ। ब्रह्मदत्त वहाँ एक महीने तक बना रहा। जब संघ वहाँसे प्रस्थान करने लगा तो ब्रह्मदत्त भी अपने घर लौट गया।

जब ब्रह्मदत्त घर पहुँचा तो जालिनीको शिखीकुमारका समा-चार ज्ञात कर बहुत कष्ट हुआ। वह सोचने लगी—"हाय यह मुझसे बच कर निकल गया। मैं उसका काम तमाम नहीं कर सकी। अभी मुझे अपने अवशिष्ट कार्यको करना है।

मुझे मधुर वचनोंमें सन्देश भेजकर उसे यहाँ बुलाना चाहिए। जब वह यहाँ आ जायगा तो अवश्य ही मेरे हाथों मारा जायगा। इस कार्य-सिद्धिके लिए मुझे प्रयत्न करना होगा।" इस प्रकार विचार कर उसने सोमदेवको उसे बुलानेके लिए भेजनेका निश्चय किया। जालिनी रत्नकम्बल सोमदेवको सौंपती हुई बोली—"पुत्रसे कहना कि श्रमण होने पर भी माताका आदेश अनुल्लंघनीय होता है। माता समस्त देवी-देवताओंसे बढ़ कर पूज्य है। जननीके ऋणसे कोई मुक्त नहीं हो सकता है।"

सोमदेव साधु-संघमें पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि शिखीकुमार आगमका अध्ययन करनेमें संलग्न है। वह सूत्रार्थ पढ़नेमें प्रवृत्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोमदेव—"स्वामिन् मैं कोशाम्ब नगरसे आया हूँ। शिखीकुमार श्रमणकी माताजीने मुझे यहाँ भेजा है। उन्होंने अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए आपके कुशल समाचार जाननेकी इच्छा व्यक्त की है।"

शिखीकुमार—"माताजीको क्या सन्ताप है? क्यों पश्चात्ताप कर रही हैं?"

सोमदेव—"भगवन्! आपके दीक्षा ग्रहण करनेसे उनके मनमें अपार वेदना है। उन्हें इस बातका पश्चात्ताप है कि पुत्र मेरे व्यवहारसे असन्तुष्ट होकर दीक्षित हो गया। प्रभो! माताका हृदय अगाध और विराट् समुद्रसे भी विशाल और गम्भीर होता है। उसकी पहचान करना बहुत कठिन है।"

शिखीकुमार सोचने लगा—"वास्तवमें माताके स्नेहको समझना बड़ा कठिन है। माताके स्वाभाविक प्रेमका प्रतिकार नहीं किया जा सकतां है। अज्ञानी प्राणी माताके महत्त्वको नहीं जान सकता है। माँसे बढ़कर प्यार करनेवाला दूसरा कोई नहीं हो सकता।"

शिखीकुमार—सोमदेव! मैं माताके व्यवहारसे निर्वेदको प्राप्त नहीं हुआ हूँ। मुझे तो इस संसारकी वास्तविक स्थितिसे विरक्ति हुई है। अतः माताको इसके लिये गर्हा करना व्यर्थ है। गर्हा, निन्दा तो सुखके दिनोंकी वस्तु हैं और ये सांसारिक सुख जलकी लहरके समान चंचल हैं।"

सोमदेव—"देव! आपकी माताजीने कहा है—'स्त्रियाँ तुच्छ हृदय, अविवेकी, विचारशून्य, चंचल स्वभाव, ईर्ष्यालु, असत् वस्तुको ग्रहण करनेमें रत एवं पश्चात् सन्ताप करनेवाली होती हैं। अतः आप स्त्री समझ कर उन्हें क्षमा कर दीजिये।"

"कुमार! आप एक बार कोशाम्ब नगर अवश्य चलिए। अपनी माँसे हाथका आहार ग्रहण कर और कुछ दिन वहाँ धर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचन कर चले आइये। श्रमणवृत्तिके धारीको वहाँ चलनेमें आनाकानी नहीं करनी चाहिये। आप वस्तुस्थितिके ज्ञाता हैं, अनः आपके मनमें पुराने व्यवहारसे सजग रहनेकी भावना उत्पन्न ही नहीं होनी चाहिए। मनुष्यकी विचारधारा सर्वथा एक-सी नहीं रहती—वह तो निरन्तर वदलती रहती है।"

श्रमण शिखीकुमार—"सोमदेव! अकारण ही माँ सन्तप्त हो रही हैं। माँने मुझे अकेला ही वहाँ बुलाया है, अतः मैं गुरुकी आज्ञा लिए विना नहीं जा सकूँगा। आप गुरुके पास जाइये और उनसे मेरे कोशाम्ब चलनेकी अनुमति लीजिए।"

सोमदेवने गुरुसे जालिनी द्वारा शिखीकुमारके बुलाये जानेका समाचार निवेदित किया। आचार्यने सोमदेवसे कहा—"वत्स अभी शिखीकुमारने शास्त्राध्ययन आरम्भ किया है। जब यह अध्ययन समाप्त हो जायगा, तो इनको वहाँ भेज देंगे।"

बहता जल और विहार करता हुआ श्रमण एक स्थानपर ठहर नहीं सकते। अतएव जालिनी देवीका आग्रह निरर्थक है। अब शिखीकुमारके साथ उनका पुत्रका सम्बन्ध नहीं। ये अस्थिर सम्बन्ध तो सांसारिक दृष्टिसे होते हैं। निश्चयतः आत्माका आत्मा ही सम्बन्धी है, अन्य कोई नहीं।"

एक दिन ब्रह्मदत्तकी मृत्युका समाचार साधु-संघको प्राप्त हुआ। गुरुने सोचा शिखीकुमारका परिवार गृहपतिकी मृत्युसे विचलित हो गया होगा, अतएव इस समय शिखीकुमारका कोशाम्ब नगर जाना और परिवारको सान्त्वना देना आवश्यक है।

: ४ :

गुरु आज्ञासे शिखीकुमार कोशाम्ब नगर गया और वहाँके मेघवन नामक उद्यानमें जाकर ठहर गया। नगरमें श्रमण शिखी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारके पधारनेका समाचार व्याप्त हो गया। मुनि-दर्शनके लिए नर-नारी एकत्र होने लगे। राजा और अन्य नागरिक मुनिके पास आये और उनकी पूजा-अर्चा की।

शिखीकुमारने मानव-जीवनका रहस्य समझाया तथा मानवता-का महत्त्व प्रतिपादित किया। उन्होंने बताया कि पड़ौसी, नागरिक, देशवासी एवं राष्ट्रनिवासियोंके साथ अपने परिवार जैसा ही व्यवहार करना चाहिये। जो व्यक्ति प्रेम, उदारता, सहनशीलता और सेवावृत्तिको ग्रहण कर लेता है, वह सुखका अनुभव करता है। त्याग और संयममें जो सुख है, वह सांसारिक भोगोंमें नहीं। अत-एव लोकाचारका पालन भी प्रेम और सेवाके अभावमें नहीं हो सकता है।"

अगले दिन भिक्षाचार्यके लिए जब शिखीकुमार नगरमें प्रविष्ट हुआ, तो वह अपनी माताके पास भी गया। वहाँ उसने देखा कि पिताकी मृत्युके पश्चात् वैभव भी नष्ट हो चुका है। घरमें दरिद्रता देवीका निवास है जिसके कारण दोष ही दोष दिखलायी पड़ रहे हैं। वह वहाँ पहुँच कर अपनी माता जालिनीदेवीको पहचान भी नहीं सका। शोक एवं धनाभावके कारण उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। वह वृद्धा जैसी प्रतीत हो रही थी। शिखीकुमार-को उस पर दया आई और उसने माता तथा अन्य कुटुम्बियोंको धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। उसने कहा—

"देव और असुर भी धन, पराक्रम, स्वजन, बल एवं चतुरंग सेना द्वारा भी मृत्युको जीतनेमें समर्थ नहीं हो सकते हैं।"

"रोग और बुढ़ापारूपी तीक्ष्ण दाँतवाला तथा सैकड़ों प्रकारकी विपत्तिरूपी तीक्ष्ण नखवाला मृत्युरूपी सिंह जीवरूपी मृगको घात करनेके लिये संसारमें परिभ्रमण करता है।"

"मृत्यु सभीके लिये अनिवार्य है। यह उस पागल व्यक्तिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समान है, जिसे स्वजन-परजनका विवेक नहीं है। न यह अपकारी-का ध्यान रखती है, न भावुक प्रेम करनेवालोंका ही। न इसे आर्यका ध्यान है और न अनार्यका।"

"जो पाप और अत्याचार कर धनार्जनमें अपना जीवन लगा देता है, उसे भी मृत्युका शिकार होना पड़ता है और जो लोकसेवा, त्याग और संयममें अपना जीवन व्यतीत करता है, वह भी अवश्य मरण प्राप्त करता है।"

"इस प्रकार इस मरणशील संसारमें पापाचरणका त्याग कर धर्माचरणमें अपने मनको लगानेका प्रयत्न करना चाहिये। जो समस्त प्राणियोंपर दया करता है, पंचेन्द्रियोंका निग्रही है, संसारके भयोंसे दूर है और जिसे रत्नत्रयकी प्राप्ति हो चुकी है, वह शाश्वत सुख प्राप्त कर लेता है। संसारके विषयभोग शान्ति नहीं देते, इनके सेवनसे वांछाकी वृद्धि हाती है। आशा, लालसा और तृष्णा बढ़ती हुई दुःखका कारण बनती हैं।"

इस प्रकार उपदेश देने पर जालिनीने कहा—"वत्स ! अब इस संसारका रहस्य मुझे ज्ञात हो चुका है। ये संसारके भोग किसीको शान्ति नहीं दे सकते, अतः मेरे योग्यतानुसार मुझे भी व्रत दे दीजिये।"

शिखीकुमारने श्रावकधर्मका उपदेश दिया। उसने पंचाणुव्रतों-की विस्तृत व्याख्या बतायी।

जालिनीने श्रमणधर्मकी प्रशंसा करते हुए पञ्चाणुव्रत ग्रहण किये। उसने अपने आचारको पवित्र बनानेका नियम लिया।

व्रत धारण करने पर भी जालिनीकी आत्मा शालिनी नहीं बन सकी। वह जालिनी ही रही। उसने विचार किया—"विश्वास दिला कर ही शिखीकुमारकी हत्या की जा सकती है। मेरे मनमें इस बातका बहुत दुःख है कि यह अभी तक जीवित है। यह सत्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि मेरी कुक्षिसे जन्मा है, पर क्या मैं इसे पुत्रवत् स्नेह कर सकती हूँ। मुझे इसे देखते ही क्रोध आता है, या मैं कुछ कर नहीं पाती। पता नहीं इसके पिताको क्यों इससे प्रेम था, क्यों वह इसके दर्शनके लिए जन्त तक लालायित रहे। इस नालायकके कारण ही मेरा सुहाग नष्ट हुआ है, यदि यह दीक्षा धारण न करता तो शायद इसके पिताका अभी स्वर्गवास नहीं होता। न मालूम इसने कौन-सा जादू कर दिया था, जिससे वे इसके नामको अन्तिम साँस तक नहीं भूल सके।"

यह पुत्र नहीं, शत्रु है। अतः इसकी हत्या किसी न किसी प्रकार करनी होगी। साधुसंघको यहाँ आये हुए एक पक्ष वीत चुका है। अब यहाँसे इनको विहार करनेमें विलम्ब नहीं है। अतएव अब्र मुझे अपना काम यथाशीघ्र कर लेना है।

अगले दिन चतुर्दशी थी। सभी साधुओंने चतुर्दशीका व्रत रखा और उस दिन वे नगरमें भिक्षाचर्या करनेके लिए नहीं निकले। जालिनीने सोचा कि कलका दिन ही मेरे हाथमें है, यदि कल मेरी मनोकामना पूर्ण न हुई, तो फिर जीवनमें कभी भी मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकेगी। मेरे घर भिक्षाके लिए शिखिकुमारका आना सम्भव नहीं। दूसरी बात यह है कि मेरे घरसे आहार प्राप्त करने पर भी उसे खाना या न खाना तो उसकी इच्छाके अधीन है।

अतएव मैं आज घी, चीनी और आटेसे कासार तैयार करती हूँ। इस कासारमें तीक्ष्ण हलाहल मिलाकर ऐसे मोदक बनाऊँगी, जिनके भक्षण मात्रसे प्राण पखेरु उड़ जायें। मेरे मोदक देखनेमें सुन्दर और खानेमें सुस्वादु होंगे। इन समस्त साधुओंके प्राण लेनेकी अपेक्षा केवल शिखीकुमारका बध करना ही मुझे अभीष्ट है।

उसने अपनी योजनाके अनुसार विषमिश्रित मोदक तैयार किये। इन मोदकोंके साथ कासारको लेकर वह पूर्णिमासीके प्रातःकाल ही मेघवनमें पहुँची और शिखीकुमारसे कहने लगी—"श्रमणाचार्य !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज मेरी इच्छा आपको भोजन करानेकी है, कृपया आज मेरा अन्न स्वीकार कीजिए।"

शिखीकुमार—"माताजी! आप श्रमण आचारको न जाननेके कारण ही इस प्रकारकी बातें कर रही हैं। श्रमण किसीका निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता। वह अपने उद्देश्यसे बने हुए भोजनको ग्रहण नहीं करता।"

आप चर्याके समय संघके समस्त साधुओंको अपने भोज्य पदार्थ दे सकती हैं, वे उन्हें ग्रहण कर सकते हैं, पर निमन्त्रणके रूपमें वे स्वीकार नहीं करते।"

जालिनी—"मुनिराज! जैसी आपकी आज्ञा, पर एक निवेदन है कि आपको मेरा आग्रह स्वीकार करना पड़ेगा। आप आज मेरा आहार ग्रहण कीजिए। आप यह भूलिये नहीं, कि मैं आपकी माँ भी हूँ। माँकी आज्ञा सांसारिक दृष्टिसे आपको अवश्य स्वीकार करनी होगी। माँका यह सम्बन्ध तो समाप्त प्रायः है। यतः श्रमणके माता-पिता अर्हन्त ही होते हैं, अन्य नहीं।

शिखीकुमारने पर्याप्त सोच-विचार कर कहा—"माँजी आपकी आज्ञा मैं स्वीकार करूँगा, इसके लिए मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। एकाध महीने तक लम्बी साधना करनी होगी।"

चर्याके समय सभी साधु निकले। जालिनीने अपना बनाया कासार सभीको खिलाया। जब शिखीकुमारने भिक्षाचर्याके लिए प्रस्थान किया, तो जालिनीने उसका मार्ग रोक लिया और आग्रह सहित अपने कक्षमें ले गयी।

उसने अन्य भोज्य पदार्थोंके साथ विषमिश्रित मोदक भी खिलाये। मोदकोंका प्रभाव भोजनके पश्चात् तुरन्त होने लगा।

शिखीकुमारकी वाणी अवरुद्ध हो गई। तालू सूख गया, ओठ नीले पड़ गये और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। जब साधु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संघने उसकी यह अवस्था देखी तो संघ बहुत चिंतित हुआ। उपचारकी व्यवस्था की गयी। पर कोई लाभ न हुआ।

शिखीकुमारने संल्लेखना धारण कर ली। शनैः शनैः उसका शरीर भी नीला होने लगा। साधुओंने आगमपाठ सुनाना आरम्भ किया। अन्तिम हिचकी आई और शिखीकुमारकी जीवन-लीला समाप्त हो गई और उसने ब्रह्मस्वर्गमें जन्म प्राप्त किया।

जालिनी वड़ी प्रसन्न थी, जैसे कोई अलभ्य वस्तु उसे उपलब्ध हुई हो। परम सन्तोषकी साँस लेती हुई वोली—आज मेरी चिर अभिलाषित कामना पूर्ण हो गई। मैं जिस कार्यको आजसे दस वर्ष पूर्व नहीं कर सकी थी, आज वही कार्य सम्पन्न हो गया। अब तक माता कुमाता नहीं होतीं, यह किंवदन्ति प्रचलित थी, पर अब "क्वचदपि कुमाता भवति" किंवदन्ति प्रचलित हो जायगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सती वेश्या

वेश्यामें भी शील हो सकता है, वह भी धनका त्यागकर व्यक्ति-विशेषके गुणोंसे प्रेम कर सकती है, इसकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी। सभीका यही विश्वास है कि गणिकाका सती-साध्वी होना उतना ही असम्भव है, जितना समुद्रकी लहरोंको गिनना अथवा मरुभूमिमें उत्तम फसलकी कामना करना। पर इसका अपवाद थी—देवदत्ता। उसने गणिका कुलमें जन्म अवश्य प्राप्त किया था, किन्तु कभी भी गणिकाके पेशेको महत्त्व नहीं दिया। उसका मानसिक संस्थान एक विशेष प्रकारका था, वह सदाचार और आदर्शमें विश्वास करती थी। जीवनका लक्ष्य विलास करना नहीं, त्याग और सेवा करना है।

देवदत्ताकी माँ उसे शिक्षा देती—"बेटी! हमारा कार्य धनिक वर्गको अपने चंगुलमें फँसाना है। हमारा प्रेम ओसकणोंके तुल्य होता है, जब तक धन मिलता रहता है, हमारा प्रेमव्यापार चलता रहता है, जहाँ धन मिलना बन्द हुआ, हम धक्का देकर निर्धनको घरसे निकाल देती हैं। हमारा सर्वस्व रुपया है, व्यक्तिविशेष नहीं, रूप नहीं, गुण नहीं, ज्ञान नहीं और न सदाचार ही है। तुम पता नहीं किस धातुकी बनी हो कि पढ़-लिखकर भी यथार्थतासे अपरिचित हो। जो तुम्हें सोनेसे पीला कर दे उसीको तुम्हें अपना यौवन समर्पित करना चाहिए।"

देवदत्ता—"माँ! आपका कथन मेरे लिए प्रभावक नहीं है, मैं इस सुन्दर शरीर और रूपलावण्यको प्राप्तकर धनिक वर्गके हाथकी कठपुतली नहीं बनना चाहती हूँ। मैं विलास और वैभवको तुच्छ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझती हूँ। अंगविलेपन, चन्दनरस और कुङ्कुम मेरे लिऐ आकर्षक नहीं, मैं इन पदार्थोंको व्याधि-वर्धक समझती हूँ। मनुष्यकी वृत्तियों-का निर्माण कर्म-संस्कारोंके कारण होता है। कुंठाएँ ही मनुष्यको नीच कर्म करनेके लिए प्रेरित करती हैं।"

देवदत्ताकी माँ—"अरी तू रूपगर्विता है, अभी तो अनेक सेठ, साहूकार, राजकुमार, मन्त्रिपुत्र तुम्हारे चारों ओर चक्कर काटते हैं, पर जिस दिन यौवनका ज्वार-भाटा शान्त हो जायगा, कोई तुम्हारे पास नहीं आयेगा। अभी तुम मेरी कमाईपर मौज करती हो, अपना पेशा चालू करो। इन्हीं दिनोंमें वेश्याओंको धन प्राप्त होता है। जब बुढ़ापा आ जाय तो सतीत्वके गुण गाना। तुम्हारी जैसी रूप-विभूति यदि मुझे मिलती तो मैं सोनेके कई भवन बनवा देती। कल अचलसेठ आया था, वह तुम्हारे रूपका दास बना हुआ है। कोटद्याधीश है, तुम एक बार उसकी ओर प्रेमदृष्टिसे देख भी दो, तो वह निहाल हो जाय और तुम्हें लाखोंकी सम्पत्ति दे डाले।

मैंने अचलसे कह दिया है कि मैं देवदत्ताको समझा-बुझाकर मार्गपर ले आऊँगी। कलसे उसका आना आरम्भ हो जायगा। कल उसने जो हार दिया है, तुम उसकी चमकको देखते ही मुग्ध हो जाओगी। इस नगरका सबसे बड़ा धनी है, उसके पास अपरिमित सम्पत्ति है। बेटी, इस प्रकारके रूपलोभी भ्रमरोंसे धन छीन लेना ही वेश्याका कार्य है। अब तुम मूलदेवके प्रेमको भूल जाओ। उस भिक्षुकके साथ रहकर तुम्हें क्या मिलेगा। तुम गुणी, संगीतज्ञ, नृत्यकलामें पटु एवं हावभावमें प्रवीण हो, अतएव पातिव्रतकी चर्चा कर केवल मूलदेवके पीछे पड़े रहना, अनुचित है। मैं स्पष्ट कह देना चाहती हूँ कि अब हमारा खर्च मेरी कमाईसे नहीं चल सकता है। तुम्हें भी मेरे साथ अपना पेशा करना होगा।"

देवदत्ता सोचने लगी—"कब तक मैं इन अन्तर्द्वन्द्वोंसे बचती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहूँगी। मेरा निश्चय अटल है, मैं जीवनमें मूलदेवको छोड़ अन्य किसीको प्यार नहीं कर सकती। मेरा प्राणाधार या जीवनदेवता मूलदेव ही हो सकता है। उसके पास धन नहीं तो कोई बात नहीं, वह गुणी है, ज्ञानी है, कलामर्मज्ञ है और साथ ही वास्तविक प्रेमी भी है। मैं शारीरिक श्रमकर रूखी-सूखी दो रोटियाँ कमा लूँगी। न मुझे महल चाहिए, न अट्टालिकाएँ और न धनवैभव। मेरा सर्वस्व मूलदेव है, वह मेरी आँखोंके सामने सदा बना रहे, तो मुझे स्वर्ग भी फीका दिखाई पड़ता है। भारतीय नारीने एक बार जिसे अपना हृदय सौंप दिया वह सदाके लिए उसकी हो जाती है। शीलका माहात्म्य सर्वोपरि है।"

मूलदेवको यहाँ पधारे अधिक दिन नहीं हुए हैं। जब मूलदेव इस उज्जैनी नगरीमें आया था और अपनी कलाओंके प्रदर्शन द्वारा मेरे मनको अनुरंजित किया था, तभीसे मैं अपना तन-मन उसे समर्पित कर चुकी हूँ। मूलदेवकी वाणीमें कितना मिठास है। आज भी उसके प्रथम दिनकी वाणी मेरे कानोंमें गूँज रही है। मैं मूलदेव जैसे कलाकारको प्राप्त कर धन्य हूँ। मेरी मोहनिद्रा टूट चुकी है और मेरा हृदय उमंगसे नाच रहा है। जीवनमें क्रान्ति करना ही तो जीवनकी गतिशीलता है। अतः मैं अब गणिकाका पेशा नहीं करूँगी, नहीं करूँगी।"

नरकमें ढकेल देना साधारण बात है, पर नरकमें पड़ेको निकालना कठिन है मैं अपने नारकी पेशेसे घृणा करती हूँ। सद् गृहस्थका जीवन-यापन करना चाहती हूँ। मैं माताजीकी स्वार्थपूर्ण बातोंको स्वीकार करनेमें असमर्थ हूँ। मेरी अपनी जिम्मेदारियाँ हैं, इन जिम्मेदारियोंका निर्वाह मैं भली-भाँति कर सकती हूँ। शरीर बेचना और धन कमाना मैं किसी भी नारीके लिए अभिशाप मानती हूँ। क्या नारी जीवनका लक्ष्य विषय-वासनाकी तृप्ति करना ही है, और कुछ नहीं? नारीको भी पुरुषके समान आत्मोत्थानका अधिकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त है। वह भी विषय-वासनाके गर्तसे निकल कर तपश्चरण कर सकती है। कलाकी साधना ही नारीका संबल है।"

देवदत्ताको उक्त विचारोंसे बड़ी सान्त्वना प्राप्त हुई। उसने अपने मनमें निश्चय किया कि चाहे जो भी कष्ट उठाना पड़े पर वह अपने सतीत्वको नहीं बेचेगी। सतीत्व ही जीवनका सर्वस्व है। यही नारीका आभूषण है। कोई वेश्या कुलमें जन्म लेने मात्रसे अपवित्र नहीं हो सकती, पवित्रताका साधन शील-सदाचार और विवेक आदि गुण ही हैं। अचल विपुल सम्पत्ति क्यों न समर्पित करे, मैं उसके हाथ अपनेको बेच नहीं सकती हूँ। मैं इस जीवनमें मूलदेवके अतिरिक्त अन्य पुरुषोंको पिता, भाई और पुत्रके समान समझूँगी। वास्तवमें रूप-सौन्दर्य और गुणोंमें मूलदेव है भी अचलसे बड़ा। उसकी तुलनामें अचल बहुत ही हल्का और निम्न स्तरका है। माँ प्रतिदिन अचलकी प्रशंसा करती रहती है। धन-बाहुल्यके कारण अचल उसे अधिक प्रिय लगता है। धन-प्रलोभनके कारण ही उनकी दृष्टि पक्षपातपूर्ण हैं, अतः उन्हें गुणी मूलदेव तुच्छ और निर्गुण अचल श्रेष्ठ प्रतीत होता है। मैं आज माँकी परीक्षा कर अचलकी मूर्खता और मूलदेवकी चतुराई सिद्ध कर देना चाहती हूँ।

: २ :

देवदत्ताने अपनी दासीको आदेश दिया कि आज जब अचल यहाँ पधारें तो उनसे कहना कि स्वामिनीकी गन्ना खानेकी इच्छा है, अतः कल गन्ना भिजवा देनेकी व्यवस्था करें। जब अचल देवदत्ताके घर आया तो दासीने पूर्वोक्त समाचार अचलको निवेदित किया।

अचलने अपनी प्रियाको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे अगले दिन एक गाड़ी गन्ना भरकर देवदत्ताके यहाँ भिजवा दिया। गाड़ी पर गन्नेको देखकर देवदत्ताने अपनी माँसे कहा—"क्या मैं हथिनी हूँ, जो इतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गन्ना इस प्रकार पत्तियों सहित भेज दिया है। इस प्रकारका फूहड़ कार्यको कोई मूर्ख ही कर सकता है, चतुर व्यक्ति नहीं। जिसमें प्रतिभा होगी, वह व्यक्ति ऐसा कार्य नहीं करेगा। मनुष्यकी पहचान उसके कार्योंसे ही होती है।

देवदत्ताकी माँ—"बेटी! अचल बहुत उदार है, जो उदार व्यक्ति होता है, वह थोड़ी चीज भेजनेमें अपना अपमान समझता है। अचलने समझा होगा कि तुम स्वयं तो गन्ना खाओगी ही, अपने पड़ोसियोंको भी दोगी। अतः उसने उदारतावश ही एक गाड़ी गन्ना भेज दिया है। इसमें उसकी बुद्धिकी कमी नहीं है। जिसके घरमें रुपयोंके रखनेके लिए कोई स्थान न हो, वह व्यक्ति साधारण धनी नहीं हो सकता है। धनसे ही संसारमें मनुष्य बलवान्, विद्वान्, ज्ञानी, संन्यासी और सदाचारी माना जाता है। धनको नीतिकारोंने द्वितीय प्राण माना है।"

देवदत्ता सोचने लगी—"माँ धनके लोभमें पड़कर यथार्थतासे दूर हैं। उनकी निर्णय करनेकी क्षमता नष्ट हो गयी है।"

"मैं माताको सबसे अधिक पूज्य मानती हूँ। माँ ही लोकमें समाधान है, दुःख-दैन्यमें आशा है, निर्बलतामें शक्ति है। वह प्रेम, करुणा, सहानुभूति और क्षमाका स्रोत है।"

"प्रकृतिकी प्रत्येक वस्तु माँकी स्मृति उत्पन्न करती है। सूर्यको पृथ्वीकी जनन-शक्ति माना जा सकता है, वह उसे तापरूपी पोषण देता है। यह पृथ्वी भी पेड़-पौधों और फलोंकी माँ है। वह उन्हें जन्म देती है, पालती-पोसती और बड़ा करती है। माँकी इतनी अधिक व्यापकता होनेके कारण मैं उनकी आज्ञाकी अवहेलना भी कैसे करूँ।

मेरा निश्चय सर्वथा अटल है और माँकी आज्ञा भी मेरे लिए अनुल्लंघनीय है, पर इस द्वन्द्वात्मक स्थितिमें मेरा मानसिक सन्तुलन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टूट रहा है, बिखर रहा है। मैं कह नहीं सकती कि मेरे शीलका निर्वाह किस प्रकार होगा। माँके समक्ष मूलदेवकी प्रतिभाका परिचय भी प्रस्तुत कर देना आवश्यक है। अतएव आज मूलदेवसे भी गन्ना मंगाया जाता है, इस कार्यसे दोनोंकी प्रतिभाका अन्तर स्पष्ट हो जायगा।

मूलदेवने बाजारसे चार गन्ने खरीदे और उन्हें छिलवाकर टुकड़े करा लिए। इन टुकड़ोंको इलायची, दालचीनी, लवंग एवं केशरसे सुवासित किया तथा उन्हें स्वच्छ तश्तरियोंमें भरकर रूमालसे आच्छादित कर देवदत्ताके पास भिजवा दिया।

देवदत्ताने उन तश्तरियोंको अपनी माँको दिखलाया तथा पूछा—"प्यारी माँ मूलदेव और अचलकी बुद्धिकी परीक्षा कीजिए और बतलाइये कि इन दोनोंमें कौन अधिक बुद्धिमान है। एक ओर धन है तो दूसरी ओर प्रतिभा-धन है।

देवदत्ताकी माँ—"बेटी! यह सत्य है कि मूलदेव कलाकार है, बुद्धिमान् है और सुशिक्षित है, पर धन-वैभवसे सब कुछ खरीदा जा सकता है, जो उसके पास नहीं है। अचल चाहे तो बड़े-से-बड़े विद्वान्को नौकर रख सकता है, बड़े-बड़े गुणी उसके सामने पूंछ हिला सकते हैं।"

: ३ :

उज्जयिनी नरेशके यहाँ पुत्रोत्सव मनाया जा रहा है। बड़े-बड़े कलाकार बुलाये गये हैं। इस उत्सवमें अनेक स्थानोंके अधीनस्थ राजा विपुल भेंट-सामग्री लेकर प्रस्तुत हुए हैं। दूर-दूरके संगीतज्ञ, नृत्य कलाविद अपने-अपने उपकरणों सहित उपस्थित हो गये हैं। राजा स्वयं मानवतावादी, धर्मनिष्ठ और करुणाशील कलाकार है। तूलिका और वीणा दोनों ही उसकी आराध्या हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवनकी सात्विकताको अक्षुण्ण रखते हुए ही कलाकी साधना-की जाती है। कला आत्माको रसपान करानेवाली दिव्य वस्तु है और कलाकार समाजका संस्कारक नेता है। राजा कलामें विकलताको स्थान नहीं देता, वह कलाको आनन्दका स्रोत मानता है। रागात्मक अभिव्यक्ति भले ही हो, पर है क्षणिक शान्तिका उपाय।

आज देवदत्ता गा रही थी और वाद्यों द्वारा ताल देनेका कार्य मूलदेव कर रहा था। वह अपने सुरीले कंठको मन्द्र स्वरसे मध्य और मध्यसे तार स्वर तक ले जाती तथा उसकी गतिध्वनिको सुनकर समस्त राजसभा विभोर है। गायनके साथ वह रस-भाव युक्त नृत्य भी कर रही है। चंचल अंगोंकी तीव्रगतिसे घुमानेके कारण उसके अंग-प्रत्यंगोंका सौन्दर्य भी अपूर्व दिखलायी पड़ रहा है। विभिन्न प्रकारसे कटाक्ष विक्षेप करती हुई वह सुकुमार भावोंकी अभिव्यंजना कर रही है। आज समस्त शक्ति लगाकर देवदत्ता अपनी कलाका प्रदर्शन कर रही है और उसका साथ वाद्य बजाता हुआ मूलदेव दे रहा है। दोनोंकी जोड़ीको राजाने विजयी घोषित किया तथा मुँह माँगा वरदान माँगनेका अनुरोध किया।

देवदत्ताने हाथ जोड़ते हुए राजासे विनीत प्रार्थना की—"स्वामिन्! मेरा वरदान अभी आपके पास रहेगा, जब मुझे आवश्कता होगी, आपसे इसे माँग लूँगी। इस समय मेरी समझमें कोई माँगनेवाली बात नहीं आती है।"

राजा—"तथास्तु, देवि! मैं तुम्हारी कलासे बहुत प्रसन्न हूँ; मुझे तुम्हारी कलाका गर्व है। मेरे राज्यमें तुम जैसे गुणी कलाकार, निवास करती हो, क्या यह मेरे लिए सुखकी बात नहीं है। मैं वचनबद्ध हूँ, तुम्हें जब आवश्यकता हो, वरदान माँग लेना।"

"देवि! यह परदेशी कौन है? जिसने वाद्यवादनमें इतनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पटुता प्राप्त की है। उज्जैनी नगरी बड़ी भाग्यशाली है, जिसमें इस प्रकारके गुणी निवास करते हैं।"

देवदत्ता—"महाराज! मैं इनकी शिष्या हूँ। मैंने कलाकी शिक्षा इनसे ही प्राप्त की है। यों ये अपना निवास स्थान पाटलिपुत्र बतलाते हैं। पर दो-तीन वर्षोंसे उज्जैनीमें निवास कर रहे हैं। मैंने इनके गुणोंपर अनुरक्त हो इन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। अब मैं मनसा, वाचा, कर्मणा इनके अधीन हूँ। एक क्षण भी मैं इनके अभावमें जीवित नहीं रह सकती हूँ।"

राजा—"धन्य हो मूलदेव, देवी देवदत्ता, तुम्हारी अनन्य भक्त है। यह नगरी सर्वदा तुम्हारे गुणोंका आदर करेगी। तुम हमारे राज्यकी विभूति हो। मैं तुम्हें अपने राज्यका नागरिक घोषित करता हूँ।"

मूलदेव—"महाराज! आप बड़े उदार और दयालु हैं। मुझ जैसे तुच्छसे आप इतने प्रसन्न हैं कि आपने अपने राज्यकी नागरिकता भी मुझे प्रदान कर दी। मैं तो देवी देवदत्ताकी कलापर मुग्ध हूँ! यही मेरी प्रेरणा है, यही मेरी सरस्वती हैं, यही लक्ष्मी हैं और हैं यही मेरी आराध्या।"

राजा द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित होकर मूलदेव देवदत्ता सहित निवास स्थानपर लौट आया। मूलदेवमें जहाँ अनेक गुण थे, वहाँ एक दोष यह था कि वह जुआ खेलता था। प्रायः जुआमें धन हार जाता था, जिससे देवदत्ताकी माँके क्रोधका वह शिकार बनता। देवदत्ताने भी मूलदेवको समझाया, पर उसने जुआ खेलना न छोड़ा।

जब देवदत्ताकी माँने देखा कि लाख समझाने पर भी देवदत्ता अचलसे प्रेमके स्थानमें घृणा करती है और मूलदेवके प्रति इसका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, तो उसके मनमें चिन्ता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुई और उसने अचलको बुलाकर गुप्त परामर्श करना आरम्भ किया। वह अचलसे कहने लगी—"देवदत्ता मूलदेवसे अत्यधिक प्रेम करती है, लगता है कि उसीके साथ विवाह कर लेना चाहती है। अतः जब तक यहाँ मूलदेव रहेगा, तब तक देवदत्ता अन्य किसीको पसन्द नहीं कर सकती। वह धनको महत्त्व नहीं देती है, महत्त्व देती है गुणोंको। अतएव उसे अपने रास्तेसे मोड़ना कठिन है। इसके लिए कोई उपाय करना पड़ेगा।

मेरी दृष्टिमें उपाय यह है कि देवदत्तासे यह कहकर आप ग्रामान्तर चले जावें कि मैं दो-एक महीनेमें लौटूँगा। मूलदेव अभी आपके डरसे देवदत्ताके यहाँ सर्वदा नहीं आता। अवसर निकालकर ही आता है। पर जब उसे यह मालूम हो जायगा कि आप ग्रामान्तर गये हुए हैं और महीनों बाद वापस लौटेंगे तो वह निर्द्वन्द्व भावसे देवदत्ताके यहाँ आने जाने लगेगा। आप एक दो दिनके बाद छिपकर देवदत्ताके यहाँ पहुँच जाइये और मूलदेवको अपने व्यक्तियोंसे पिटवा दीजिए, जिससे घबड़ाकर वह उज्जैनी छोड़ देगा और देवदत्ता आपकी हो जायगी।

उक्त परामर्शके अनुसार अचलने एक दिन देवदत्तासे कहा—"मैं बाहर जा रहा हूँ, दो-तीन महीनोंमें वापस लौटूँगा। आपको खर्चके लिए जितने रुपयोंकी आवश्यकता हो, ले लीजिए। मेरे पास रुपयोंकी कमी नहीं है।"

देवदत्ता—"मुझे धनकी आवश्यकता नहीं। आप माँसे बातें कर लें, वह जैसा कहे, वैसा करें।"

अचल ग्रामान्तर जानेका अभिनय कर अपने ही घरमें दो-तीन दिनों तक छिपा रहा। मूलदेव अचलके भयसे समय देखकर ही देवदत्ताके यहाँ आता था। जब उसे अचलके विदेश गमनकी सूचना प्राप्त हुई तो कुछ दिनोंके पश्चात् वह देवदत्ताके यहाँ आकर रहने लगा। जब मूलदेवको अचलके आनेका समाचार मिला तो वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारपाईके नीचे छिपकर बैठ गया। अचलने पलँगपर बैठते हुए देवदत्तासे कहा—"परदेशसे जल्दी लौट आनेके कारण मैं शीघ्र ही आपसे मिलने चला आया। मैं आपके लिए बहुत-सा सामान लाया हूँ, जिसे कल आपको भेंट दूँगा। मेरी इच्छा आज यहींपर स्नान करनेकी है, अतः आप नौकरोंको बुलाकर यहीं इस पलंगपर गर्म जल द्वारा स्नान करानेकी व्यवस्था कीजिए। अचलने पलंगपर तैल मर्दन कराया और पश्चात् गर्म जलसे स्नान करने लगा। पलंगके नीचे बैठा हुआ मूलदेव जलसे भींग गया, उसकी बड़ी बुरी अवस्था की। यद्यपि देवदत्ताने स्नानकार्य न करनेके लिए बहुत मना किया था, पर मूलदेवको अपमानित करनेकी दृष्टिसे उसने देवदत्ताकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया।

स्नानके पश्चात् अचलने संकेत कर अपने व्यक्तियोंको वुलाया। अतः अचलके व्यक्तियोंने मूलदेवको पकड़कर पीटना आरम्भ किया। इसके पश्चात् उसने स्वयं मूलदेवको पकड़ लिया और कहने लगा—"बतलाओ, अब तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय ?"

मूलदेव—"जैसा व्यवहार एक सज्जन व्यक्तिका सज्जन व्यक्तिके साथ होना चाहिए।"

अचल—"तुम उज्जैनी छोड़कर चले जाओ, इसीमें तुम्हारी भलाई है। अब अधिक दिन तक चल नहीं सकेगा।"

मूलदेवने उज्जैनी छोड़नेका निश्चय किया और वह वेण्याक तटके लिए चल दिया। मार्गमें बहुत बड़ा जंगल पड़ता था तथा मार्ग भी चोर-डकैतोंसे व्याप्त था। अतः वह अपना साथी खोजने लगा। उसे उस ओर जाता देखकर एक भाट पासमें आया और बोला—"भई ! मुझे भी अपने साथ लेते चलो, दो आदमी साथ रहनेसे मार्ग निश्चिन्ततापूर्वक कट जायगा। जो भी विपत्ति आयेगी, दोनों ही उसको सहन करेंगे।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाटके इन वचनोंको सुनकर मूलदेवने उसे आश्वासन दिया और साथमें ले लिया। जब दोनों चलते-चलते बहुत आगे चले गये तो वहाँ एक जलाशय मिला। मूलदेव सोचने लगा—"यह भाट अपने पाथेयमेंसे मुझे भी कुछ देगा, जिससे मेरा भी भोजन हो जायगा।" पर जब भोजनका समय आया तो उस भाटने अकेले ही सत्तू निकालकर खा लिया, मूलदेव देखता ही रह गया।

मूलदेव सोचने लगा—"इस समय इसने सत्तू नहीं दिया तो क्या, अगले समय अवश्य देगा, जिससे मेरी क्षुधा भी शान्त हो जायगी।"

अगले पड़ाव पर पहुँचने पर उस भाटने पुनः अपनी थैली निकाली और सत्तू घोलकर पी लिया। मूलदेव उसे देखते ही रह गया। मूलदेवने वनमें प्रविष्ट हो कुछ कन्दमूल-फल खाये और वह जल पीकर सो गया। प्रातःकाल होनेपर पुनः अपना मार्ग चलना आरम्भ किया। मध्याह्न-कालमें भाटने सत्तू निकालकर खाया और मूलदेवको नहीं दिया। मूलदेवने किसी प्रकार आज भी फल-फूल खाकर अपनी क्षुधा शान्त की। जब कई दिनों तक मूलदेवको अन्न खानेको नहीं मिला, तो मार्ग चलनेमें उसकी शक्ति जवाब देने लगी। अतएव उसने निकटके ग्राममें भिक्षाटन किया। यहाँ उसे कच्चे-पक्के उड़द भिक्षामें प्राप्त हुए। वह उन उड़दोंको खानेकी तैयारी कर ही रहा था, कि उसे आकाशगामी एक मुनिराज दिखलायी पड़े।

चर्याका समय हो रहा था, अतएव मूलदेवने उस मुनिराजको पड़गाहा और भक्तिभावपूर्वक भिक्षामें प्राप्त उड़द उन्हें आहारमें दिये। मुनिराजका आहार होनेसे पञ्चाश्चर्य हुए और आकाशसे मूलदेवकी जय-जय ध्वनि सुनाई पड़ने लगी।

मूलदेवने आहारदान देकर अत्यधिक पुण्यार्जन किया। जब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अटवी पार हो गयी तो वह भाट अपने रास्तेसे ग्रामान्तरको जाने लगा। इसी समय उसने मूलदेवसे प्रार्थना की—"स्वामिन् ! यदि आप कभी राजा हो जायें, तो मुझे भूलियेगा नहीं। कम-से-कम एक गाँव तो पुरस्कारमें अवश्य दीजिएगा।

मूलदेव—"भद्र ! यदि मैं राजा हो जाऊँगा तो तुमको एक गाँव अवश्य दूँगा। यद्यपि तुम्हारा व्यवहार पेटू—स्वार्थीका रहा है, पर मैं तुमको एक गाँव अवश्य दूँगा।"

वेण्याकतटके निकट पहुँच कर मूलदेव एक उद्यानमें विश्राम करने लगा। वह शान्त-क्लान्त रहनेके कारण एक वृक्षके नीचे सो गया। इसी समय मध्यरात्रिमें उसने स्वप्न देखा कि वह श्वेत-कान्तिसे परिपूर्ण चन्द्रमण्डलको पान कर रहा है। यही स्वप्न किसी अन्य पथिकने भी देखा था। वे दोनों प्रात:काल जगे और अपने साथियोंसे उक्त स्वप्नका फलादेश पूछा। इन लोगोंसे सन्तोषजनक उत्तर न पाकर मूलदेव स्नान आदिसे निवृत्त होकर हाथमें फल-पुष्प ले दैवज्ञके यहाँ गया।

दैवज्ञ स्वप्नको सुनकर आश्चर्यचकित हुआ और सोचने लगा—"एक सप्ताहके बीच यह स्वप्न द्रष्टा अवश्य राजा बनेगा। अत: किसी उपायसे यदि इसका विवाह अपनी कन्यासे कर दूँ, तो मेरी कन्या सहजमें रानी बन सकती है।"

प्रत्यक्षरूपमें दैवज्ञने फल बतलाते हुए कहा—"महानुभाव ! इस स्वप्नका प्रथम फल यह हे कि आपका विवाह मेरी कन्याके साथ होगा, इस कन्याके भाग्य द्वारा ही आपका भाग्य फल देगा। यह सत्य है कि यदि आप मेरी कन्याके साथ विवाह कर लें तो आपके भाग्योदयमें विलम्ब न हो।"

मूलदेव—"भविष्यवक्ता ! मैं दरिद्र परदेशी हूँ। मेरे पास खानेको भी कुछ नहीं है। फिर आप मुझ अपरिचितको अपनी कन्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किस प्रकार देंगे। न मेरे घर है न कोई झोपड़ी और न किसी वृक्ष आदिके नीचे रहनेका स्थान ही। सम्पत्तिके नाम पर केवल शरीर सम्पत्ति ही सब कुछ है, अन्य कोई वस्तु मेरे पास नहीं है। अतएव आप स्वयं अच्छी तरह विचार ले, तभी मेरे साथ सम्बन्ध करनेकी बात तय करें।"

दैवज्ञने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया—"महानुभाव ! मैं विचारकर उत्तर दे रहा हूँ। कल शुभ लग्नमें आपका विवाह सम्पन्न हो जायगा। मैं भाग्यवादी हूँ, अतः मेरी कन्याके ग्रह-नक्षत्र तुम्हारे साथ मिल गये हैं, अतएव अब सम्बन्ध करनेमें पीछे हटनेकी बात नहीं है। जिन बातोंके सम्बन्धमें आप कह रहे हैं, उन सबकी मुझे यथार्थ जानकारी है।"

शुभ लग्नमें मूलदेवका विवाह सम्पन्न हो गया। कन्या रोहिणी बहुत ही सुन्दरी और सुशीला थी। यद्यपि उसने शिक्षा अधिक नहीं प्राप्त की थी, पर समस्त कार्योंमें पटु थी। भोजन बनानेकी कलामें उसने विशेषरूपसे प्रशिक्षण प्राप्त किया था। मातृहीना होनेके कारण पिताका स्नेह भी अधिक नहीं था। विमाताके कारण घर-गृहस्थीका कार्य अधिक करना पड़ता था, जिससे उसके शरीरका भी यथोचित विकास नहीं हो पाया था।

निस्सन्देह उसने रतिसे भी अधिक सौन्दर्य प्राप्त किया था। उसे देखकर सहज ही मुखसे निकल पड़ता था कि इतनी रूपराशि एक स्थानपर कहाँसे आ गई ? मूलदेवका विवाह हो गया, पर वह देवदत्ताको न भूल सका। वह सोचने लगा—"एक दिन अचलके पापोंकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। अभी तो प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। संसारमें क्रिया तथा प्रतिक्रियाका संघर्षरूपमें अहर्निश चलता रहता है। इसीलिए इनका न आदि है और न अन्त। यही चक्र मनुष्योंके भाग्यका निर्माण करता है और इस प्रकार मनुष्य स्वयं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने भाग्यका विधाता होता है। सत्कर्मोंकी प्रतिक्रिया भी सत् होती है और असत् कर्मोंकी असत्। अचलने जो कर्म किये हैं, उनकी प्रतिक्रियाओंका फल वह स्वयं भोगेगा। अथवा यदि यह कहा जाय कि उसके कर्मोंने उसके भाग्यका निर्माण किया है और वह उन्हींके अनुसार फल प्राप्त करेगा, तो अधिक ठीक होगा।"

"देवदत्ता भावनाप्रधान है। वह कलुषतापूर्ण जीवन नहीं व्यतीत करेगी। उसकी आन्तरिक व्यथासे मेरा मन दुःखी है। वह मुझसे विवाह करना चाहती है। मैं भी उससे प्यार करता हूँ। पर अचलने बीचमें बाधा डालकर हम दोनोंको अलग-अलग करा दिया है।"

मूलदेवके नेत्रोंके समक्ष देवदत्ताके कई चित्र एक साथ घूम गये। वह मन ही मन अचलके लिए दण्ड-व्यवस्था सोचने लगा। उसका मन क्षण भरके लिए अप्रतिभ होकर देवदत्ताकी पुष्पोंसे गुँथो हुई वेणीकी ओर देखने लगा, जो अनेक बार उसके घुटनोंको छूकर सिहरन उत्पन्न कर चुकी थी। उसकी मन्द-मन्द मुस्कान उसके मनको प्रताड़ित करने लगी।

सहसा उसकी नवविवाहिता पत्नीने नीरवताको भंग करते हुए प्रवेश किया। उसके आते ही वातावरण परिवर्तित हो गया। दोनों-में प्रेमालाप होने लगा।

मूलदेवका विवाह हुए सात दिन हो चुके हैं। अभी तक उसके जीवनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह घर जमाई रहकर अपने व्यक्तित्वको नष्ट नहीं करना चाहता। आज प्रातःकालसे ही उसके मनमें अत्यधिक बेचैनी है। अतः वह मन-बहलावके लिए उद्यानमें चला गया, जहाँ उसे जाते ही नींद लग गई। इस समय प्रकृति निस्तब्धताके साथ अठखेलियाँ कर रही थी, निर्मल नीला नभ अपनी धवल आभासे अनुरंजित कर रहा था। पवन विस्तृत पुष्पोद्यानके विविध प्रसूनोंकी सुरभिका उपहार लिए सूर्य-रश्मियोंके नासारन्ध्रोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवेशकर उसको गुदगुदाकर हँसानेका प्रयत्न कर रहा था। किन्तु हँसीके स्थानपर उसके हृदयकी कसक उसकी आँखोंसे पिघल-पिघल-कर झर रही थी। वह स्वप्नमें देख रहा था कि अचल देवदत्ताको छीन रहा है और उसे उज्जैनी छोड़कर बाहर जाना पड़ रहा है।

उस नगरीके राजाकी पुत्रहीन मृत्यु हो गयी थी। प्रश्न था उत्तराधिकारका, सभी मन्त्री और सभासदोंने निर्णय किया कि देवाधिवासित वस्तुओं द्वारा उत्तराधिकारका निर्वाचन होना चाहिए। फलतः हस्ति, अश्व, छत्र, चामरयुगल और कलशको मन्त्रितकर निर्वाचनके लिए छोड़ा गया। भारतकी यह निर्वाचन पद्धति अत्यधिक प्राचीन है। पुत्रहीन राजाके स्थानपर सभासद मिलकर भी राजाका निर्वाचन करते थे, पर जब सभासदोंमें विवाद उत्पन्न हो जाता था, उस स्थितिमें दैव द्वारा निर्वाचनका कार्य कराया जाता था। नगरमें दौड़ता हुआ वह अभिमन्त्रित हाथी उद्यानमें मूलदेवके निकट पहुँचा और उसके पास स्थित हो गर्जना करने लगा। अश्व भी मूलदेवके पास गया, वह भी वहीं स्थित हो हिनहिनाने लगा। हाथीने जलके कलशको अपनी सूड़में लपेटकर मूलदेवका अभिषेक कर दिया। छत्र अपने आप मूलदेवके ऊपर अवस्थित हो गया। चामरयुगल स्वयं उसके ऊपर ढोरे जाने लगे। अश्व उसे अपनी पीठपर सवार करानेके लिए स्थित था।

इस विचित्र दृश्यको देखकर नगरवासी आश्चर्यचकित हो मूलदेवका स्वागत कर रहे थे। जयघोषसे आकाश गूँज रहा था। मन्त्री और सामन्त भी अपने कर्त्तव्यको निश्चित नहीं कर पा रहे थे। वे किंकर्त्तव्यविमूढ हो परस्परमें एक दूसरेका मुँह देख रहे थे। प्रधानमन्त्रीने आगे बढ़कर आगन्तुकका परिचय ज्ञात करनेकी इच्छा व्यक्त की।

मूलदेव—"मैं पाटलिपुत्र नरेशका कनिष्ठ पुत्र हूँ। माता-पिता-के अधिक लाड़-प्यारके कारण मुझे जुआ खेलनेकी आदत पड़ गई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और मैं द्यूत-क्रीड़ा करता हुआ उज्जैन आया। वहाँ मेरी कलाओंसे देवदत्ता गणिका प्रसन्न हुई। वह मेरे साथ स्थायी सम्बन्ध बनानेकी दृष्टिसे विवाह करना चाहती थी, उसकी दृष्टिमें नारीका सर्वस्व शील है। जो नारी अपने शीलकी रक्षा कर सकती है, उसी नारीका जीवन सार्थक है। जब हम लोगोंके विवाहकी बात पक्की हो गई, तो देवदत्ताकी माँको यह अच्छा नहीं लगा, क्योंकि वह धनसे प्रेम करती थी और धन मेरे पास था नहीं, फलतः देवदत्ताकी माँने उज्जैनीके प्रसिद्ध व्यापारी अचलके साथ षड्यन्त्र कर मुझे वहाँसे नगर छोड़नेके लिए बाध्य किया और मैं यहाँ आया। मैंने अपने एक स्वप्नका फल दैवज्ञसे जानना चाहा, दैवज्ञने फल-कथनके उपरान्त अपनी कन्या श्रीमतीका मेरे साथ विवाह कर दिया।''

. . . .

प्रधानमन्त्रीने प्रसन्नता प्रकट करते हुए जनताको सम्बोधित कर कहा—"मूलदेव राजकुमार है, इसका राज्यपट्टपर अभिषेक करना अत्यन्त उचित है। मैं समस्त सभासदोंकी ओरसे इसका स्वागत करता हुआ, राज्याभिषेक करनेका प्रस्ताव करता हूँ। मेरा विश्वास है कि दिवंगत महाराजके समान यह महाराज भी हमारे कष्टोंका निवारण करेंगे।''

पञ्चकुलके प्रधानने भी आमात्यकी बातका समर्थन करते हुए कहा—"वेण्याकतटका राज्य व्यापार और समरकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके शासकको जैसा होना चाहिए, वैसे गुण मूलदेवमें हैं। मूलदेव वास्तवमें इस राज्यका यथार्थ उत्तराधिकारी है।''

मूलदेवको समारोहपूर्वक नगर-प्रवेश कराया गया और मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। दिवंगत महाराजके अन्तिम संस्कार सम्पन्न किये गये। याचकोंको धन वितरित किया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलदेवने राज्यशासनकी समुचित व्यवस्था की। पञ्चकुलका पुनर्गठन किया तथा राज्य और नगरके विकासके लिए उप-समितियाँ गठित कीं। मूलदेवकी राजनीतिज्ञतासे राज्यके कोषकी भी वृद्धि हुई। उसने अपनी रक्षाके लिए सैन्य-गठनमें भी उत्साह प्रदर्शित किया। पाँच-छः महीनोंमें ही राज्यका कायापलट कर दिया। व्यापारियोंको उसने विशेष सुविधा प्रदान की तथा व्यवसायकी वस्तुओंपर कर भी लगाया। जो व्यापारी वेण्याकतटमें आता, उसे तीन प्रतिशत विशेष चुंगी देनी पड़ती। मालकी विक्री पर आठ प्रतिशत कर लिया जाता था। आर्थिक आँकड़े स्वयं मूलदेव तैयार करता था तथा उनके क्रियान्वयनके लिए उसने मन्त्रिमण्डलको अधिकार दे दिया था।

कृषिकी सिंचाईकी व्यवस्था भी उसने की। कुल्या, उपकुल्याओं-की व्यवस्था की; कूप और बावड़ियोंके भी निर्माण किये गये। कृषकवर्ग इस नयी व्यवस्थासे वहुत प्रसन्न था। जहाँ पहले बहुत कम पैदावार होती थी, वहाँ अब वर्षमें दो-तीन फसलें पैदा होने लगीं। उत्पत्तिका अनुपात भी वढ़ गया। अच्छे कृषकोंको सरकारी कोषसे रुपये भी दिये जाते थे। अनाजको वाहर भेजनेका प्रबन्ध भी किया गया था। वेण्याकतटमें कोई भी बेकार व्यक्ति नहीं था, मूलदेवने सभीके लिए कार्य-व्यवस्था कर दी थी।

मूलदेवने उज्जैनी नरेशके साथ मित्रता स्थापित की और उनसे देवदत्ताको प्राप्त कर लिया। अब देवदत्ता मूलदेवके साथ पट्टमहिषी बनकर रहने लगी।

: ४ :

उज्जैनीसे मूलदेवके चले आनेके वाद देवदत्ता बहुत दुःखी हुई। अव प्रतिदिन आकर अचल उसे तंग करने लगा। उसने एक दिन स्पष्ट रूपमें अचलसे कहा—"आपका जादू मेरे ऊपर नहीं चल सकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। मैं आपसे घृणा करती हूँ, मुझे आपके धनकी आवश्यकता नहीं। मेरी दृष्टिमें लम्पट व्यक्तिका कुछ भी मूल्य नहीं है। आप अपने पापका प्रायश्चित कीजिए और यहाँ कभी आनेका कष्ट न कीजिए। हृदय किसीको एक वार ही सर्मपित किया जाता, बार-बार नहीं। रूपलोभी भ्रमरोंकी कमी नहीं है, पर सुख-दु खमें भाग लेनेवालोंकी कमी है।"

अचल बहुत गिड़-गिड़ाया, पर देवदत्ताने उसकी एक बात न सुनी। अतः अचलने देवदत्ताकी माँसे कहा—"आपके विश्वासमें आकर मैंने पानीकी तरह पैसा बहाया है, देवदत्ता मुझसे घृणा करती है, अब आप बतलाइये कैसे काम चलेगा।"

देवदत्ताकी माँ—"श्रेष्ठिवर! अभी उसे मूलदेवको भूलने दीजिए। भूलनेमें कुछ समय लगेगा। अतएव आप कुछ दिनों तक सन्तोष रखिये। मैं समझा-बुझाकर उसे मार्गपर लानेका प्रयास करूँगी।"

अचल—"जैसी आपकी आज्ञा।"

अचलने अपना आना-जाना ज्यों-का-त्यों रखा। देवदत्ताको अचलसे बहुत ही घृणा थी, अतः उसने उज्जैन नरेशके पास जाकर कहा—"आपने मुझे वरदान दिया था, अब मुझे उस वरदानकी आवश्यकता है।

राजा—"हाँ, देवदत्ता, मैंने तुम्हें वरदान दिया था! मैं अपने वचन पर अटल हूँ। तुम्हें जो भी वरदान माँगना हो, माँग लो।"

देवदत्ता—"महाराज! मेरे घरमें अचलके आवागमनपर प्रतिबन्ध लगा दीजिए। वह मेरा सतीत्व खरीदना चाहता है। उसने षड्यन्त्रकर मेरे हृदयके सम्राट् मूलदेवको यहाँसे निकाल दिया। अचल उसके प्राण ले लेना चाहता था, इसी कारण वह यहाँसे चला गया।"

देवदत्ताके उक्त कथनको सुनकर राजा बहुत क्रोधित हुआ और उसने अचलको बुलाकर आदेश दिया—"जब तक तुम मूलदेवको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढूढ़कर नहीं ले आओगे, इस नगरीमें निवास नहीं कर सकते। तुम शीघ्र ही उसकी तलाशमें जाओ और उसे बुलाकर यहाँ ले आओ। यदि इस कार्यको तुम नहीं करोगे तो तुम्हारी सारी सम्पत्ति ले ली जायगी और तुम्हें प्राणदण्ड प्राप्त होगा।"

राजाके उक्त आदेशको सुनकर अचल घबड़ा गया, उसने घर आकर व्यापारके निमित्त गाड़ियाँ तैयार कीं। वह उज्जैनसे बहुतसा सामान लादकर फारस—पारसीक देशमें पहुँचा और वहाँ बिक्री द्वारा अपार धन संचित किया। उसने फारससे अगर, तगर, कर्पूर, इलायची, चन्दन प्रभृति पदार्थ खरीदे और इन्हें गाड़ियोंमें लादकर लौटने लगा।

चलते-चलते वह वेण्याकतटकी सीमामें प्रविष्ट हुआ। यहाँ मूलदेवकी आर्थिक व्यवस्थानुसार व्यापारियोंपर विशेष प्रकारका कर लगाया जाता था। अतएव वह अपने सामानका निरीक्षण करानेके लिए पंचकुलके पास पहुँचा। पञ्चकुलने इस नये व्यापारीके आगमनकी सूचना राजा मूलदेवको दी।

पंचकुलने व्यापारीके सामानका निरीक्षण किया। चतुर अचलने कम कीमतके सामानको ऊपर रखा और अधिक मूल्यके सामानको बोरोमें नीचे छिपा दिया। जब पंचकुल निरीक्षण कर चुका तो मूलदेव स्वयं उसके सामानका निरीक्षण करनेके लिए पहुँचा। उसने बोरे उठाकर एक-एक सामानको देखा तो व्यापारीकी समस्त चोरी पकड़ी गयी। अचल काँपने लगा, और राजासे क्षमा याचना करने लगा।

राजाने अचलको राजपुरुषों द्वारा गिरफ्तार करनेका आदेश दिया। वह राजाके सम्मुख उपस्थित किया गया।

मूलदेव—"आप मुझे पहिचानते हैं ?"

अचल—"महाराज! वेण्याकतटके अधिपतिको कौन नहीं पहचानता ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पुनः एक बार विचारकर बतलाइये ?"

अचल—"महाराज ! आपका प्रताप सर्वत्र व्याप्त है, आपने अपने राज्यकी सुव्यवस्था की है, आर्थिक दृष्टिने आपने जैसा विकास किया है, वैसा अन्य राजाके लिए दुर्लभ है।"

मूलदेव—"सम्भवतः आप मुझे पहचानते नहीं, इसीलिए इस प्रकारकी बातें करते हैं ?"

अचल—"महाराज ! मैं आपकी शंरणमें हूँ, आप मुझे क्षमा कीजिए।"

मूलदेव अचलको भीतर ले गया और उसने देवदत्ताको आवाज लगाई।

देवदत्ता राजसी वेषभूषामें वहाँ उपस्थित हुई। अचल उसे देखते ही पहचान गया और बोला—"अपराध क्षमा हो। मुझे उज्जैनी नरेशने राज्यसे निर्वासित कर दिया है और आदेश दिया है कि जब तक मूलदेवको तलाश कर न ले आओगे, तब तक तुम राज्यमें प्रवेश नहीं कर सकते। अब आप जैसा चाहें, मुझे दण्ड दें।"

मूलदेव—"जब आपके क्रीत गुण्डोंने मुझे पकड़ लिया तो तुमने मुझसे पूछा था कि कैसा व्यवहार किया जाय, उस समय मैंने उत्तर दिया था कि जैसा मनुष्य मनुष्यके साथ करता है। इसपर तुमने मुझको छोड़ दिया था; मैंने उस समय यह निश्चय किया कि तुम्हारे इस उपकारका बदला चुका दूँगा ? आज मैं भी टेक्स चुराने-के अपराधमें तुमको दण्ड नहीं देता हूँ और मानवताका ध्यानकर छोड़ देता हूँ।"

अचल—"आप महान् हैं, मैंने आपके गुणोंको उस समय नहीं समझा तथा इसी कारण मुझसे अपराध हुआ, क्षमा कीजिएगा।"

अचलने देवदत्ताकी ओर संकेत करते हुए कहा—"देवि ! आप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सती-साध्वी हैं, आपको मैंने विचलित करनेका दुष्प्रयत्न किया, इसके लिए आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ। मैं आज समझ सका हूँ कि वेश्या भी सती हो सकती है। मैं उस समय तुम्हारे कार्योंको दम्भ मानता था।"

देवदत्ता—"श्रेष्ठिवर्य ! आप जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य शील-गुण सहित पैदा होता है, पर जिन वातावरणोंके मध्यसे शीलको गुजरना पड़ता है, उन सब वातावरणों, कारणों और संसर्गोंसे ही शीलगुण मलिन हो जाता है। यह मलिनता सदैव वृद्धिगत होती रहती है। जो व्यक्ति विवेकी है, श्रद्धालु है, वही अपने शीलको उज्ज्वल बनाये रखता है। वेश्याकुलमें जन्म लेना पापोदयका फल हो सकता है, पाप नहीं। विवेकी व्यक्ति अपने जीवनको निष्पाप और कालुष्य रहित बना सकता है। व्यक्तिका पुरुषार्थ इसीमें है कि वह पापपंकसे अपना उद्धार करे।"

अचल—"धन्य हो, देवी धन्य, सतीत्वका प्रभाव अद्‌भुत होता है। तुम्हारा तेज आज सतीत्वके कारण ही उद्दीप्त है।"

देवदत्ता—"श्रेष्ठवर्य ! हृदय जिसकी उपासना करता है, वही भारतीय नारीका पति होता है। वेश्या कोई जाति नहीं, कुल नहीं; यह तो सामाजिक अव्यवस्थाका परिणाम है। मैंने जबसे मूलदेवका दर्शन किया, तभीसे मेरा हृदय उनकी ओर आकृष्ट हो गया। मैंने अपने जीवनको उनके चरणोंमें तभीसे अर्पित कर दिया है।"

"नारी नरकी सद्भावनाओंको जागृत करती है, उसे उत्साहित करती है। जिस नारीमें सतीत्वका तेज रहता है, वह सघन वन और अगम पर्वतोंको अपने दृढ़ निश्चयके आगे झुका सकती है, उसके मार्गके काँटे फूल बन जाते हैं, विघ्न-बाधाएँ काफूर हो जाती हैं। नारी सदासे अर्पण करना जानती है। ममता, करुणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और वात्सल्य गुणोंसे वह मानव-समाजकी सेवा करती है। पर नारीका मूलधन सतीत्व है, इस सतीत्वके बलसे ही वह अपने जीवनके मूल्योंको प्राप्त कर सकती है।"

अचल मूलदेव और देवदत्ता द्वारा सम्मानित हो उज्जैनीको चला आया।

देवदत्ता सोचने लगी—"राजरानी बननेसे समाजकी सेवा नहीं हो सकती है। जीवनका लक्ष्य भोग-विलास नहीं है, आत्मोत्थान है। कोई भी व्यक्ति जब तक किसी वस्तुको पानेके लिए कठोर परिश्रम नहीं करता, तबतक अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति सम्भव नहीं। अतएव मैं अब अपने ही समान नारियोंका उद्धार करनेका प्रयत्न करूँगी। मेरे जीवनका लक्ष्य नारी-समाजका उत्थान करना है। अतः मैं अपने समान गिरी हुई नारियोंको स्वावलम्बी बनाकर ही चैन लूँगी।"

वास्तवमें—"चरित्र एक शक्ति है, वह प्रभाव है। वह मित्र, सहायक और संरक्षकोंको एकत्र कर सकता है। चरित्रसे ही सभी प्रकारकी योग्यताओंका विकास होता है।"

इस प्रकार विचार कर उसने मूलदेवसे प्रार्थना की—"प्रभो! मैं आपकी कृपाके लिए आभारी हूँ। अब मेरी इच्छा समाजकी पतित नारियोंके उद्धार की है। अतः आज मुझे इस पुनीत कार्यको करनेकी अनुमति दीजिए।"

मूलदेव—"देवि! तुम्हारा विचार उत्तम है, मैं इस कार्यके लिए आपको एक गाँव देता हूँ, जिसकी आमदनीसे आप अपनी इस इच्छाकी पूर्ति कर सकती हैं।"

देवदत्ताने नारी-समाजके उत्थानके हेतु एक संगठन तैयार किया, जिसका नाम "नारी-क्रान्ति-संघ" रखा गया। देवदत्ताके साहसकी अरुणकिरण फूटते ही नारी-जीवन-जगत्पर व्याप्त अन्ध-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार छिन्न हो गया और पुरुषार्थकी गन्ध प्रत्येक क्रिया-व्यापार-को मदमाती वासन्तीसे भरने लगा। सस्ता प्रेम या भावुकता नारीका जीवन-मार्ग नहीं है। वासना या प्रलोभनोंमें नारीको नहीं फँसाया जा सकता है। जो व्यक्ति नारीको तितली समझ उसके साथ खिलवाड़ करते हैं, वे समाजके योग्य सदस्य नहीं।"

देवदत्ताका क्रान्ति-संघ लम्पटोंके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवनकी मोड़

पुत्रजन्मका अमृतमय समाचार सुनते ही शँखपुराधीश महाराज सुन्दरने वार्द्धापन-समारोह मनानेका आदेश प्रचारित कर दिया है। फलतः राजभवन और श्रेष्ठि-प्रासादोंको अलंकृत करनेमें परिचारक संलग्न हैं। चन्दन और कर्पूर जलसे अन्तःपुरका सिञ्चन किया गया है। प्रमदवनोंमें लता और पुष्पपादपोंको काट-छाँटकर स्वच्छ और मोहक किया जा रहा है। चारों ओर मंगलवाद्य बज रहे हैं और राजनर्तकियाँ नृत्य प्रस्तुत कर रही हैं। प्रत्येक नागरिक हर्ष-विभोर हो राजाके आनन्दसागरकी वृद्धिमें चन्द्रोदयका कार्य कर रहा है। परिचारक और परिचारिकाएँ प्रसन्नतापूर्वक कार्यमें संलग्न हैं।

पट्टमहिषी सुलसा पुत्र-मुखका अवलोकनकर निहाल हो उठी है। उसे ऐसा अनुभव हो रहा है कि आज पुत्रलाभके रूपमें उसे अनेक जन्मोंका संचित पुण्य ही प्राप्त हो गया है। अपनी कुक्षिकी सार्थकताकी अनुभूति उसे भावविह्वल कर रही है। वास्तवमें मातृत्व ही नारीकी सार्थकता है, यही उसके जीवनकी चरम उपलब्धि है और है उसके जीवन-प्रदीपको प्रज्वलित करनेवाला स्नेह। नारी इसी स्नेह-संबलको प्राप्तकर युग-युग तक अपने मार्गपर एकाकी भी बढ़ती जाती है। उसकी आशा-लतिका 'माँ' शब्द सुनते ही लह्लहाने लगती है। पता नहीं, इस शब्दमें कौनसी ममता और स्नेहका कैसा अमृत भरा है, जो निरन्तर दान किये जानेपर भी रिक्त नहीं होता। नारी-जीवनकी समस्त कामनाएँ पुत्रलाभसे पूर्ण हो जाती हैं, जीवनके अरमान गृहणी-पदमें अधूरे रह जाते हैं, वे मातृत्वमें पूर्ण होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवचेतनके गहन-गर्तमें निहित भावनाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ पूर्णताकी ओर अग्रसर होने लगती हैं।

शंखपुरकी जनता नरेश सुन्दर और उनकी पट्टरानी सुलसाके द्वारा सम्पादित पुत्र-वार्द्धापन-समारोहमें सम्मिलित हो अपनेको कृत-कृत्य मान रही है। नगरका कोना-कोना हर्षोल्लासमें निमग्न है। उन्नत भवनोंके शिखरोंपर स्थित मयूर नृत्यकर जनमानसमें नयी चेतनाका संचार कर रहे हैं। नगरके प्रत्येक द्वारपर सुवर्णके स्तम्भों-पर इन्द्रनीलमणिके तोरण लटक रहे हैं। संगीत, वाद्य और नृत्यकी त्रिवेणी अनुरंजनके साथ चित्तको अपूर्व शान्ति प्रदान कर रही है। प्रत्येक स्थानकी चारुता श्लाघ्या और अपार जनसमूह उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिए उमड़ रहा है।

देवोद्यान, प्रमदवन और वरांगना-वीथिकाएँ विशेष रूपसे अलं-कृत की जा रही हैं। देवोद्यानोंके संरक्षक नाना प्रकारके पुष्पों, पल्लवों और लताओंके शोभांकनमें रत हैं। वनविहारका संक्षिप्त कार्यक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है। अप्सराओंके सौन्दर्यको तिरस्कृत करनेवाली वारांगनाएँ कविके कविता-पाठके समान दर्शकोंके मनको आकृष्ट कर रही हैं। उनके स्पर्शमें मादकता, स्वरमें मोहनी शक्ति और दृष्टिमें अपूर्व आकर्षण है।

अन्तःपुरमें राजकुलकी युवतियोंके उत्साहका कोई पारावार नहीं। उनके उत्साहसूचक पादनूपुर रणित हो रहे हैं। पदचापकी चपलताके कारण केशकलापोंसे सिन्दूरका प्रवाह आकर कपोलोंपर रुक गया है, जिससे गण्डस्थलोंकी अरुणिमासे प्रातःकालीन बाल-सूर्यकी आभा प्रकट हो रही है। चक्राकार नृत्य करती हुई अन्तः-पुरकी बालाएँ अनुपम दिखलायी पड़ रही हैं।

मातृपदको प्राप्त सुलसा इस वार्द्धापन-समारोहको देखकर मन ही मन अपने सौभाग्यकी प्रशंसा कर रही है। आज उसे अपने जीवन-की यथार्थताका बोध हुआ है। वह प्रेम-सरिताकी अक्षुण्णता और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवनकी सरसताका अनुभवकर आनन्दित हो रही है। सन्तान-प्राप्तिसे पूर्वजोंके नामकी उज्ज्वलताका चिन्तनकर भावविभोर होती जा रही है। आज उसकी सन्तानकी कामना शान्त हो गई है और वातावरण अपार्थिव बन गया है। "मेरा यह नौनिहाल इतने बड़े साम्राज्यका उत्तराधिकारी बन प्रजाका पालन करेगा।" इसी विचारमें वह डूबती और उतराती है।

ज्योतिषियोंको बुलाया गया। नवजात शिशुका नामकरण और भविष्यफल ज्ञात करनेकी जिज्ञासा महाराज सुन्दरने व्यक्त की। पञ्चांग खोलकर ज्योतिषियोंने गणना आरम्भ की, जन्म-कालीन ग्रहोंपर विचार किया और बतलाया—"बालक तेजस्वी और भविष्णु है, पर इसके प्रारम्भिक ग्रह निकृष्ट हैं। नीचका चन्द्रमा इसे चंचल बनायेगा। गुरु और मंगल उच्च राशियोंमें अवस्थित हैं, अतः अठारह वर्षकी आयुके पश्चात् बालकका छात्र-धर्म प्रादुर्भूत होगा। इसके कार्य अद्भुत और आश्चर्यजनक होंगे, अतः इस जातकका यथार्थ नाम 'अगडदत्त' रखना श्रेयस्कर है। यह कार्य करनेमें तो अगडदत्त होगा ही, जीवन-मूल्योंकी प्राप्तिमें भी अगडदत्त रहेगा। अतएव पुत्रका नाम 'अगडदत्त' रखा जाय।"

ज्योतिषियोंकी भविष्यवाणीको सुनकर माता-पिताको प्रसन्नता हुई; पर चन्द्रमाके नीचस्थ होनेसे बालककी अस्थिरताको अवगत कर राजाके मनमें कुछ कष्ट हुआ।

शनैः-शनैः बालक बढ़ने लगा और उसके साहसिक कार्य माता-पिता तथा पुरजन-परिजनोंको अनुरंजित करने लगे। यथासमय राजपरिवारके विधि-विधान सहित कुमार अगडदत्तका विद्यारम्भ सम्पन्न किया गया। पर मौजी स्वभाव होनेके कारण वह विद्यार्जन न कर सका। कुमारकी गतिविधि बड़ी विचित्र थी। उसने अपने वयस्क साथियोंको एकत्र किया और दिन भर उनके साथ इधर-उधर घूमने लगा। माता-पिताने उसकी इस प्रवृत्तिको रोकनेका पूरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयास किया, पर वे कुमारकी दुष्प्रवृत्तियोंको नियन्त्रि न कर सके। कुमार अगडदत्त वास्तविक रूपमें अगडदत्त था, वह सौ सुनता, पर काम अपने मनका ही करता। कुसंगतिके कारण अवस्थाके साथ दुर्गुण भी वृद्धिगत होने लगे। वह धर्म-दयारहित, अविनीत, असत्यवादी, अहंकारी और दुराचारी हो गया। दिन-रात प्रजाको कष्ट देने लगा।

महाराज सुन्दरको राजकाजसे अवकाश नहीं। वे पुत्रकी देख-रेख करनेमें असमर्थ थे। जिन गुरुके संरक्षणमें अगडदत्तको सौंपा गया था, वह गुरु भी कुमारके व्यवहारसे परेशान थे। फलतः युवावस्थाके साथ कुमार अगडदत्तकी दुष्प्रवृत्तियाँ अहर्निश बढ़ने लगीं। नागरिक कुमारके कार्योंसे तंग हो गये, उनका सम्मान और धन सुरक्षित न रह सका। अतएव समस्त नगरवासी साहस कर एक दिन राजसभामें पहुँचे और कहने लगे—"देव! कुमारने अपने कार्योंसे हम लोगोंको तबाह कर डाला है। अब आप ही रक्षक हैं; जैसा उचित हो, आदेश दीजिए।"

कुमारके कृत्योंको सुनकर महाराज सुन्दरको बहुत दुःख और क्रोध हुआ। एक ओर पुत्र-ममता उन्हें विचलित करने लगी और दूसरी ओर प्रजापालन तथा कर्त्तव्यकी सीमा। कुछ क्षणों तक वह कर्त्तव्यविमूढ़ बना रहा। अन्तमें साहस एकत्र कर सोचने लगा—जिसकी आत्मामें बल नहीं, साहस नहीं, स्वाभिमान नहीं, वह चाहे कुछ भी हो, पर मनुष्य नहीं है। प्रजाका पालन, उसके मान-सम्मानका संरक्षण करना राजाका अनिवार्य धर्म है। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो जाता है, वह सबसे बड़ा अभागा प्राणी है। जो रक्षक होकर भक्षक बन जाता है, उससे नीच कौन हो सकता है। कुमार परिस्थितियोंका शिकार बन गया है, इसी कारण उसका सर्वनाश हो रहा है। न मालूम कुमारकी यह प्रवृत्ति हमारे किस जीवनका अभिशाप है। अतः अब दण्ड दिये बिना काम नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चल सकता है। राजाको समदर्शी होना आवश्यक है, जिस प्रजाके धनसे हमारा संवर्द्धन हो रहा है, उसकी रक्षासे मुँह मोड़ना पाप है, अधर्म है।

कुछ समय तक वातावरण शान्त रहा। प्रजाके प्रतिनिधि न्यायकी भिक्षा प्राप्त करनेकी आशामें राजा सुन्दरके मुखका अवलोकन करते रहे। कुमारके कृत्योंका स्मरण कर वे सिहर उठते थे और परस्परमें एक दूसरेके मुखको देखने लगते थे।

राजा सुन्दरने गम्भीरतासे विचार करनेके अनन्तर कुमार अगडदत्तको राज्यसे निष्कासित करनेकी घोषणा कर दी। प्रजाके प्रतिनिधियोंमें प्रसन्नताकी लहर उत्पन्न हो गयी और वे कह उठे—"न्याय इसीको कहते हैं। पुत्र हो या शत्रु, समानरूपसे दण्ड दिया जाय।"

कुमार अगडदत्तको जब अपने निष्कासनका वृत्तान्त अवगत हुआ, तो वह अवाक् रह गया। कुछ समय तक वह अपना कर्त्तव्य सोचता रहा। क्या जन्म देनेवाले पिताके द्वारा निष्कासनका दण्ड देना उचित है? यह सत्य है कि मैंने प्रजाको कष्ट दिया है, प्रजाका धन लूटा है और बहू-बेटियोंकी इज्जत भी लेनेका प्रयास किया है। पर पिताकी दृष्टिमें पुत्रके सैकड़ों खून भी क्षम्य होने चाहिए। इतना कठोर दण्ड पितृस्नेहके दिवालियापनेका प्रमाण है। हाँ, यह एक राजाके लिए उचित कर्त्तव्य अवश्य है। मैं चाहूँ तो मातृस्नेहका आश्रय लेकर इस राजाज्ञाको रद्द करा सकता हूँ, किन्तु यह मेरे स्वाभिमानके प्रतिकूल है। अब तो तलवारका भरोसाकर राज्यका त्यागकर देना ही श्रेयस्कर है। पितृ आज्ञाको शिरोधार्य करना ही मेरी कुलोचित मर्यादाका पालन करना है।

मैं डाकू नहीं बनूँगा। कुसंगतिने मेरे उज्ज्वल गुणोंको कृष्ण बना दिया है। अब मैं अपनी शक्ति और योग्यताका परिचय दूँगा। देखूँ, मेरा जीवन किस ओर मुड़ता है। इसे मुड़ना तो है ही।

कुमार अगडदत्त एकमात्र तलवारके भरोसे दुर्ग, वन, पर्वत और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदियोंको पार करता हुआ वाराणसीको चल दिया। कई दिनों बाद अनवरत चलने पर वह वाराणसी पहुँचा; किन्तु इस महती नगरीसे अपरिचित रहनेके कारण वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो इधर-उधर चंक्रमण करने लगा।

उसे सड़कके किनारे कुछ राजकुमारशिष्यों सहित खड़ा हुआ सकल कला और शास्त्रोंमें प्रवीण परोपकारी, दयालु एवं दूसरोंके मनके भावोंका ज्ञाता एक विद्वान् गुरु दिखलायी पड़ा। इनका नाम पवनचण्ड था। ये राजकुमारोंको हाथी, घोड़े और रथसंचालनकी शिक्षाके साथ विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र चलानेकी शिक्षा भी देते थे।

पवनचण्डका दिव्य भाल और मनमोहक व्यक्तित्व सहजमें ही आकर्षित कर लेता था। उनकी आजानु बाहुएँ, पतली और लम्बी अँगुलियाँ, वाक्पाटुता, उन्नत ललाटपर चन्दनका तिलक एवं श्वेत वेषभूषा प्रत्येक दर्शकको प्रभावित करती थी। अतः अगडदत्त प्रभावित हो उनके चरणोंमें गिर गया और साष्टाङ्ग दण्डवत किया।

गुरु पवनचण्डने पूछा—"तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और मुझसे क्या चाहते हो?"

कुमार—"गुरुदेव अब मैं आपकी शरण हूँ, आपका शिष्य हूँ और नित्यप्रति आपके चरणोंकी रजका आकांक्षी हूँ।"

उसने सड़कके एक ओर गुरुको लेजाकर अपना सच्चा आत्मवृत्तान्त कह सुनाया और अपने अपराधोंको स्वीकार करते हुए निष्कासनकी कथा कह सुनायी।

अगडदत्तके इस सत्य और स्पष्ट वार्तालापसे गुरु पवनचण्ड बहुत प्रसन्न हुए और उसे भविष्णु समझ कर अपना शिष्य बना लिया।

गुरुकी कृपा प्राप्तकर अगडदत्त निहाल हो गया। उसे अपनी समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती हुईं परिलक्षित होने लगीं। वह भविष्यके स्वप्न संजोने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पवनचण्ड अगडदत्तको अपने घर ले गया और उसे अपना भतीजा बताकर उसके रहने, भोजन आदिकी व्यवस्था कर दी। कुमार अगडदत्त भी समस्त सुविधाओंको प्राप्तकर विविध प्रकारकी विद्या और कलाओंका अभ्यास करने लगा। थोड़ेसे प्रयत्न द्वारा उसने बहत्तर कलाओंमें प्रवीणता प्राप्त कर ली। जिन विद्याओं और कलाओंके अभ्यासमें अन्य राजकुमारोंको वर्षों श्रम करना पड़ता था, उन कलाओं और विद्याओंको कुमार कुछ ही दिनोंमें प्राप्त कर लेता था। उसके साहस और श्रम अतुलनीय थे।

अगडदत्तका निवास पवनचण्डके पवनोद्यानमें था। वह यहीं पर एक पाषाणशिलापर अवस्थित हो विद्याभ्यासमें श्रम करता रहता था। इस उद्यानके समीप ही नगरीके प्रधान सेठका सुन्दर भवन था। सेठकी मदनमंजरी नामकी एक रूपवती कन्या थी। इस कन्याने अपने भवनकी छतपरसे कुमार अगडदत्तको देखा और उसके रूप-सौन्दर्यसे मुग्ध हो प्रेम करने लगी। वह एकान्तमें बैठकर चकोरीके समान कुमारके लावण्यका पान करती रहती थी। कुमार अपने अध्ययनमें इतना संलग्न था, कि उसे मदनमंजरीकी उपर्युक्त क्रिया दिखलायी ही नहीं पड़ी। जब मदनमंजरीने कुमारकी उपेक्षा समझी तो उसने कुमारका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिए अशोक-का गुच्छा उसके ऊपर फेंका, जिससे अध्ययनमें दत्तचित्त कुमारका ध्यान मदनमंजरीकी ओर गया।

एक ही दृष्टिमें उसे देखकर कुमार सोचने लगा—यह देवाङ्गना है या नागकन्या? यह लक्ष्मी है या साक्षात् सरस्वती? इतना रूप-सौन्दर्य तो आज तक एक स्थानपर दिखलायी नहीं पड़ा है।

कुमारने कटाक्षपात करते हुए पूछा—"तुम कौन हो? मेरे विद्याभ्यासमें तुमने क्यों विघ्न किया है? पहली ही दृष्टिमें तुमने मेरा मन जीत लिया है। जिस भयसे मैंने शंखपुर छोड़ा है, वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भय यहाँपर उपस्थित हो गया है ?"

मदनमंजरी—"मैं इस नगरीके प्रधान सेठ बन्धुदत्तकी पुत्री हूँ और मेरा विवाह भी इसी नगरीमें हुआ है। कामदेवके समान मनोरम रूपवाले आपको जिस दिनसे देखा है, उसी दिनसे मेरी नींद चली गयी है, भोजन रुचिकर प्रतीत नहीं होता और सिरमें अपार वेदना रहती है। मैं आपसे प्रेम करती हूँ। जब तक आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे, मैं स्वस्थ नहीं हो सकती हूँ। आप विश्वास कीजिए कि आपके अभावमें मेरा जीवित रहना संभव नहीं। मैं आपके एक ही आदेशपर अपनी समस्त सुख-सुविधाओंको छोड़नेके लिए तैयार हूँ। मेरे प्राणोंकी रक्षा आपके ही हाथमें है। अब आप जैसा आदेश दीजिए, मैं करनेको प्रस्तुत हूँ।"

कुमार अगडदत्तने सान्त्वना देते हुए कहा—"देवि ! आप विचलित न हों। मैं अभी तो आपकी इच्छाको पूर्ण करनेमें असमर्थ हूँ। यह मेरा विद्यार्जनकाल है ! जब मैं अध्ययन समाप्तकर यहाँसे अपने नगरके लिए जाने लगूँगा, उस समय मैं आपको अपने साथ ले लूँगा और तभी आपकी आन्तरिक इच्छा पूर्ण होगी। साधककी साधनामें विघ्न करना उचित नहीं। अतः आप अपने पतिसे प्रेम कर सकें तो अच्छा है। मधुकरी वृत्ति उचित नहीं।

मदनमंजरी—"देव ! हृदयका समर्पण जिस-किसीको नहीं किया जा सकता है। मेरा पाणिग्रहण अवश्य हुआ है, पर मेरा सतीत्व अक्षुण्ण है। मैं अपने जीवनको आपके चरणोंमें समर्पित कर सदाके लिए निश्चिन्त होना चाहती हूँ। आप यह स्मरण रखिये कि आपके सिवाय मैं अन्यकी दासी नहीं बन सकती हूँ। आपके वपु और गुणोंने मुझे पराजित कर दिया है और मेरी स्थिति अत्यन्त दयनीय है। अतः अब आप मुझे अपनानेका वचन दीजिए। मेरे प्राण अब इस शरीरसे निकलनेके लिए आतुर हैं। शरणागतकी रक्षा करना भारतीय परम्परामें परम सुकृत माना गया है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमार—"देवि! मैं भी आपके अद्‌भुत रूप-लावण्यको देख कर मुग्ध हूँ। आप विश्वास कीजिए विद्या-समाप्तिके पश्चात् मैं आपको अवश्य अपना लूँगा।"

: २ :

एक दिन कुमार अगडदत्त घोड़े पर सवार राजमार्गसे जा रहा था कि उसने लोगोंका कोलाहल सुना। उसने देखा कि एक मदोन्मत्त हाथी लोगोंको मारता हुआ दौड़ रहा है। नगरमें चारों ओर भगदड़ मची हुई है। सभी ओर त्राहि-त्राहिकी ध्वनि सुनायी पड़ रही है। कुमार घोड़ेसे उतरा और उतर कर उसने उस पागल हाथीको ललकारा। ललकार सुनते ही हाथी कुमार पर झपटा। कुमारने अपनी चादर हाथीकी सूँडमें फँसा दी और उसकी पीठमें एक घूँसा जमाया। वह उस उन्मत्त हाथीके साथ क्रीड़ा करने लगा, कभी उसके पेटमें घूँसा लगाता और कभी सूँड पकड़ कर झूल जाता। उसने हाथीके दाँतों पर मुष्टिका प्रहार किया, जिससे हाथी तिलमिला गया। अगडदत्त झपट कर हाथीकी पीठ पर बैठ गया और मुष्टिकाओंके प्रहारसे ही उसे निर्मद कर दिया। वह उस गजको राजाकी गजशालामें ले गया और वहाँ यथास्थान उसे बाँध दिया।

वाराणसी नरेशको हाथीके उत्पात और उसके वंशगत होनेका समाचार ज्ञात हुआ, तो वह कुमार अगडदत्तके इस साहससे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपने यहाँ बुलाया। राजाने कुमारका परिचय जानना चाहा, पर कुमारने पवनचण्डके शिष्यके अतिरिक्त अन्य अपना परिचय नहीं दिया। राजाको यह विश्वास अवश्य हो गया कि यह कोई राजकुमार है। आकृति और गुणोंसे प्रभावित हो राजाने उसके मस्तक पर तिलक किया और साथ ही उसे अपना प्रियपात्र बनाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी समय नगरके प्रमुख व्यक्ति राजसभामें उपस्थित हुए और अभिवादन कर उन्होंने निवेदन किया—'महाराज ! कोई चोर हम-लोगोंका धन रातमें चुरा ले जाता है। उसने समस्त नगरको तबाह कर दिया है। वह सावधान रहने पर भी अवश्य चोरी करता है। कोटपाल द्वाराकी गयी सभी व्यवस्थाएँ निरर्थक सिद्ध होती जा जा रही हैं। उसके कृत्योंके फलस्वरूप सारा नगर निर्धन हो गया है।'

राजाने नगर रक्षकोंको कड़ी आज्ञा देकर चोरी रोकनेके लिए सतर्क किया, पर चोरी बन्द न हो सकी और न चोरका पता ही लग सका। नगरवासी पुनः महाराजकी शरणमें पहुँचे और नगर-रक्षाके लिए परामर्श करने लगे। जब कुमार अगडदत्तने देखा कि समस्त प्रजा विकल है और राजा भी चोरीको रोकनेमें अममर्थ है तो उसने नम्र निवेदन किया—

"प्रभो ! यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं चोरको सात दिनके भीतर पकड़ कर ला सकता हूँ। यदि मैं अपनी प्रतिज्ञानुसार चोर-को नहीं ला सकूँगा तो स्वयं अग्निमें प्रविष्ठ हो जलकर भस्म हो जाऊँगा।

वाराणसी-नृपतिने कुमारकी प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली और उसे चोरको तलाश करनेकी अनुमति प्रदान की।

अपने प्रतिज्ञानुसार अगडदत्त चोरकी तलाश करनेमें लग गया। उसने चोरोंके अड्डोंको घूम-घूम कर देखा, पर कहीं भी उस चोरका पता न चला। प्रतिज्ञा किये उसे छः दिन बीत गये। सातवें दिन खिन्न चित्त ही सन्ध्या समय नगरके बाहर एक सुनसान बगीचेमें बैठा हुआ था। वह सोच रहा था कि घरसे उद्दंडताओंकें कारण माता-पिताने निर्वासित किया। यहाँ कुछ ज्ञानार्जन किया भी, पर चोरको पकड़नेमें असफल हो जानेसे कल अग्निमें प्राणोंकी आहुति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देनी पड़ेगी। अब यहाँसे भाग कर जाना भी उचित नहीं है। जो भाग्यमें होगा, वह घटित होकर ही रहेगा। उसकी विचारधारा तेजीसे.......बढ़ती.......थी।

कुमार अगडदत्त इस प्रकार विचारधारामें डूवता-उतराता बैठा हुआ था कि एक परिव्राजक—संन्यासी काषायले वस्त्र धारण किये हुए, मुण्डित सिर और हाथमें त्रिशूल लिए हुए कुछ गुन-गुनाता हुआ वहाँ उपस्थित हुआ। उसकी वेष-भूषा और रहन-सहनसे कुमारने उसे चोर समझा। वह आगन्तुक पुरुष कुमारसे मधुर वचनोंमें बोला—"महानुभाव तुम कौन हो और यहाँ किस कार्यसे बैठे हो?"

वुद्धि-निपुण कुमारने उत्तर दिया—"मैं दरिद्रतासे प्रताड़ित एक नागरिक हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि भरण-पोषणके निमित्त क्या कोई कार्य मिल सकेगा? मेरा जीवन अन्न-वस्त्र और नौन-तेल-लकड़ीकी चिन्तामें ही धधकता जा रहा है। अपने दुःखकी बात मैं किससे कहूँ, यह समझमें नहीं आता।

आगन्तुक—"वत्स! चिन्ता मत करो, आज ही मैं तुम्हारी दरिद्रताको दूर कर दूँगा।"

कुमार—"आपकी अनुकम्पासे मेरी दरिद्रता दूर हो जाय तो मैं आपका आजन्म ऋणी रहूँगा।"

निर्धनता मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायी है। निर्धन व्यक्तिके विद्या-वुद्धि, दया-दाक्षिण्य आदि समस्त गुण नष्ट हो जाते हैं। लौकिक दृष्टिसे वह जीवित रहनेपर भी मृततुल्य है। न उसे कहीं सम्मान प्राप्त होता है और न भद्रपुरुषोंके बीच उसे बैठनेको ही स्थान मिलता है। परिवारके व्यक्ति भी निर्धनसे घृणा करते हैं। अतः निर्धनताकी अपेक्षा आत्मघात ही श्रेयस्कर है।

आगन्तुक—'वत्स, अधीर मत बनो। आत्मघात महान् पापका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धक है। इस प्रकारके तुच्छ विचारोंको उत्पन्न न होने देना ही बुद्धिमानी है। मैं आज ही आपके दुःखोंका अन्त कर दूँगा।

इस प्रकार बातचीत करते हुए रात्रि आ गयी और चारों ओरसे अन्धकार बढ़ने लगा। जब मध्यरात्रि हुई तो वह आगन्तुक तलवार निकालकर शीघ्रतापूर्वक नगरकी ओर चलने लगा और कुमारसे बोला—"तुम भी मेरे पीछे-पीछे आओ, आज तुम्हारी इष्ट-सिद्धि हो जायगी। जन्म-जन्मान्तरका दारिद्रय नष्ट हो जायगा और तुम सुखी बन जाओगे।"

परिव्राजकने नगरमें पहुँचकर एक धनिक वैश्यके घरमें सेंध लगायी और मूल्यवान् सामानोंको निकाल-निकालकर बाहर करने लगा। उसने कुमारसे कहा—"तुम यहीं रहो, मैं निकटके देव-मन्दिरसे कुछ व्यक्तियोंको बुलाता हूँ, जो सामानको ढोनेका कार्य करेंगे।"

वह बाहर चला गया और आधा घण्टेमें कुछ व्यक्तियोंके साथ लौटकर आया और उनके ऊपर सामान रखवाकर नगरसे बाहर बहुमूल्य पदार्थोंको ले जानेका उपक्रम करने लगा। पारिव्राजकके निर्देशानुसार सभी व्यक्ति एक पुराने उद्यानमें सामान लेकर पहुँच गये। उसने आदेश दिया—"अभी सब लोग सो जाओ, प्रातःकाल होने पर ही इस सामानको बाँटा जायगा।"

जब सामान ढोनेवाले सो गये तो वह वरिव्राजक उठा और तलवार लेकर सभी सामान लानेवालोंको मार डाला। वह कुमार-को भी मारनेके लिए ढूँढ़ने लगा। कुमार पहलेसे ही सावधान था और उसकी समस्त गतिविधिका निरीक्षण कर रहा था। अतः वह भी अपनी तलवार संभालकर युद्ध करनेके लिए सन्नद्ध हो गया।

परिव्राजकने कुमारको ललकारा और उसके ऊपर तलवारका वार किया, किन्तु सावधान रहनेके कारण परिव्राजकके खड्गका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारपर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। वारको बचा कर कुमार अगडदत्तने उसपर तलवारका प्रहार किया, जिसे वह तस्कर सहन न कर सका और घायल होकर भूमिपर गिर गया। वह अपना परिचय देते हुए कहने लगा—

"मेरा नाम भुजंगम चोर है। श्मशान भूमिमें जमीनके नीचे मेरा भवन है। वीरमती नामकी मेरी बहन उस घरमें निवास करती है। तुम बटके वृक्षके नीचे जाकर सांकेतिक रूपमें उसे बुलाना। वह तलघरका दरवाजा खोल देगी। तुम उसके साथ विवाह कर लेना और समस्त धनको ग्रहणकर वहीं पर सुखपूर्वक निवास करना। अथवा कुछ दिन वहाँ रहकर अपने इच्छानुसार गन्तव्य स्थानको चले जाना।"

भुजंगम चोरके निर्देशानुसार वह श्मशान भूमिमें पहुँचा और संकेतानुसार उसने वीरमतीसे तलघरका दरवाजा खुलवाया। वीरमतीने उसका स्वागत किया और भाईका घातक समझकर उससे प्रतिशोध लेना चाहा। उसने कुमारको एक पलंग पर सुला दिया और स्वयं ऊपर चली गयी।

कुमार सोचने लगा कि मुझे यहाँ सुलानेमें कोई रहस्य अवश्य है। अतः वह वहाँसे हटकर दूर चला गया तथा पलंग पर चादर को इस प्रकार रख दिया, जिससे सोता हुआ व्यक्ति दिखलायी पड़े। इसी बीच वीरमतीने छतके ऊपरसे मशीन द्वारा पत्थरकी विशाल चट्टान उस पलंग पर गिरायी, जिससे पलंग चूर-चूर हो गया। वह हँसती हुई नीचे आई। यहाँ उसने देखा कि कुमार कमरेके एक कोनेमें खड़ा हुआ मुस्कुरा रहा है। कुमारने उस विश्वासघातकके बाल पकड़ लिए और उसे राजाके पास ले आया।

राजाको कुमारने भुजंगम चोरकी सारी कथा कह सुनायी और उसकी बहन वीरमतीको उपस्थित किया। राजाने चोरका समस्त धन नागरिकोंको दिला दिया तथा प्रजाको पूर्णतया सन्तुष्ट किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुमारके वीरतापूर्ण साहसिक कार्योंसे राजाको अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अतः उसने अपनी कन्या कमलसेनाका विवाह कुमारके साथ कर दिया। दहेजमें कुमारको एक हजार श्रेष्ठ गाँव, सौ हाथी, एक लाख पैदल सेना, दस हजार घोड़े और विपुल स्वर्ण-भण्डार दिये। इतना सम्मान, धन और वैभव प्राप्तकर भी कुमार मदनमंजरीके विना सबको निरर्थक समझता था।

एक दिन मदनमंजरीकी एक दासी कुमारके पास आई और कहने लगी कि मदनमंजरी आपके विरहमें जल रही है। वह अस्थिशेषमात्र रह गयी है। आपके अभावमें उसका जीवित रहना संभव नहीं। अतः आपको चलकर उसे सान्त्वना देनी चाहिए।

कुमार—"तुम जाकर मदनमंजरीसे कह दो कि अब विरहका समय समाप्त होनेवाला है। जिस प्रकार उसने अब तक धैर्यपूर्वक प्राणों को धारण किया है, उसी प्रकार कुछ दिन तक और प्रतीक्षा करे। अब उसके मनकी इच्छा शीघ्र ही पूर्व होगी।"

दासीके चले जानेके पश्चात् कुमार सोचने लगा कि मदनमंजरीको किस प्रकार प्राप्त किया जाय। मदनमंजरीके अभावमें यह जीवन निस्सार है। उसका जैसा लावण्य और स्नेह अन्यत्र असम्भव है। मदनमंजरीका अपहरण कर यहाँ रखना अनुचित है। यदि राजाको यह समाचार मालूम हो जायगा तो अच्छा परिणाम नहीं होगा। कमलसेना भी मदनमंजरीके प्यारको देख न सकेगी। यतः पत्नी पतिपर अपना एकाधिकार रखना चाहती है। वह अपने देवताद्वारा अन्य रमणी को दिये गये आश्रयको कभी भी पसंद नहीं करती। सपत्नीको संसारकी कोई भी महिला पसंद नहीं कर सकती है। नारीमें स्वभावतः एकाधिकारकी भावना रहती है, जब वह अपने इस एकाधिकारपर अन्य किसीको अधिकार करते हुए देखती है, तो वह फुफकारती हुई सर्पिणी बन जाती है और अशान्तिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वातावरण व्याप्त हो जाता है। अतः मदनमंजरीका उपभोग यहाँ रहकर करना संभव नहीं है।

: ३ :

एक दिन एक हरकारा ऊँट पर सवार होकर वाराणसीमें आया। कुमार अगडदत्तको हरकारेके आगमनकी सूचना दी गयी। जब वह हरकारेके पास आया, तो उसका मन प्रसन्नतासे भर गया। यह हरकारा शंखपुरसे आया था और अगडदत्तके माता-पिताने भेजा था। अगडदत्त हरकारेके पास गया और नगरका कुशलसमाचार पूछा। उसने उत्तर दिया—"कुमार तुम्हारे माता-पिता कुशल हैं। पर यदि तुम जल्दी चलकर उनसे नहीं मिलोगे, तो वे रो-रोकर तुम्हारे वियोगमें अपने प्राण देदेंगे। वे तुमसे मिलनेके लिए अत्यन्त लालायित हैं।"

कुमारका हृदय भी अपने माता-पिताके दर्शन करनेके लिए अत्यधिक उत्सुक था। उसे अब एक-एक क्षण वर्षतुल्य प्रतीत हो रहा था। अतएव उसने अपने स्कन्धावारको तैयार किया। पश्चात् वह राजाके पास जाकर निवेदन करने लगा—"महाराज! मेरे पिताके यहाँसे दो व्यक्ति बुलानेके लिए आये हैं। मेरे अभावमें मेरे माता-पिता बहुत विकल हैं। शीघ्र ही मेरे वहाँ न पहुँचनेसे उनके प्राण भी संकटमें पड़ सकते हैं। आप जैसा आदेश दें, किया जाय। मैं आपके स्नेह और उपकारसे दबा हुआ हूँ।"

महाराज—"कुमार मैं तुम्हारे विनीत व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम शीघ्र ही अपने माता-पितासे मिलो।"

राजाका आदेश प्राप्तकर कुमारने प्रस्थानकी तैयारी की! उसने सेना एवं सामान सभी रवाना कर दिया। जब मध्यरात्रिका समय आया तो उसने मदनमंजरीको दूती द्वारा बुलवाया और रथमें सवार हो प्रस्थान कर दिया। मार्गमें चलते-चलते कुमारका स्कन्धावार एक भयंकर वनमें पहुँचा। अब वर्षा ऋतु आ गई थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः मार्ग दुर्गम वन गया था। प्रकृतिकी प्रतिकूलताके कारण कुमारको कुछ समय तक उस भयंकर अटवीमें रुकना पड़ा।

जिस वनसे कुमार जा रहा था, उस वनमें एक भिल्लपति ससैन्य निवास करता था, कुमारकी सेनाके साथ पल्लीपतिकी सेनाका युद्ध होने लगा। पहले तो कुमारकी सेनाने भिल्लसेनाको तितर-वितर कर दिया, पर बादमें भिल्लसेनाने कुमारके सभी सैनिकोंको छिन्न-भिन्न कर भगा दिया। कुमार अकेला ही बचा, एक-एक कर उसके सभी सैनिक मारे गये अथवा भाग गये। अब तो मैदान पल्लीपतिके हाथमें था।

कुमारने भिल्लराजसे कहा—"पल्लीपति! अब युद्धका निपटेरा हम दोनोंके बीच है। इन निरीह सैनिकोंके प्राणघातसे क्या लाभ? अतः हम और आप दोनों ही वीरताका परिचय दें, यही युक्तिसंगत है।"

कुमार और भिल्लराजके बीच युद्ध होने लगा। दोनों ही कुशलतापूर्वक बाण-वर्षा करने लगे। एक दूसरेको पराजित करनेका दोनोंका उपक्रम व्यर्थ गया। युद्ध करते हुए कई दिन बीत गये, पर कोई किसीको परास्त न कर सका। एक दिन सन्ध्या समय उदास हो कुमार अगडदत्त मन-ही-मन भिल्लराजके युद्ध-कौशलकी प्रशंसा करता हुआ सोचने लगा कि युक्ति लगाये बिना केवल वीरतासे विजय प्राप्त करना कठिन है। अतः उसने मदनमंजरीसे परामर्श किया और निश्चय किया कि वीरताके साथ विजयके लिए छलकपट अपेक्षित है। कुमारने मदनमंजरीसे कहा कि तुम शृंगार कर रथके ऊपर बैठ जाओ। कुमारके कथनानुसार मदनमंजरी रथके ऊपर बैठ गयी। जब भिल्लराजने मदनमंजरीके अपूर्व सौन्दर्यका दर्शन किया तो वह मुग्ध हो गया और बाण चलाना भी भूल गया। वह कुमारके बाणोंकी अपेक्षा मदन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंजरीके कटाक्ष-वाणोंसे घायल होने लगा। इसी बीच छल कर कुमारने भिल्लराजको मार गिराया।

कुमार अगडदत्तने देखा कि रथके सिवाय वहाँ अव एक भी सुभट नहीं है, सभी आहत होकर धराशायी हो चुके हैं, तो वह अकेला ही आगे बढ़ा और किसी प्रकार दुर्गम वनको पार किया। उसे आगे चलने पर एक रमणीय गोपुर मिला। यहाँ उसे दो व्यक्ति मिले, जिन्होंने कुमारसे कहा कि हम लोग भी शंखपुरको चल रहे हैं। आपके साथ चलनेसे हमारा मार्ग भी निर्विघ्न कट जायगा। आगे बढ़ने पर जब दो मार्ग आये तो उन्होंने एक मार्ग की ओर संकेत करते हुए कहा कि इस मार्गमें दुर्जन, चोर, मदोन्मत्त हाथी और दृष्टिविष नामक सर्प निवास करते हैं तथा अन्य सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक प्राणी भी पाये जाते हैं। अतः इस रास्तेसे न जाकर दूसरे रास्तेसे चलना चाहिए।

कुमारने उनको धैर्य बँधाते हुए कहा—'आप लोग निर्भय हो कर चलिए। मैं सकुशल आप लोगोंको शंखपुर पहुँचा दूँगा। कुमारकी इन बातोंको सुन कर अन्य यात्री भी प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चलने लगे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक परिव्राजक जटा-जूट बढ़ाये, शरीरमें भस्म लगाये और पिच्छिका हाथमें लिये हुए आया और कहने लगा—"कुमार! मैं भी तीर्थयात्राके निमित्त शंखपुरको चल रहा हूँ। मेरे पास स्वर्णमुद्राएँ हैं, जो देवपूजाके निमित्त प्राप्त हुई हैं। अतः आप इन दीनारों—स्वर्णमुद्राओंको अपने पास रख लीजिए, जिससे मैं निर्भय होकर आप लोगोंके साथ चल सकूँ। कुमारने उस परिव्राजकसे दीनारें ले लीं। इसपर उस परिव्राजकने कुमारको आशीर्वाद दिया। उस परिव्राजककी वेषभूषासे कुमारको आशंका हुई और वह उसके साथको अनिष्टकर समझने लगा।

कुछ दूर जानेके उपरान्त उस परिव्राजकने कहा—"साथियों! यहाँके गोकुलमें मेरे सुपरिचित हैं। मैंने यहाँ एक बार वर्षावास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है, जिससे सभी ग्वाले मुझे खूब मानते हैं। अतः आज आप लोगोंकी दावत यहीं पर होगी। इतना कहकर वह परिव्राजक गोकुलमें गया और वहाँसे दही, घी और दूध भरे हुए बर्तन ले आया। उसने कुमारसे कहा—"राजपुत्र! आप यथेच्छ दुग्धपान करें।"

कुमार—"मेरे सिरमें आज अपार वेदना है, अतः आज कुछ भी भोजन करनेकी इच्छा नहीं है।"

राजकुमारने अन्य साथियोंको भी भोजन-पान करनेसे रोकना चाहा, पर वे न माने और उस विषमिश्रित भोजनको ग्रहण करते ही मूर्छित हो गये। थोड़ी ही देरमें वे सभी यममन्दिरके अतिथि बने। कुमार अगडदत्तके भोजन न करनेसे वह परिव्राजक वहुत नाराज हुआ और कुमारको मारनेके लिए दौड़ा। कुमारने अपने वाणसे उसको मार गिराया। मरते समय उसने कहा—"राजकुमार! मैं दुर्जय दुर्योधन नामका चोर हूँ। मैं तुम्हारी वीरता और निर्भयतासे वहुत प्रभावित हूँ। अतः तुमसे एक बात कहता हूँ। इस पर्वतके वाम पार्श्वमें दो नदियोंके बीच एक देवालय है। इस देवालयके पश्चिम ओर एक शिला है। इस शिलाके उठानेसे तुम्हें एक तलघर दिखलायी पड़ेगा। इस तलघरमें मेरी रूप-लावण्यवती पत्नी निवास करती हैं। मेरे यहाँ अपार धनराशि है, तुम मेरे द्वारा संचित धनराशिका उपभोग करना। मेरे यहाँ इतना धन एकत्र है कि तुम्हारा सारा जीवन बिना कुछ किये सुखपूर्वक व्यतीत हो सकता है।"

दुर्योधन चोरकी मृत्यु हो जानेपर कुमार अगडदत्तने उसका दाह-संस्कार किया और अपने रथको उसके द्वारा वताये गये स्थानपर ले गया। शिलाके उठाते ही उसे तलघरका दरवाजा मिला और भीतर जानेपर उस चोरकी जयश्री नामकी सुन्दर पत्नी दिखलायी पड़ी। कुमार अगडदत्त उस नारीके रूप-लावण्यको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखते ही मुग्ध हो गया। मदनमंजरीने जब कुमारकी यह दशा देखी तो उसने कुमारको हाथका झटका देकर कहा—"मैंने आपके लिए अपने माता-पिता, भाई, बहन आदि कुटुम्बियों तथा समस्त सुखोंको छोड़ा है और आप दूसरी स्त्रीकी ममतामें फँस रहे हैं। यह भ्रमर-वृत्ति सर्वथा त्याज्य हैं।

मदनमंजरीके उक्त वचनोंको सुनकर कुमार सावधान हो गया और रथपर सवार होकर आगे बढ़ा। उसे आगे चलनेपर मदोन्मत्त हाथी और दृष्टिविष सर्प मिले। कुमार अगडदत्तने इन दोनोंको अपने बल-पराक्रमद्वारा वश किया। कुछ दिनों तक चलनेके उपरान्त वह शंखपुरमें सकुशल पहुँच गया।

महाराज सुन्दरने पुत्रागमनकी प्रसन्नतामें याचकोंको दान दिया तथा नगरमें उत्सव सम्पन्नकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। भोजन-विश्रामके अनन्तर कुमारने महाराजको परदेशमें रहनेका समस्त वृत्तान्त और घटी हुई घटनाएँ कह सुनाईं। पिता-पुत्र परस्परके समाचार सुन बहुत आनन्दित हुए।

: ४ :

कुछ दिनोंके पश्चात् विलासी व्यक्तियोंके लिए सुखदायक वसन्त ऋतु आई। राजा परिजन और पुरजन सहित वन-विहारके लिए चला। मदन मंजरी सहित कुमार अगडदत्त भी प्रकृतिका विलास-वैभव देखनेके लिए चल दिया। नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करके राजा तथा नगरवासी लौट आये। कुमार अगडदत्त भी असने वयस्क मित्रों सहित लौटनेकी तैयारी करने लगा। जब वह रथके पास आया तो मदनमंजरीको एक विषैले साँपने डँस लिया। मदनमंजरी हाय-हाय करती हुई कुमारकी गोदमें गिर पड़ी। कुमारने विष दूर करनेका बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब वह निर्जीव हो गयी तो कुमारने विलाप करना आरम्भ किया। किसी प्रकार धैर्य धारणकर उसने लकड़ियोंकी चिता बनायी और उस चितामें भार्याके साथ स्वयं भी जल मरनेका निश्चय किया। इसी समय एक विद्याधरयुगल आया और उसने कहा—"महानुभाव! आप अपने प्राणोंको अकारण क्यों नष्ट कर रहे हैं? हम आपकी पत्नीको पत्नीको जीवित कर देते हैं।"

उन्होंने अभिमन्त्रित जल मदनमंजरीके ऊपर छींटा। जलके छींटे लगते ही वह निद्रासे सोते हुएके समान जाग उठी और कहने लगी कि यह कौन-सा स्थान है।

मदनमंजरीके सचेत होते ही विद्याधरदम्पत्ति आकाशमार्गसे चले गये और कुमार अपनी प्रिया सहित उस अंधेरी रात्रिमें पास-वाले देवालयमें पहुँचा। उसने अपनी पत्नीसे कहा—"मैं जब तक बाहरसे अग्नि लेकर आता हूँ, तब तक तुम यहींपर ठहरकर मेरी प्रतीक्षा करना।"

जब कुमार अग्नि लेकर वापस लौटा तो उसने उस देवालयमें दीपकका प्रकाश देखा। वह उस प्रकाशके सम्बन्धमें अपनी पत्नीसे पूछने लगा। पत्नीने बहाना बनाकर कहा कि दीपक यहाँ कहाँसे आया। आप जो अग्नि लाये हैं, उसीके प्रकाशका प्रतिबिम्ब आपको दिखलायी पड़ा होगा। कुमार अगडदत्त अपनी तलवार मदनमंजरी-को देकर अग्निको नीचे रख मुँहसे फूँककर उसे प्रज्वलित करने लगा। इसी बीच उसने भूमिपर तलवार गिरनेकी आवाज सुनी। चौंककर कुमारने पूछा—'यह नंगी तलवार फर्शपर कैसे गिरी?"

मदनमंजरी—"मेरे मनमें यह जाननेका कौतूहल हुआ कि नंगी तलवार कैसी लगती है? अतः मैं म्यानसे तरवारको अलगकर घुमाने लगी। इसी प्रक्रियामें तलवार मेरे हाथसे छूटकर फर्शपर गिर पड़ी और उसके गिरनेसे खनक ध्वनि हुई।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवालयमें रात्रि व्यतीतकर कुमार अगडदत्त मदनमंजरी सहित नगरमें लौट आया। अगले दिन वह बाह्यालीमें एक घोड़ेको चाल सिखा रहा था कि वह दुष्ट घोड़ा कुमारको लेकर जंगलकी ओर भागा। जंगलमें वह तापस-आश्रममें पहुँचा। दौड़नेके कारण घोड़ा थककर चूर हो गया था, अतः कुमारने उसे एक वृक्षकी शाखासे बांध दिया और स्वयं विश्राम करने लगा।

उसके मनमें वन परिभ्रमणकी इच्छा जागृत हुई। अतः वह इधर-उधर घूमने लगा। घूमते हुए वह एक देवालयमें पहुँचा, जहाँ अनेक मुनियोंसे युक्त चारणऋद्धिधारी सहस्रगति नामके मुनिराज स्थित थे। उसने मुनिराजकी वन्दना की और उनके पादमूलमें बैठकर पूछा—"प्रभो! ये पाँच सुन्दर युवक कौन हैं? जो इस चढ़ती जवानीमें संसारसे विरक्त होकर मुनि बनना चाहते हैं। इनका रूप-सौन्दर्य और व्रत धारणका उत्साह मुझे आन्दोलित-कर रहा है। कृपया इनका परिचय बतला देनेका कष्ट कीजिए।"

मुनिराज—"इस वनमें चमरी नामका गाँव है। इसमें धरणीधर नामका एक बलवान् भिल्लराज रहता है। कुछ दिन पहले वहाँ ससैन्य एक राजकुमार अपनी सुन्दर पत्नी सहित आया। भिल्लराज और कुमारमें युद्ध हुआ। पल्लीपतिके सैनिकोंने राजकुमारके सैनिकोंको परास्तकर दिया। फलतः राजकुमार और पल्लीपतिमें कई दिनों तक घनघोर युद्ध होता रहा। जब कुमार युद्ध-कला द्वारा भिल्लधिपतिको परास्त न कर सका, तो उसने अपनी सुन्दर रूपवती पत्नीको रथके ऊपर बैठाया, जिससे वह करणीधर उस नारीके कटाक्ष-बाणोंसे आहत हो बाण चलाना भूल गया और कुमारने अवसर पाकर उसे मार डाला। अपनी प्रिया सहित कुमार वहाँसे चला आया।"

"ये पाँचों व्यक्ति उस पल्लीपति धरणीधरके लघु भ्राता हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युद्धके समय ये बाहर गये हुए थे। जब ये वापस लौट कर अपनी पल्लीमें आये, तो भाईको मृत पाकर इन्हें अपार वेदना हुई। ये पाँचो ही तलवार, धनुषवाण एवं असिधेनुका आदिसे सज्जित होकर भ्रातृ-घातकसे बदला चुकानेके लिए चल दिये। इन्होंने उस राजकुमारका पीछा किया, पर वह बचकर अपनी नगरीमें चला गया। ये पाँचों अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे कि कुमार अकेला कहीं निकले, तो उससे बदला चुकाया जाय। बसन्त ऋतुके आने पर कुमार वन-विहारके लिये चला तो ये पाँचों भी उसके पीछे-पीछे चल दिये। वनविहारके पश्चात् जब कुमार रथ पर सवार होने लगा तो उसकी प्रियाको एक विषैले सर्पने डँस लिया। कुमार पत्नीके वियोगसे दुःखित हो चिता बना कर मृत पत्नीके साथ जलमरनेको तैयार हो गया, उसी समय एक विद्याधरमुगल आया, जिसने कुमारकी उस मृत पत्नीको मन्त्रप्रभावसे जीवित कर दिया। कुमार पत्नीके साथ रात्रिमें चंडिकाके देवालयमें गया। वहाँ पर ये पाँचों युवक कुमारकी हत्या कर देनेके लिए पहलेसे ही छिपे हुए थे और इस अवसरकी तलाशमें थे कि कब कुमारकी हत्या कर दी जाय। जब कुमार अग्नि लेनेके लिए देवालय बाहर गया तो इन लोगोंने अपने छिपाये हुए दीपकको प्रज्वलित किया। उस दीपकके प्रकाशमें उस राजकुमारकी पत्नीने उन युवकोंको देखा और वह उनके छोटे भाईके रूपलावण्यपर मुग्ध हो गई। उसने आत्मनिवेदन करते हुए कहा—'मै तुम्हारे विना जीवित नहीं रह सकती हूं। तुम्हारा यह लावण्य मुझे आत्मसर्पण कर देनेके लिये विचलित कर रहा है। क्या मेरे साथ विवाह कर मेरे जीवनको सार्थक बनानेकी कृपा की जा सकती है।' छोटे भाईने कहा—'तुम्हारा पति वहुत वलवान् है। यदि उसे यह सब मालूम हो जायगा तो वह हम सभी को मार डालेगा। उसके जीवित रहते हुए तुम्हारा विवाह मेरे साथ कैसे संभव है ? मैं भी तुमको चाहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हूँ. पर मेरे चाहनेसे यह कार्य नहीं हो सकता है।' रमणी बोली—'मेरा पति मेरे ऊपर बहुत विश्वास करता है। मैं स्वयं अपने पति की हत्या कर प्रेमके मार्गको निष्कण्टक बनाऊँगी। आपको इसके लिए चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। कुमार अगडदत्तको आज अभी यमराजका अतिथि बनना पड़ेगा।' जब कुमार अग्नि लेकर आया और उसने दीपकके प्रकाशके सम्बन्धमें पूछा तो उस रमणीने झूठ बोल कर उस कुमारको धोखा दिया और जब वह सिर नीचा कर अग्नि प्रज्वलित करने लगा तो उसने तलवार द्वारा उसका वध करना चाहा। पर इस दयालु वीरने निरपराधी कुमारको बचानेके लिए तलवारको धक्का दिया, जिससे वार खाली गया और तलवार हाथसे छूट कर गिर गयी। इन लोगोंको उस नारीके मायाचारी प्रपंचोंको देख कर विरक्ति हो गई। अतः ये पाँचों ही महानुभाव दीक्षा लेनेके लिए प्रस्तुत हैं।"

कुमार अगडदत्त—"प्रभो! मैं ही इनके भाईका घातक हूँ। यह घटना मेरे ही साथ घटी है। मैं स्वार्थरत इस संसारकी यथार्थतासे अपरिचित हूँ, अतः मेरी इच्छा भी दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण करने की है। कृपया मुझे भी व्रत प्रदान कीजिए। मैं व्रती बन जनताकी सेवा करना चाहता हूँ।

मुनिराज—"व्रत ग्रहण करना सरल है, पर ग्रहीत व्रतोंका पालन करना कठिन होता है। अतः सर्वप्रथम व्रत, धर्म, संसार और सांसारिक सम्बन्धोंको जान लिया जाय, तभी व्रत धारण करना श्रेयस्कर होगा।"

कुमार—"प्रभो! व्रत किसे कहते हैं तथा इन व्रतों द्वारा किस प्रकार जीवन-शोधन किया जाता है।"

मुनिराज—"असत्प्रवृत्तियोंकी निवृत्ति व्रत है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह ये पाँच मूल असत्प्रवृत्तियाँ हैं। प्राणि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्रके जीवनमें ज्ञात और अज्ञात भावसे ये असत्प्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। जब इन असत्प्रवृत्तियोंका त्याग कर सत्प्रवृत्तियों—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहको स्वीकार किया जाता है, तो जीवनमें व्रतका प्रवेश होता है। असत्प्रवृत्तित्याग-रूप व्रत भारतीय संस्कृतिका मेरुदण्ड है। जिस व्यक्तिमें संकल्प-शक्ति नहीं, वह शिष्ट नहीं होता। संकल्पशक्तिका विकास व्रतसे होता है। अतः व्रतको केन्द्र मानकर व्यक्ति उसकी परिधिमें घूमता है। वस्तुतः आधुनिक भाषामें अपने निर्माणका संकल्प और विश्वास ही व्रत है। व्यक्तिका व्यक्तित्व दो वातायनोंके बीचका है। इन दो खिड़कियोंमें एक खिड़की बाहरकी ओर खुलती है और दूसरी भीतरकी ओर। हमारे जीवनकी बाहिरी खिड़की सदा खुली रहती है, पर भीतरी खिड़की बन्द है। व्रताचरण-संकल्प हमारी भीतरी बन्द खिड़की खोलता है, और बाहरकी खुली खिड़कीको बन्द करता है। बाहरकी खिड़कीके बन्द होते ही नैतिकता—शुभ प्रवृत्तियोंका प्रारम्भ होने लगता है। व्रत धारण करते ही चेतना जागृत हो जाती है, और व्यक्ति शुभ प्रवृत्तियों—सदाचारके कार्योंमें प्रवृत्त हो जाता है। व्रतकी शक्ति अपूर्व है, व्रतों द्वारा हिंसा, असत्य आदिका नियन्त्रण होता है और चारित्रका उज्ज्वल प्रकाश व्याप्त हो जाता है।"

कुमार—"पूज्यवर ! संकल्पपूर्वक असत्प्रवृत्तियोंका त्याग और सत्प्रवृत्तियोंका सेवन व्रत है, पर जीवनमें संकल्पोंका विकास आस्थाके विना सम्भव नहीं। आस्था या श्रद्धा ही संकल्प करनेकी ओर प्रेरित करती है। अतएव आस्था या श्रद्धाके सम्बन्धमें भी कुछ बतला दिया जाय तो अच्छा होगा।"

मुनिराज—"वत्स ! जीवन-विकासके लिए विश्वास, विचार और आचार इन तीनोंका सन्तुलन अपेक्षित है। व्यक्तिके मनमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबतक किसी सुन्दर आदर्शके प्रति श्रद्धा या आस्था नहीं, तब तक वह दुराचारसे हटकर सदाचारमें प्रवृत्त नहीं हो सकता। वस्तुओंकी जानकारी मात्रसे दुराचार नहीं रोका जा सकता, इसके लिए उच्च आदर्शके प्रति सुदृढ़ आस्था या श्रद्धाका होना अनिवार्य है। सम्यक् आस्था या श्रद्धाके होने पर ही ज्ञान सम्यक् कहलाता है और ज्ञानके सम्यक् होनेसे चारित्र सम्यक् होता है। इस प्रकार रत्नत्रय की आराधना ही राग-द्वेष या कषायसे मुक्ति दिलाती है। आत्मामें परमात्मज्योति विद्यमान है। प्रत्येक चेतनमें परमचेतन विराजमान है। चेतन और परमचेतन दो नहीं हैं, एक है। अशुद्धसे शुद्ध होने पर चेतन ही परम चेतन हो जाता है। कर्मावरणके छूटते ही आत्मामें परमात्मतत्त्व प्रादुर्भूत हो जाता है। यतः शुद्ध आत्माका ही नाम परमात्मा है।"

"राग-द्वेष-मोहसे छुटकारा प्राप्त करनेका प्रयत्न ही मुक्ति-प्राप्तिका प्रयत्न है। आत्माके निज गुणोंका शोधन, प्रकाशन और विकास ही वस्तुतः अध्यात्म-साधना है। अध्यात्म साधनाका अर्थ मनुष्यकी प्रसुप्त शक्तिका प्रबुद्ध करना है। अतएव संयम, त्याग और ध्यान द्वारा आत्मोत्थान करना ही इस दीक्षाका लक्ष्य है। जो संसारसे विरक्त हो काम, क्रोध, मान, माया, लाभ प्रवृत्तिका निराकरण कर अपने निजी रूपको समझनेका प्रयत्न करते हैं, वे स्वतन्त्र हो जाते हैं और निर्वाणको प्राप्त कर लेते हैं।"

कुमार—"भगवन्! मैं इस संसारकी वस्तुस्थितिसे अवगत हो चुका हूँ। अब मैं आत्मसाधनामें प्रवृत्त होना चाहता हूँ, अतएव आप मुझे कल्याणकारी दीक्षा देनेकी अनुकम्पा कीजिए।" जीवनमें मोड़ सदा नहीं आती। जो अपने विचार-विवेकका प्रयोगकर जीवनको मोड़ देता है, वही लोककल्याणमें सफल होता है।

लोककल्याण करना ही दीक्षित होनेका लक्ष्य है। वे साधु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्यासी जनताके लिए भार हैं, जो जनकल्याण नहीं करते। जन-कल्याणके प्रधान तीन सूत्र हैं—स्वयं आत्मनिग्रही बनना, संसारके प्रलोभनोंको जीतना और उदार समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाकर पथभ्रष्टोंको सुमार्गपर लगाना। आत्मोत्थानका अपरनाम भी जनकल्याण है। जिसकी आत्मा जितनी विकसित होती है, वह उतना ही जनकल्याण कर सकता है। अपरिग्रही व्यक्ति ही जन-कल्याणका अधिकारी है। जिसके पास अपना कहनेके लिए कुछ भी नहीं, वही जनसेवाका महत्त्व प्रदर्शित कर सकता।

मुनिराज—"वत्स ! तुम्हारी भावना सफल होगी।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुद्धिमती बहू

: १ :

"भावुकतावश किये गये कार्योंका परिणाम उत्तम नहीं होगा। भावुकताका आवेग शान्त होनेपर ही अपनी दुर्बलताका ज्ञान प्राप्त होता है। जो विवेकी हैं, वीरतापूर्वक अपने लक्ष्यकी पूर्त्तिके लिए आगे बढ़ते जाते हैं, सफलता उन्हींके चरणोंको चूमती है। भावुक व्यक्ति वास्तविकतासे बहुत दूर रहता है, कर्मठता उसका वरण नहीं कर पाती। नर हो या नारी दोनोंके लिए ही कोरी भावुकता अभिशाप बनती है। शिक्षा और संस्कार व्यक्तिमें भावुकता उत्पन्न नहीं करते, इनसे जीवनमें सन्तुलन उत्पन्न होता है।" शीलवतीकी यह विचारधारा बरसाती नदीके वेगके समान बिना किसी रुकावटके आगे बढ़ती जा रही है। अनाड़ी लेखकके विराम रहित लेखनके समान उसकी विचारधाराको विश्राम ही नहीं मिलता।

वह कहानीके शीर्षकके समान जीवनकी महत्त्वपूर्ण दारिद्र्यकी समस्यापर सोचती है। उसे इस घरमें आये अभी एक ही वर्ष हुआ है, पर घरका नक्शा ही बदल चुका है। चन्द्रमाकी कलाओंके समान वैभव निरन्तर क्षीण होता जा रहा है। एक-एक कर घरके समस्त आभूषण बिक चुके हैं किन्तु व्यापारकी स्थितिमें किसी भी प्रकारका सुधार नहीं हुआ है। पहले कुछ आय हो भी जाती थी, पर न मालूम इधर किस ग्रहकी दशा आई है, जिससे सुखकी रोटी एक दिन भी खानेको नहीं मिली। घरके लोग कहा करते हैं कि इस घरमें घीके दीपक जलते थे, पर आज आँखमें लगानेको भी घी नहीं मिलता। पिता-पुत्र दोनों जी तोड़ श्रम करते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु सन्ध्याको हिसाब करने पर हाथ कुछ नहीं आता। महाजन-का उधार ज्यों-का-त्यों बना रहता है। इस स्थितिसे उद्धार किस प्रकार होगा।

उसने बचपनमें पशु-पक्षियोंकी बोली समझनेकी विद्या सीखी थी। अध्यापिका अन्य विद्याओं और कलाओंके समान पशु-पक्षीकी बोलीको भी समझानेकी कलामें निपुण थी। उसके द्वारा सुशिक्षित की गई स्नातिकाएँ जीवनमें कभी भी भौतिक कष्टसे त्रस्त नहीं हो सकतीं। वह निरन्तर कहा करती थी कि मेरी स्नातिकाएँ इतनी विद्या और कलाओंकी ज्ञाता हैं जिससे वे अवसर पड़नेपर किसी भी एक विद्या द्वारा भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्त्ति कर सकेंगी। मैं अब अपनी किसी विद्याका उपयोग दारिद्रयके दूर करनेके हेतु अवश्य करूँगी। कहीं मेरा ही अभागा पैर पड़नेसे तो इस घरकी यह स्थिति नहीं हो गई है। क्या इतनी जल्दी वैभव विलीन हो जाता है। शीलवतीने सोचा—

कल मैंने अपने कानोंसे सुना—ससुरजी कह रहे थे कि एक वर्षमें ही हमारा घर दरिद्र हो गया। लड़केके विवाहके पूर्व हमारे ऊपर किसीका कर्ज नहीं था, बल्कि दस-बीस रुपये हमारे ही दूसरों-पर रहते थे, पर पता नहीं यह स्थिति एकाएक कैसे आ गई। इस आर्थिक परिस्थितिसे जूझना बड़ा ही कठिन लग रहा है। बात समझमें नहीं आती, हमारा उत्थान कैसे होगा। लड़का अजितसेन भी चिन्तित रहता है। कल उसने स्वयं प्रस्ताव किया—"मैं सोचता हूँ कि अब दुकानदारीसे काम नहीं चलेगा। अतः किसी व्यक्तिके यहाँ मुनीमी कर ली जाय, तो घर खर्चकी व्यवस्था हो सकती है। मेरी पत्नी कितनी सुन्दरी और सुशीला है, किन्तु उसके पास न तो वस्त्र ही हैं और न आभूषण। जो दो-एक आभूषण थे, वे भी बिक चुके हैं, अतः अब कुछ उपाय करना होगा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असितसेनके पिता खड्गसेनने कहा—"वत्स! ग्रहदशा एक-सी नहीं रहती। दुर्दिन निकल ही जाते हैं। तुम मेरे एकलौते पुत्र हो, कोई दो-चार पुत्र तो मेरे हैं नहीं, जिनमें एकाध नौकरी करे और एकाध दुकानदारी। हम लोगोंका छोटा-सा व्यापार है, इसमें कभी-न-कभी लाभ होगा। अभी घबड़ानेकी आवश्यकता नहीं। दिन बदलते देरी नहीं लगती, तुम धैर्य धारण करो, सब व्यवस्था हो जायगी। मेरे जीवित रहते हुए तुम्हें किसी बातकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं।"

: २ :

बहूका सार्थक नाम था शीलवती। मध्यरात्रिका अन्धकार सर्वत्र व्याप्त था, यह आगत और अनागतके समस्त सौन्दर्यको अपने भीतर समाविष्ट किये हुए था। अभेद्य अन्धकारमें कुछ नहीं दिखलायी पड़ता था। गगनकी नील आभा अन्धकारके साथ एकाकार होकर एक नया ही रूप उपस्थित कर रही थी। इसी कुवेलामें सामनेके वृक्षपर अवस्थित काक बोला। शीलवतीने कुछ क्षणोंतक इधर-उधर देखा। जब उसे यह विश्वास हो गया कि घरके सभी लोग गाढ़ निद्रामें मग्न हैं, तो उसने घड़ा लिया और नदीकी ओर अन्धकार चीरती हुई चलने लगी।

ससुर खड्गसेन चिन्ताके कारण जाग रहा था, उसे आज नींद ही नहीं आ रही थी। जब उसने घड़ा लेकर बहूको नदीकी ओर जाते देखा तो वह सोचने लगा—"क्या बहू दुराचारिणी है, जो मध्यरात्रिमें नदीकी ओर जा रही है। दरिद्रता मनुष्यके समस्त गुणोंको नष्ट कर देती है। एक छोटा-सा अग्निकण जिस प्रकार रुईके ढेरको भस्म कर देता है, उसी प्रकार दरिद्रता मनुष्यके समस्त गुणोंको भस्म करनेमें समर्थ है। हमारा परिवार दरिद्र रह सकता है, किन्तु सदाचारको नहीं छोड़ सकता। सदाचार तो हमारे लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबसे बड़ा बल है। धन पुनः कमाया जा सकता है, खोया स्वास्थ्य भी वापस आ सकता है, पर नष्ट हुआ चरित्र पुनः प्राप्त नहीं हो सकता। हाय रे भाग्य! क्या स्थिति हो गई है। फूल-सी सुकुमार और रतिसे भी अधिक लावण्यवती बहू मध्यरात्रिमें घरसे बाहर जाय। यह स्थिति तो मेरे लिए असह्य है।"

इस प्रकार विचारोंमें डूबता-उतराता खड्गसेन शीलवतीके पीछे जाने लगा। शीलवती नदीके तट पर पहुँची और पानीमें उतरकर बहुत देर तक कुछ करती रही। खड्गसेनको विश्वास हो गया कि यहाँ तटपर अवश्य कोई बैठा है, जिसके साथ यह रमण करती है, अन्यथा इतने समय तक क्या करती रहती। मान लिया जाय कि नदीसे पानी लेने आई, तो क्या घड़ा भरनेमें इतना विलम्ब लगता। यों तो मध्यरात्रिमें पानीकी आवश्यकता ही नहीं थी। घरमें कई घड़े पानी रखा था, फिर यह क्या करने यहाँ आई है।

खड्गसेनके ऊपर आत्म-मोहका आवरण छा गया। उसकी विचारधारा नीचेकी ओर जलधाराके समान उक्त दिशामें ही बढ़ने लगी। चारपाई पर लेट जानेके उपरान्त भी उसको एक क्षणके लिए नींद नहीं आई। विचारसागरमें डूबता-उतराता रहा।

"मोहनीयकी तीव्रता ज्ञान-दर्शनका आच्छादन कर मिथ्यात्वको तीव्र करती है। इसीके कारण ममत्व उत्पन्न होता है। हमारे कुल-की शील-मर्यादा और प्रतिष्ठाका भव्य प्रासाद परिवारकी ममता पर आधृत है। लोकाचारका मूल्य भी सदाचारपर प्रतिष्ठित है। यदि लोकाचार और कुलाचार लुप्त होने लगें तो फिर इस जीवनसे ही क्या लाभ? भारतीय संस्कृतिकी भित्ति नारीके शीलपर ही अवलम्बित है। कुलललनाएँ अपने त्याग, संयम और मर्यादपालन द्वारा ही परिवारकी कीर्त्तिको विस्तारित कर सकती हैं।" अतएव कुलमर्यादाकी रक्षाके लिए मुझे अपना निर्णय परिवारके व्यक्तियोंके समक्ष रखना ही होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कुंठाओंके बीच जीवित रहना संभव नहीं। मस्तिष्क और शरीरसे मनुष्य काम लेता है, उसकी भी एक सीमा रहती है और वह व्यक्ति बुद्धिमान है, जो अपनी शक्तिका व्यय ऐसे काममें नहीं करता है, जिसमें उसकी योग्यताकी पहुँच नहीं।" बहूके कार्यों और प्रवृत्तियोंसे मैं परेशान हूँ।

खड्‌गसेनने अपना निर्णय घोषित किया। बहूके शीलपर मैं आशंकित हूँ, अतः इसे इसके पितृगृहमें पहुँचा देना आवश्यक है। हमारे परिवारमें निर्धनता रह सकती है, पर कुशीलकी छाया नहीं। परिवारकी प्रतिष्ठाको बनाये रखना साधारण बात नहीं है, इसके लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है।

परिवारके अन्य सदस्य मौन थे, गृहपतिकी आज्ञाके विरोधमें किसीको भी बोलनेका साहस नहीं हो रहा था। सभी परस्परमें एक-दूसरेके मुँहको देख रहे थे। किसीने यह भी नहीं कहा कि बहूसे मध्यरात्रिमें बाहर जानेके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। अपराधीसे बिना पूछताछ किये ही दण्ड घोषित कर देना कहाँका न्याय है?

एक छोटी-सी गाड़ी तैयार की गयी और उसमें शीलवतीको बैठाकर खड्‌गसेन स्वयं ही उसके पितृगृहको चला। कुछ दूर चलनेके उपरान्त मार्गमें एक नदी आयी। शीलवतीके श्वसुरने उससे कहा—"बहू! तुम जूते उतार कर नदी पार करो। इस नदीमें पानी तो थोड़ा है, पर धाराका वेग प्रबल है, जिससे गाड़ीको संभालकर ले चलना पड़ेगा। नदीको जूते उतार और कपड़े ऊपरको उठाकर पार करनेमें कठिनाई नहीं है।"

शीलवतीने श्वसुरकी बात सुनी, पर वह जूता पहने ही नदी पार करने लगी। खड्‌गसेनको शीलवतीके इस व्यवहारसे बहुत क्रोध आया। वह सोचने लगा—"यह बहू अविनीता भी है। संसारमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुशीलता एक बहुत बड़ी सम्पत्ति है। धन न रहने पर भी शिष्टाचार और सदाचारसे सम्पन्न व्यक्ति समाजमें पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते हैं। सूर्यके प्रकाशकी तरह प्रत्येक भवन उसका स्वागत करनेके लिए तैयार रहता है। विनय और सौजन्यका प्रभाव कभी-कभी अनजानमें ऐसा पड़ता है कि उससे आर्थिक लाभ हो जाता है। अविनीततासे तो अपने भी पराये हो जाते हैं और लाभके स्थानमें हानि होती है।"

आगे चलनेपर एक अरहरका खेत मिला, जो खूब फला हुआ था। अरहरके पौधे हवासे लहरा रहे थे और उन पौधोंमें फलियाँ भी खूब लगी थीं। इस उत्तम फसलको देखकर श्वसुरने कहा—"अहा, कितनी उत्तम फसल है। जिसका खेत है, अबकी बार वह मालामाल हो जायगा। इतनी अधिक अरहर पैदा होगी कि घरमें रखनेको जगह भी नहीं मिलेगी।"

शीलवती—"पिताजी, आपका सोचना व्यर्थ है। यह फसल निर्विघ्न आ जाय, तभी तो खेतके स्वामीको उपलब्ध होगी। यदि कल ओले पड़ जायँ, अथवा टिड्डियाँ खा जायँ तो कहाँसे उत्तम फसल होगी?"

शीलवतीके इस उत्तरको सुनकर खड्गसेन और अधिक नाराज हुआ। वह सोचने लगा—"यह व्यर्थकी बातें करनेवाली मूर्ख बहू है। मैंने यह कभी कल्पना भी नहीं की थी कि इस प्रकारकी पुत्र-वधू प्राप्त होगी। इसके सौन्दर्य और रूप-लावण्यको देखकर मैं विशेष प्रभावित हुआ था, इसीलिए कई अनेक सम्बन्धोंमेंसे इस सम्बन्धको तय किया था। सोचा कुछ था और हुआ कुछ। अजित-सेनकी माँ सदा अच्छी बहूकी कामना करती रहती थी। उसीकी पसन्दने यह बहू घरमें लाई गई है।"

शीलवतीकी बातें खड्गसेनको सारहीन प्रतीत होती थीं। वह जो भी बात कहता, बहू उसका विपरीत ही उत्तर देती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे चलने पर वे एक नगरमें पहुँचे। यह नगर अत्यन्त रमणीय था। ऊँचे-ऊँचे परकोटे बने हुए थे। भव्य प्रासाद और सुन्दर बाजार प्रत्येक दर्शकका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। आवश्यकताकी सभी वस्तुएँ वहाँ मिलती थीं। नगरका आकार-प्रकार इतना सुन्दर था, कि राहगीर उसे देखते ही रह जाते थे। पण्यशालाएँ, गजशालाएँ, अश्वशालाएँ, नृत्यशालाएँ एवं धर्मशालाएँ यथास्थान बनी हुई थीं। नगरकी भव्यता प्रत्येक दर्शकके मनको लुभानेमें समर्थ थी। अतः खड्गसेनने नगरकी पर्याप्त प्रशंसा की और बहूसे कहा—"बेटी! इस नगरकी सुन्दरता तुमको कैसी लगी?"

शीलवती—"पिताजी! यदि शत्रुका आक्रमण हो जाय, तो सारा नगर धूलिमें मिल जायगा। इसकी सुन्दरता स्थायी नहीं है। वर्तमान युग अर्थयुग है, चारों ओर अर्थकी ही प्रधानताका कोलाहल मच रहा है। आर्थिक क्षेत्रमें प्राप्त की गयी एक व्यक्तिकी सफलता, अनेक व्यक्तियोंके शोषणका परिणाम होती है। अतः शत्रु-आक्रमणमें अब देर नहीं और इस नगरका सौन्दर्य भी धूलिसात् होने ही वाला है।"

खड्गसेनको बहूकी बातें सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—"बहू बाचाल है, बातें बनानेमें निपुण है, अतः मेरी बातोंका उत्तर अवश्य देती है।"

आगे चलनेपर उन्हें एक शूरवीर मिला। इस व्यक्तिमें अपूर्व उत्साह और वीरता समाहित थी। जिस परिश्रमसे हमारे चित्तमें प्रसन्नता उत्पन्न होती है, वह हमारी समस्त पीड़ाओंके लिए अमृतवत् है। उत्साह और वीरतासे ही मनुष्य कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। लापरवाह व्यक्ति न तो जनहित कर सकता है और न स्वयंकी भलाई ही। नेतृत्व करनेमें वही सफल होता है, जिसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्साह विद्यमान रहता है, जो युवक उत्साहकी लहरियोंसे झूमता है, वही अपने संकल्पमें सफल होता है।

सम्मुख उपस्थित कुलपुत्र बड़ा शूरवीर और उत्साही है। जिस राज्यमें ऐसे युवक निवास करते हैं, वह राज्य धन्य है। राष्ट्र-की वास्तविक सम्पत्ति तो ऐसे युवक ही हैं, प्रस्तुत युवकको किसी भी सेनाका सेनापति बनाया जा सकता है।

खड्गसेनने शीलवतीसे कहा—"बेटी! देखो, सामने कैसा शूर-वीर व्यायाम कर रहा है, यह कुलपुत्र अस्त्र-शस्त्रकी कलामें भी निपुण और उत्साही है। यह किसी भी देशका भाग्य-विधाता बन सकता है। इसके उत्साहका परिणाम यह दिखलाई पड़ रहा है कि इसकी सभी इच्छाएँ अल्पवयमें ही पूर्ण हो जाएँगी।"

शीलवती—"पिताजी! क्या विश्वास कि यह व्यक्ति रणभूमिमें कभी पहुँचेगा भी या नहीं। आज बीमार पड़ जाय तो कल ही इसकी अवस्था कुछ-से-कुछ हो जायगी और सारी वीरता धरी रहेगी। अतएव किसीको देखते ही उसके सम्बन्धमें उच्च विचार कर लेना उचित नहीं है। वस्तु या व्यक्तिको परीक्षा समय आनेपर ही होती है।"

"एक बात यह भी है कि जो पहले वार करता है, वही शूरवीर होता है। जो दूसरोंसे मार खा जाता है, उसकी वीरता नष्ट हो जाती है। वीरताका सबसे बड़ा चिह्न प्रथम बार करना और सतर्क रहकर दूसरेके द्वारा किये गये बारको रोकना है। यदि यह कुल-पुत्र किसीके द्वारा पिट गया, तो फिर इसकी वीरता समाप्त हो जायगी।"

खड्गसेन इन बातोंको सुनकर कुछ प्रभावित तो हुआ, किन्तु उसे बहू अशिष्ट मालूम पड़ी। गाड़ी आगेकी ओर चली और कई कोश रास्ता तय करनेपर खड्गसेनको कुछ थकावट मालूम हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इधर सूर्य भी मध्याह्नमें पहुँच चुका था। अतएव वह एक वट वृक्षकी छायामें विश्राम करने बैठ गया। शीलवती वृक्षसे हटकर दूर जाकर बैठ गई। श्वसुरने विचार किया—"बहूका स्वभाव विचित्र मालूम पड़ता है। यह प्रत्येक बातको उलटे ढंगसे सोचती है। विश्राम करनेके लिए लोग वृक्षके नीचे बैठते हैं, पर यह दूर बैठती है। इसके हृदयकी समझना साधारण बात नहीं है।"

कुछ समय तक विश्राम करनेके उपरान्त वे आगे चले और एक गाँवमें पहुँचे। यह गाँव शीलवतीके मामाका था। श्वसुर खड्गसेनने शीलवतीके मामा सागरदत्तसे साक्षात्कार किया। सागरदत्तने विनीत भावसे निवेदन किया कि अभी धूप तेज है, अतः दोपहरका भोजन यहीं करके ठंडा होने पर जाइये। सागरदत्तके आग्रहके अनुसार खड्गसेन और शीलवतीने भोजन किया। भोजनके अनन्तर खड्गसेन गाड़ीके भीतर ही विश्राम करने लगा। शीलवती गाड़ीकी छायामें बैठ गयी और अपने विगत कार्योंकी आलोचना करने लगी।

"मैं अपने परिवारके उद्धारकी दृष्टिसे अर्द्धरात्रिमें घरसे बाहर गई और मुर्देके शरीरसे बहुमूल्य आभूषणोंको निकाल कर लाई। मै क्या जानती थी कि मुझे घरसे निर्वासित कर दिया जायगा। वास्तवमें मेरे पति प्रतिदिन अथक श्रम करने पर भी भर पेट भोजनका प्रबन्ध नहीं कर पाते। उनके परिश्रमको देख कर आँखोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित होने लगती है। पारिवारिक जीवन और पति-पत्नीकी मर्यादा समाजका आवश्यक तत्त्व है। पतिसेवाके कई दृष्टिकोण हो सकते हैं।"

"सफल दाम्पत्य जीवनके लिये अनुराग, निष्ठा और आस्थाकी आवश्यकता होती है। कर्त्तव्यको समझते हुए समझौता और सहनशीलताका प्रदर्शन अनिवार्य है। जीवनमें अर्थका प्रमुख स्थान है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बिना जीवन-गाड़ी एक कदस भी नहीं चल सकती है। विविध आयामों और विचारोंसे सम्पन्न आजकी स्थितियोंको आर्थिक सीमाके भीतर ही परखा जा सकता है। अर्थाभावमें दाम्पत्य जीवन चिन्ताग्रस्त हो जाता है और चिन्तित रहनेवाला व्यक्ति स्वयंको निर्बल बना लेता है और अपने भीतर हीनत्वकी भावना भर लेता है। इतना ही नहीं चिन्ता हृदयमें उठती उमंगोंको नष्ट कर आलस्यकी भावना भर देती है। चिन्तित व्यक्ति आत्मविश्वासको खो बैठता है। उसकी कार्यक्षमता घट जाती है और वह निरन्तर असन्तोषकी भट्टीमें धधकता रहता है।" इस प्रकार शीलवती अतीतके समस्त पृष्ठोंको एक-एक कर उलटती जाती थी।"

सामनेके वटवृक्षपर काक बोल रहा था। शीलवती काककी बोलीका समझ रही थी। वह सोच रही थी कि काकके कथनानुसार वटवृक्षके तल भागमें चार हाथ नीचा खोदने पर एक स्वर्णमुद्राओंसे भरा हुआ कलश रखा है। यदि मैं ससुर साहबको इस काककी बोलीका अर्थ बतलाती हूँ, तो निश्चय ही उनको मेरी बात पर विश्वास नहीं होगा और न मालूम वे मनमें क्या सोचेंगे।

काककी रट कुछ समय तक लगातार चलती रही। जब शीलवती उसकी ध्वनिसे ऊब गई तो कहने लगी—"मेरे काक! एक बार तुम्हारी बोलीको सुनकर कार्य करने पर तो मुझे यह दण्ड मिला है कि मुझे घरसे निकाला जा रहा है। अब मैं पुनः तुम्हारी बोलीके अनुसार कार्य करूँ तो शायद संसारसे ही मुझे निकाल दिया जायगा। अतः हे भाई, अब तुम चुप हो जाओ। अधिक समय तक मुझे अपनी ओर आकृष्ट मत करो। मैंने पशु-पक्षियोंकी बोलीको जानकर जीवनमें बहुत बड़ी भूल की है।"

शीलवतीकी बातोंको सुनकर खड्गसेन चौंका और उसने शीलवतीसे पूछा—"बेटी! तुम क्या कह रही हो? तुमने कब काकको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बातोंको सुन कर कौन-सा आचरण किया ? किस अपराधमें तुमको घरसे निर्वासित किया जा रहा है ?"

शीलवती—"पिताजी ! मैंने उस दिन मध्यरात्रिमें काकद्वारा सुना कि नदीमें एक मुर्दा प्रवाहित हो रहा है। उस मुर्देके शरीर पर बहुमूल्य स्वर्णाभूषण हैं। जो इन आभूषणोंको प्राप्त कर लेगा, उसका दारिद्रय नष्ट हो जायगा।"

"काककी चेतावनीके अनुसार मैं घड़ा लेकर रात्रिमें नदी पर गई और वहाँ पर प्रवाहित होते हुए मुर्देको तटपर खींचा तथा उसके आभूषण निकाल कर घड़ेमें रखे। स्नान कर मैं घरमें लौटी। आपको मेरे चरित्रपर आशंका हो गयी और मुझसे बिना कुछ पूछे ही मेरा निर्वासन कर दिया गया।"

आज यह काक सूचना दे रहा है कि इस वटवृक्षके नीचे चार हाथ जमीन खोदने पर स्वर्णमुद्राओंसे भरा हुआ कलश प्राप्त होगा।"

श्वसुर—"परीक्षाके लिए भूमि खोद कर कलशको प्राप्त करने-का प्रयास किया जायगा।"

खड्गसेन गाँवमें गया और वहाँसे फावड़ा माँग कर लाया। उसने सन्ध्या होते ही वटवृक्षके नीचे जमीनका खोदना आरम्भ किया। ठीक चार हाथ जमीन खोदने पर स्वर्णमुद्राओंसे भरा हुआ कलश प्राप्त हुआ।

बहूके इस पक्षि-भाषा-विज्ञानको अवगत कर श्वसुर खड्गसेनको बहुत प्रसन्नता हुई और वह अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा। सोचने लगा कि बिना विचार किये कार्य करनेसे अनेक प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं। अविचारित कार्य कभी भी सुखप्रद नहीं होता। मैंने अपने जीवनमें बड़ी भूल की, जो निर्दोष बहूके चरित्र-में दोष लगाया, उसके शील पर आशंका की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुतः यह शीलवती शीलकी खान है, इसके प्रति मनमें शंका लाना ही पाप है। शील ऐसा इस्पात है, जिसका रक्षाकवच समस्त विघ्नोंका निवारण करता है। शील ही अतीतको अमर बनाता है, इसके प्रभावसे लोहा गलकर पानी हो जाता है, अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन जाता है और संसारकी समाज विभूतियाँ शीलके प्रभावसे हस्तगत हो जाती हैं।

मोह शान्त होते ही शीलका प्रकाश भर जाता है। सन्दिग्ध और व्यथित हृदय शान्तिका अनुभव करने लगता है। जो व्यक्ति अपनी वासनाओंको नियंत्रित कर संयममें प्रवृत्त होता है, उसे सुख और शान्ति दिखलायी पड़ने लगती है। जीवनका लक्ष्य शान्ति प्राप्त करना है और यह इन्द्रियनिग्रहसे ही प्राप्त हो सकती है।

खड्गसेनका हृदय स्वच्छ हो गया, उसके मनकी शंका दूर हो गयी और उसे बहूकी सच्चरित्रताका पूर्ण विश्वास हो गया। उसने अपनी गाड़ीको अपने घरकी ओर लौटाया और अगले दिन अपने गाँवमें पहुँचा। परिवारके सदस्योंकी पुनः सभा की गयी और श्वसुरने शीलवतीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहा—"बहूने अपने बुद्धि-कौशलसे मेरे बन्द नेत्रोंको खोल दिया। मैंने इसके उज्ज्वल चरित्र पर व्यर्थ ही आशंका की थी। मुझे अपने उक्त जघन्य विचारोंके लिये पश्चात्ताप है। वास्तवमें यह बहू हमारे घरकी लक्ष्मी है, इसके आनेसे हमारे कष्ट-संकट सभी दूर हो गये। आज मुझसे अधिक भाग्यशाली संसारमें कोई नहीं है। मैं आप सभी लोगोंकी ओरसे तथा अपनी ओरसे पूर्वमें किये गये अपराधोंके लिए क्षमा-याचना करता हूँ।"

शीलवती गृह स्वामिनीके पदपर प्रतिष्ठित हो गयी। अब अजितसेनके भाग्यने करवट बदली। जिस व्यापारमें पहले निरन्तर हानि होती थी, अब उसी व्यापारमें लाभ होने लगा। जो सामान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले खरीदकर रखा गया था, उसका मूल्य भी बढ़ गया, जिससे उसे कई सहस्र रुपयोंका लाभ हुआ। कुछ ही समयमें अजितसेनकी गणना नगरके प्रमुख व्यापारियोंमें की जाने लगी। उसका यश सर्वत्र व्याप्त हो गया। अब उसकी दुकान पर अनेक नौकर कार्य करने लगे तथा विदेशोंसे भी उसका व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। नगरका नृपति अत्यधिक प्रभावित हुआ और अजितसेनको मन्त्रीपदपर नियुक्त कर दिया।

: ३ :

शीलवतीकी मेधा और चातुर्यसे घरके सभी व्यक्ति प्रभावित थे। एक दिन नगरके नृपति अरिमर्दनने प्रधानमन्त्रीकी नियुक्तिके हेतु नगरमें घोषणा की कि जो लातसे मारे उसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। जो इस प्रश्नका सयुक्तिक समाधान करेगा, उसे प्रधानमन्त्रीके पदपर प्रतिष्ठित किया जायगा। राजाके मन्त्रि-मण्डलके सदस्य अजितसेनने राजासे निवेदन किया—"स्वामिन्! इस प्रश्नका उत्तर मैं सोच-समझ कर कल दूँगा।"

राजाने अन्य मन्त्रियोंसे भी उक्त प्रश्नका समाधान मांगा, पर सभी मन्त्री निरुत्तर रह गये, कोई भी समाधान नहीं कर सका।

घर पहुँचकर अजितसेनने अपनी बुद्धिमती पत्नी शीलवतीसे राजसभाकी चर्चा की तथा राजा-द्वारा प्रधानमन्त्रीकी नियुक्तिके हेतु उपस्थित की गयी समस्याका निर्देश किया।

शीलवतीने उत्तर दिया—"लात मारनेवालेके साथ सत्कारका व्यवहार करना चाहिए।"

अजितसेन—"इस प्रकारका व्यवहार करनेका कारण क्या है? लात मारनेवालेका पाँव न काटकर उसके सम्मान करनेका रहस्य क्या हो सकता है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीलवती—"प्राणवल्लभाके अतिरिक्त अन्य किसीमें लात मारनेकी शक्ति नहीं हो सकती है। जब प्रियाको अपने पतिका विट होनेका सन्देह हो जाता है, तो वह रुठकर पाद-प्रहार करती है। अतः पादप्रहार करनेका कार्य प्रियाके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता। रूठी हुई प्रियाको प्रसन्न करनेके लिए उसका सम्मान करना अत्यावश्यक है। मैंने इसी कारण पादप्रहार करने-वालेका सम्मान करनेकी बात कही है।"

शीलवतीके उक्त उत्तरसे अजितसेन विशेष प्रभावित हुआ और अगले दिन राजसभामें शीलवती द्वारा दिये गये उत्तरको राजाके समक्ष प्रस्तुत कर दिया।

राजा अजितसेनके उत्तरको सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसे प्रधानमन्त्रीके पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। मन्त्रिमण्डलमें अशोक, रतिकेलि, ललितांग और कामांकुर ये चार मन्त्री भी नियुक्त किये गये।

: ४ :

कुछ दिनोंके पश्चात् राजा अरिमर्दनको सूचना मिली कि सिंहरथने कर देना बन्द कर दिया है और वह अधीनता भी स्वीकार नहीं करता। राजा अरिमर्दनको सिंहरथका यह व्यवहार बहुत ही अनुचित प्रतीत हुआ और उसने मन्त्रिमण्डलके समक्ष उक्त समस्याको रखा। प्रधानमन्त्री अजितसेनने निवेदन किया—"शत्रुको शक्तिहीन बनानेके लिए तत्काल ससैन्य आक्रमण करना परमावश्यक है। जो राजा अपनी शक्ति पर अविश्वास करता है, उसका राज्य अधिक समय तक नहीं चल सकता। अतएव इस समय हमारी शक्ति सिंहरथकी अपेक्षा कई गुनी अधिक है। हम उसके अहंकारको धूलिसात् कर सकते हैं। हमारी शक्तिके समक्ष वह ठहर नहीं सकता। यह वसन्त ऋतुका समय भी आक्रमण करनेके लिए सर्वथा उप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्त है। अतएव हमें सिंहरथको दण्ड देनेके लिए अवश्य चलना चाहिए।"

अजितसेनके कथनका समर्थन अन्य मन्त्रियोंने भी किया तथा सिंहरथकी शक्तिका परिचय कराते हुए कहा—"सिंहरथ निर्बुद्धि है, उसने अपनी शक्तिको समझा ही नहीं है। अभी तक वह यही समझ रहा है कि हम लोग शान्तिप्रिय हैं, अतः चुपचाप उसकी बातोंको स्वीकार कर लेंगे।"

राजा अरिमर्दनको भी मन्त्रिमण्डलकी बातें रुचिकर प्रतीत हुईं और उसने आक्रमण करनेका निश्चय किया। आक्रमणके पूर्व राजनीतिके अनुसार दूत द्वारा अधीनता स्वीकार करनेका परिपत्र भी भेजा गया, किन्तु अहंकारी सिंहरथने दूतको सभासे निकाल दिया।

अरिमर्दनने राज्यकी व्यवस्था कर सिंहरथके ऊपर आक्रमण-की तैयारी की। समस्त सेना तैयार होने लगी। अजितसेनको भी राजाके साथ युद्धमें सम्मिलित होनेका आदेश प्राप्त हुआ। इस राजाज्ञासे उसके मनमें अपार वेदना हुई। वह सोचने लगा—"मेरे घरमें इस समय मेरी पत्नी शीलवतीके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। पिताजी और माताजीका स्वर्गवास दो-तीन वर्ष पूर्व ही हो चुका है। घरका समस्त भार मेरे ऊपर है। शीलवती सार्थक नाम है, पर नारीके शीलकी रक्षा सहजमें सम्भव नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि सूर्य चाहे पश्चिम दिशामें उदित हो जाय, समुद्र अपनी मर्यादाका त्याग कर दे, पर शीलवती अपने पातिव्रतको नहीं छोड़ सकती है। तो भी परिस्थितियाँ दृढ़व्रतीको भी बाध्य कर देती हैं। मुझे कई महीने घरसे बाहर रहना है, मेरी अनु-पस्थितिमें दुष्ट-गुंडे अपनी गुंडागिरीके द्वारा शीलवतीको विचलित कर सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त विचारधारासे माराच्छन्न अजितसेन घर आया। उसको उदास देखकर शीलवतीने पूछा—"स्वामिन्! आपकी उदासीका क्या कारण है? आज कौन-सा शल्य आपके हृदयको विदीर्ण कर रहा है। आज आपके मुखचन्द्रको चिन्तारूपी कलंकने क्यों धूमिल कर रखा है?"

अजितसेन—"देवी! मैं राजाके साथ युद्धभूमिमें जा रहा हूँ। तुम यहाँ अकेली रह जाओगी। मुझे तुम्हारे शीलपर पूरा विश्वास है, किन्तु पता नहीं, मन क्यों दुःखी और आशंकित है। प्रधान-मन्त्रीपद सुखका साधन न होकर कष्टका कारण बन गया है।"

शीलवती—"मेरे देवता! आप निश्चिन्त होकर राजाके साथ युद्धभूमिमें जाइये। मेरे शीलके प्रभावसे आपका बाल भी बाँका नहीं होगा। मैं आपको एक पुष्पमाला समर्पित करती हूँ, जो मेरे शीलके प्रभावसे सदा अम्लान रहेगी। जब तक यह माला मुरझाये नहीं, तब तक मेरा शील और सौभाग्य अखण्डित रहेगा। मालाके मुरझाते ही आप समझ लेंगे कि मेरा शील या सौभाग्य खण्डित हो गया है।"

अजितसेनके प्रयाणके अवसर पर शीलवतीने मस्तकमें तिलक किया। तिलक करते ही अजितसेनका दिव्यभाल चमकने लगा। उससे तेजकी किरणें निकलने लगीं। उसने दिव्य पुष्पोंकी माला भी समर्पित की जो सदा अम्लान रहती थी।

: ५ :

राजाकी सेना नदी, वन, पर्वत और समतल प्रदेशका उल्लंघन करती हुई तेजीसे चली जा रही थी। एक दिन मध्याह्नके समय सेनाका पड़ाव ऐसे स्थानपर स्थित हुआ, जहाँ पुष्प और लताओंका नामोनिशान भी नहीं था। अरिमर्दनकी दृष्टि अजितसेनके गलेमें पड़ी हुई सुन्दर, दिव्य और अम्लान पुष्पमालाकी ओर गयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजाने पूछा—"मन्त्रिवर! इस वनप्रदेशमें यह माला कहाँ प्राप्त हुई? यहाँ तो चम्पा, चमेली और वकुल पुष्पोंका अत्यन्ताभाव है, फिर उन पुष्पोंकी माला कहाँसे आ गई?"

अजितसेन—"राजन्! यह माला मेरी पतिव्रता पत्नी शीलवती ने समर्पित की है और बताया है कि मेरे शीलके प्रभावसे सदा यह अम्लान रहेगी। फलतः दस-पन्द्रह दिन हो जानेपर भी माला ज्यों-की-त्यों ताजी और अम्लान है। राजन्! यह सब शीलका माहात्म्य है।"

राजा—रतिमणि और ललितांगकी ओर संकेत कर कहने लगा—"मन्त्रिवर क्या नारीके शीलके प्रभावसे यह सम्भव है? क्या वर्तमानमें इस प्रकारकी शीलवती नारी हो सकती है? नारीके शीलको खण्डित करना असम्भव है क्या? आप लोग अपने-अपने विचार प्रकट कीजिए।"

अशोक—"राजन्! नारीके शीलको सहजमें खण्डित किया जा सकता है। प्रलोभनोंको प्राप्तकर व्रतपर अडिग रहनेवाली कोई विरली स्त्री ही हो सकती है। यदि आप मुझे खर्चके लिए एक लाख रुपये दें तो मैं शीलवतीके शीलकी परीक्षा ले सकता हूँ।"

राजा—"आपको सरकारी कोषसे तत्काल एक लाख रुपयोंकी व्यवस्था की जाती है। आप जाइये और अपना कार्य सिद्धकर लौटिए।"

अशोक राजकोषसे रुपये लेकर नगरमें पहुँचा और चतुर दूतीको शीलवतीके यहाँ भेजा। दूतीने विभिन्न प्रकारकी बातें कहकर शीलवतीको इस बातके लिए तैयार कर लिया कि अशोक उसके यहाँ आया-जाया करे।

शीलवतीने अपने भवनके एक कक्षमें सुन्दर गड्ढा खुदवाया और उस गड्ढेके ऊपर एक पलंग बिछाया, जिस पलंगके बीचमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाली स्थान था। पलंगके ऊपर सुन्दर चादर बिछा दी गयी। जब अशोक वहाँ आया तो सर्वप्रथम शीलवतीने उससे एक लाख रुपये लेकर उसे पलंगपर बैठाया। पलंगपर बैठते ही अशोक गड्ढेमें गिर गया। उसने उस अन्धकूपसे निकलनेका पूरा प्रयास किया, पर सब व्यर्थ।

शीलवती एक रस्सीके सहारे मिट्टीके बर्तनमें रखकर उतना ही भोजन-जल देती थी, जितनेसे उसके प्राण बचे रहें।

जब अशोक लौट कर न गया तो राजाको चिन्ता हुई और उसने क्रमशः रतिकेलि, ललितांग एवं कामांकुरको शीलवतीको विचलित करनेके लिए एक-एक लाख रुपये देकर भेजा गया, किन्तु उनकी भी वही स्थिति हुई, जो अशोककी हुई थी। चारों ही मन्त्री उस अन्धकूपमें पड़े हुए मृत्युकी घड़ियाँ गिनने लगे। शीलवती मिट्टीके बर्तनमें उन लोगोंको उतना ही भोजन देती थी, जितनेसे वे लोग जीवित बने रहें।

जब राजा अरिमर्दन सिंहरथको पराजित कर और उसे करद बना अपने नगरमें वापस लौटा तो नगरवासियोंने उसका अत्यन्त उत्साहपूर्वक स्वागत किया। नगरमें चारों ओर उत्सव सम्पन्न किये जाने लगे। वाद्योंकी मधुर ध्वनि प्रत्येक नर-नारीके मनमें नये उत्साहका संचार करने लगी।

अशोक मन्त्रीको भी किसी प्रकार राजाके वापस लौटनेका समाचार ज्ञात हुआ। उसने शीलवतीसे निवेदन किया—"इस अन्धकूपमें रहते हुए तो कई महीने बीत गये। भोजन और जल भी इतनी कम मात्रामें उपलब्ध होता है, जिससे केवल प्राण ही अवशिष्ट हैं। खुली हवा और प्रकाश भी प्राप्त नहीं होता है, जिससे हम लोगोंका शरीर नर-कंकाल शेष रह गया है। हम तुम्हें बड़ी बहन मानते हैं, अतएव अब तुम हम लोगोंको इस अन्धकूपसे बाहर निकाल देनेकी कृपा करो।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शीलवती—"मैं आप लोगोंकी बातको स्वीकार कर सकती हूँ, किन्तु आप लोगोंको भी मेरी शर्तें स्वीकार करनी पड़ेंगी।"

"मैं जिस बातको कहूँ, आप लोगोंको उसकी स्वीकृति देना होगा तथा मेरे आदेशके अनुसार चलना होगा।"

शीलवतीने उन चारोंको निकाल कर पृथक्-पृथक् सन्दूकोंमें बन्द कर दिया तथा पूर्ववत् भोजन देने लगी।

राजा अरिमर्दनने अजितसेनसे कहा—"नगरमें उत्सव सम्पन्न हो, तथा दरिद्रों, भिक्षुओं और ज्ञानियोंको यथोचित द्रव्य दानमें दिया जाय।"

शीलवतीके कथनानुसार अजितसेनने राजाको अपने यहाँ भोजनके लिए प्रधान सामन्तों सहित आमन्त्रित किया। राजा जब वहाँ आया तो भोजनकी कोई व्यवस्था न देखकर उसे महान् आश्चर्य हुआ।

शीलवतीने गड्ढेको पुष्पोंसे आच्छादित कर दिया और बोली—"शीघ्र ही षट्‌रस व्यंजन तैयार हो जायँ।"

सन्दूकके भीतर बन्द मन्त्रियोंने कहा—"जैसी आज्ञा, तत्काल सभी प्रकारके सुस्वादु पदार्थ तैयार किये जाते हैं।"

क्रमशः गर्तसे भोज्य पदार्थ आने लगे और सभीको स्वादिष्ट पदार्थ खिलाकर सन्तुष्ट किया गया। पुनः शीलवती बोली—"अब ताम्बूल, इलायची और लवंगादि मुखशुद्धिके पदार्थ आने चाहिए।"

गर्तसे आवाज आई, जैसी आपकी आज्ञा। पदार्थ प्रस्तुत हो गये। राजाने शीलवतीसे पूछा—"तुम्हें कौन-सी अदृष्ट शक्ति प्राप्त है, जिससे तुम्हारे समस्त कार्य क्षणभरमें हो जाते हैं।"

शीलवती—"राजन्! मैंने चार सिद्धोंको अपने वशकर लिया है। वे सिद्ध ही मेरे समस्त कार्योंको सम्पन्न कर देते हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो मैं उन सिद्धोंको आपको सौंप सकती हूँ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—"उपकार और पूछ-पूछ कर। कल आप इन सिद्धोंको मुझे दे दीजिए।"

शीलवती—"कल मध्याह्नमें आप सभाका आयोजन कीजिए। मैं सभाके बीच ही आपको सिद्धोंको भेंट करूँगी। आप उन सिद्धोंको प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे।"

अगले दिन मध्याह्न कालमें चार सन्दूकोंको गाड़ीमें रखवा कर शीलवती राजसभामें पहुँची। वह क्रमशः एक-एक सन्दूककी ओर संकेत कर कहनी लगी—"सिद्धराज! अब तक आप मेरे बन्दी थे, पर आजसे मैं आप लोगोंको राजाकी सेवाके लिए समर्पित करती हूँ। आपको मेरी बात स्वीकार है।"

सिद्धगण—"हमें आपकी बात स्वीकार है।"

राजा सिद्धोंको इस बातको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। पर जब सन्दूकोंको खोला गया तो अस्थिपन्जर मात्र वे चारों मन्त्री निकले।

राजाके समक्ष समस्त रहस्य उद्घाटित किया गया। राजा शीलवतीकी मेधा और शीलसे अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसे विश्वास हो गया कि सती नारीको उसके शीलसे कोई भी विचलित नहीं कर सकता है। राजाने शीलवतीके सम्मानार्थ एक सभाका आयोजन किया तथा उसके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए विभिन्न प्रकारके उपहार समर्पित किये।

शीलवतीको अब संसारके विषयोंसे अरुचि उत्पन्न हो गयी और उसने धर्मघोष मुनिके निकट जाकर आर्यिकाके व्रत स्वीकार कर लिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: ११ :

साक्षात्कार प्रविधि

उज्जैनी नरेशको मन्त्रियोंकी नियुक्ति करनी थी। समस्त अवन्ती देशमें सूचना प्रसारित कर दी गयी कि आवेदकके लिए शिक्षा, विनय, सदाचार और व्यक्तित्व-महत्ताके साथ प्रत्युत्पन्नमतित्व आवश्यक है। व्यक्तित्वकी परीक्षाके लिए साक्षात्कारका सामना करना पड़ेगा। जो विशेषज्ञ साक्षात्कारमें सबसे अधिक प्रत्युत्पन्न मति होगा, उसकी प्रधानमन्त्रीके पदपर नियुक्ति की जायगी। मुद्राङ्कित पत्रके साथ उक्त सूचना प्रत्येक शिक्षालयको भेज दी गयी। देश, विदेशके अनेक युवकोंने अपने-अपने आवेदन-पत्र भेजे। जितशत्रु नृपतिने स्वयं ही आवेदन-पत्रोंका अवलोकन किया और शताधिक आवेदकोंमेंसे साक्षात्कारके लिए केवल पाँच आवेदकोंको आमन्त्रित किया गया। साक्षात्कारके लिए ऐसे आवेदकोंको बुलाया गया, जो कई भाषाओंके विशेषज्ञ होनेके साथ अनेक कलाओंमें भी प्रवीण थे। जितशत्रुने मन्त्रियोंकी योग्यता निम्न प्रकार निर्धारित की। राजाका विचार था कि प्रत्येक पदका अधिकारी मन्त्री ऐसा होना चाहिए जो अपने पदके दायित्वको भली प्रकार संचालित कर सके।

स्वदेश मन्त्रीको पुलिस, सेना, व्यापार-वाणिज्यका संचालन करना था। अतः उसको योग्यताओंका निर्धारण करते हुए बताया गया—

१. अस्त्र-शस्त्र संचालनमें प्रवीणता।
२. गज-अश्व संचालन और नियन्त्रणकी क्षमता।
३. समुद्री-यान निर्माणकी विधिका परिज्ञान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. गुप्त रहस्योंको अवगत करनेकी क्षमता।
५. प्रजाके कार्यकलापोंको समझनेकी योग्यता।

न्याय और परिवहन मन्त्रीकी योग्यताओंको परिगणित करते हुए लिख गया—

१. लेखन और गणना कलाका विशेषज्ञ
२. शास्त्रोंका पाण्डित्य।
३. नियमोपनियमोंका परिज्ञान।
४. धर्मशास्त्र और क्रियाकाण्डका ज्ञान।
५. लक्षणशास्त्रका विशेषज्ञ।

इसी प्रकार अन्य मन्त्रियोंकी योग्यताएँ भी निर्धारित की गयीं। साक्षात्कारकी तिथि निश्चित कर दी गयी। आमन्त्रित आवेदक अपनी-अपनी निश्चित तिथि पर राजा जितशत्रुके समक्ष उपस्थित हुए। राजाने प्रथम आवेदकसे पूछा—

"क्या आप हाथीको तौल सकते हैं?"

आवेदक—"राजन्! मैं हाथीको तौलकर उसका यथार्थ वजन निकाल सकता हूँ?"

राजा—"क्या हाथीको तौलनेके लिए आपके पास तराजू और बाँट हैं?"

आवेदक—"जी, नहीं? हाथीको तौलनेके लिए इतनी बड़ी तराजू कहाँसे आयेगी, उसको तो बुद्धिबल द्वारा ही तौला जा सकता है?"

राजा—"महोदय, किस प्रकार आप बुद्धिबलसे हाथीको तौलेंगे?"

आवेदक—"राजन्! उसे मैं एक नौकामें बैठा कर नदीमें ले जाऊँगा। हाथीके वजनसे नौकाका जितना अंश जलमें डूबेगा, उतने अंशको चिह्नित कर दूँगा। पुनः हाथीको उतार कर उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौकामें पत्थर भर दूँगा। नौकाको नदीमें ले जाऊँगा और जितना अंश पहले हाथीके साथ पानीमें डूबा था, उतना ही अंश पत्थर लाद कर डुबा दूँगा। अब नौकाको पानीसे निकाल कर उन पत्थरोंके भारका वजन कर लूँगा। पत्थर तौलमें जितने होंगे, हाथी भी तौलमें उतना ही होगा। इस प्रकार युक्ति द्वारा हाथीका वजन निकाल लिया जायगा।"

आवेदकके उक्त उत्तरको सुनकर राजा जितशत्रु बहुत प्रसन्न हुआ। और उसे स्वदेश-मन्त्रीके पदपर नियुक्त करनेका आदेश दे दिया।

अगले दिन द्वितीय आवेदक साक्षात्कारके लिये प्रस्तुत हुआ। राजा जितशत्रुने उससे पूछा—

"महोदय! एक व्यक्तिकी दो पत्नियाँ थीं। वह उन दोनों पत्नियोंको समान प्यार करता था। एक दिन उन दोनोंमें इस बातको लेकर झगड़ा उत्पन्न हुआ कि वह व्यक्ति उन दोनोंमेंसे किसे अधिक प्यार करता है। यह तो सम्भव नहीं है, कि दोनोंको सर्वथा समान प्यार किया जा सके। कुछ हीनाधिकता तो अवश्य होगी। क्या आप उन दोनोंके इस समत्वके विवादको शान्त कर सकेंगे?"

आवेदक—"इस झगड़ेका अन्त बहुत ही सरलतापूर्वक किया जा सकता है।"

राजा—"किस प्रकार?"

आवेदक—"हम सर्वप्रथम उस व्यक्तिसे निवेदन करेंगे कि आप समान प्यार करते हैं, यह ठीक है। पर यह बतलाइये कि यहाँसे दस मीलकी दूरीपर स्थित दुर्गसे यदि पत्र मँगवाया जाय तो आप इन दोनों पत्नियोंमेंसे किससे पत्र मँगवायेंगे। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि एक दूसरे दुर्गसे भी पत्र मँगाना है, जो पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्गकी अपेक्षा ठीक विपरीत दिशामें है। अथवा यों समझिये कि एक दुर्ग पूर्वमें स्थित है और दूसरा पश्चिममें। आप किस पत्नीको पूर्व दिशामें भेजेंगे और किसे पश्चिममें। जब वह व्यक्ति यह पूछेगा कि घटना किस मौसमकी होगी, तो मैं उससे निवेदन करूँगा कि घटना ग्रीष्म ऋतुकी होगी। ज्येष्ठ महीनेमें पत्र मँगाने हैं। इस प्रश्नके उत्तरसे ही मैं निर्णय कर लूँगा कि वह व्यक्ति किसे अधिक प्यार करता है, और किसे कम ?"

राजा—'महोदय, आप किस प्रकार ज्ञात करेंगे, यह भी बतलाइये।"

आवेदक—"राजन् जिस पत्नीको वह पूर्व दिशाकी ओरसे पत्र लेने भेजेगा, उसे वह कम प्यार करता है, और जिसे पश्चिम दिशामें पत्र लेने भेजेगा, उसे वह अधिक प्यार करता है।"

राजा—"किस प्रकार आप इस प्रकारका निर्णय लेंगे ? किस युक्तिके आधार पर आपका यह निर्णय प्रतिष्ठित होगा ?"

आवेदक—महाराज ! जिस पत्नीको वह पूर्व दिशासे पत्र लेने भेजेगा, उसे इस भयंकर गर्मीमें पूर्व दिशाकी ओर जाते समय सूर्य सम्मुख रहेगा और लौटते समय भी पश्चिममें सूर्यके आ जानेसे सम्मुख सूर्यका सामना करना पड़ेगा। अतएव जाते और लौटते समय दोनों ही बार उसे सम्मुख सूर्यका सामना करना पड़ेगा। पर पश्चिमसे पत्र लाते समय दोनों ही बार पीठ पीछे सूर्य पड़ेगा, अतः उसे कम कष्ट होगा। जिसे अधिक प्यार करता है, उसे वह कम कष्ट देगा, अतएव उसे पश्चिम भेजेगा और जिसे कम प्यार करता है, उसे वह पूर्व दिशाकी ओर भेजेगा।

राजा जितशत्रु इस उत्तरको सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ।

उसने पुनः आवेदकसे प्रश्न किया—"वेण्याक नदीके तटपर जो पीपलका वृक्ष है, उसपर कितने काक हैं ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवेदक—"राजन् ! वहाँ साठ हजार काक रहते हैं।"

राजा—"यदि गणना करनेसे कम या अधिक निकले तो तुम्हें क्या सजा मिलेगी।"

आवेदक—"राजन् ! गणना करनेसे अधिक हों तो समझ लेना कि वहाँके काकोंके यहाँ कुछ बाहरके अतिथि काक आये हुए हैं और कम हों तो यह समझना कि वहाँके काक बाहर आतिथ्य ग्रहण करनेके लिए गये हैं ?"

इस उत्तरको सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ।

राजा—"यदि भोजन करते समय खूंखार कुत्ते आ जायें, तो क्या किया जायगा ?"

आवेदक—"राजन् ! भोजनके समय कुत्तोंके आनेपर थोड़ा-सा भोजन कुत्तोंको भी डाल दिया जायगा, जिससे वे जब तक उस थोड़ेसे भोजनमें व्यस्त रहेंगे, तबतक भोजन कर लिया जायगा।"

आवेदकके इस दाम-नीति सम्बन्धी उत्तरसे राजा बहुत प्रसन्न हुआ।

राजा—हमारी राज सभामें आज एक विवाद आया है, इसका निर्णय किस प्रकार किया जायगा। विवाद यह है कि एक व्यक्तिकी दो पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक स्त्रीको पुत्र हुआ, पर परस्परमें सौहार्द-वश वे दोनों उस पुत्रको समान रूपमें ही प्यार करती थीं। पुत्र यह नहीं जानता कि उसकी वास्तविक माँ कौन है ? जब उस व्यक्ति-की मृत्यु हो गई, तो सम्पत्तिको लेकर उन दोनोंमें झगड़ा हो गया। वे अपना न्याय करानेके लिये राजसभामें आई हुई हैं तथा वे यह चाहती हैं कि समस्त वस्तुओंका बँटवारा कर दिया जाय। धन सम्पत्तिका बँटवारा तो ठीक है, किन्तु पुत्रका बँटवारा किस प्रकार किया जाय ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवेदक—"राजन् मेरे सामने वह मुकद्दमा उपस्थित किया जाय, तो मैं यथार्थं निर्णय कर सकता हूँ।"

मुकद्दमा आवेदकको दिया गया। आवेदकने प्रथम तो उन दोनों नारियोंको बहुत समझाया, पर उन्होंने समझौता करना स्वीकार नहीं किया। इसपर उसने निर्णय दिया कि समस्त वस्तुओंको आधा-आधा कर बाँट दिया जाय। उसने जल्लादोंको आदेश दिया कि इस लड़केको बीचमेंसे दो टुकड़े कर दो और एक-एक टुकड़ा प्रत्येक स्त्रीको दे दो।

लड़केकी जो वास्तविक माँ थी, वह इस फैसलेको सुनकर रोने लगी और बोली—महानुभाव! इस लड़केको उसी स्त्रीको सौंप दीजिए, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं। यह जीवित रहेगा तो मैं कभी-कभी इसका दर्शन तो कर लिया करूँगी।

निर्णायक—"नहीं, इसके दो टुकड़े किये जायेंगे और तुम दोनोंको एक-एक टुकड़ा बाँट दिया जायगा।"

जिस स्त्रीके उदरसे वह लड़का उत्पन्न नहीं हुआ था, वह स्त्री एक टुकड़ा लेनेको तैयार हो गयी, किन्तु जिसका वह पुत्र था, उसने रोना-धोना शुरू किया और पुत्रके टुकड़े न करनेका अनुरोध किया। इसपर निर्णायकने कहा—"यदि तुम पुत्रका हिस्सा नहीं चाहती हो तो तुमको धनका हिस्सा भी नहीं मिलेगा।"

वास्तविक माँ—"मुझे धनकी आवश्यकता नहीं। आप धन और पुत्र उसीको दिला दीजिए, पर कुमारके टुकड़े न कराइये। कुमारके जीवित रहनेसे मैं उसके दर्शनकर आनन्दित हो सकती हूँ।"

निर्णायकके उच्च स्वरमें दूसरी धूर्त स्त्रीको डाँटते हुए कहा—"तुम्हारा पुत्र नहीं है, पुत्रकी अधिकारिणी उसकी माँ हैं अतः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने कुमारके टुकड़े न करने वाली माँको पुत्र तथा धन सौंफ दिया और झूठा झगड़ा करनेवालीको सजा दी।

राजा—आवेदकके उक्त बुद्धिचातुर्यसे बहुत प्रभावित हुआ, और उसे न्याय-मन्त्रीके पदपर नियुक्त कर लिया।

तीसरे आवेदकको साक्षात्कारके लिए उपस्थित किया गया। राजाने उससे पूछा—

"क्या, आप धूलकी रस्सी बना सकते हैं ?"

आवेदक—"महाराज मैंने अभी कहीं धूलकी रस्सी देखी नहीं है, अतएव आप नमूनेके लिए एक धूलकी रस्सी अपने यहाँसे दे दें, तो मैं उस आधार पर अवश्य ही धूलकी रस्सी बना सकता हूँ।"

राजा जितशत्रु इस उत्तरसे प्रभावित हुआ। उसने पुनः पूछा—

"सुना है कि क्षितिप्रतिष्ठ नगरके कुँओंका पानी बहुत मीठा होता है। क्या आप वहाँसे एक-दो कुँएं यहाँ ले आ सकते है ?"

आवेदक—"राजन् ! अवश्य मैं वहाँसे कई कुँएं ले आ सकता हूँ। पर एक बात है कि आपके यहाँके कुँएं उन कुँओंका स्वागत करनेके लिए नगरके बाहर चल सकें। बिना स्वागतके क्षितिप्रतिष्ठ नगरके कुँएं यहाँ आनेको तैयार नहीं हैं।"

राजा इस उत्तरको सुनकर प्रसन्न हुआ।

राजा—"क्या एक शिला द्वारा मण्डप तैयार किया जा सकता है ?"

आवेदक—"हाँ राजन् ! एक शिलासे मण्डप निर्मित हो सकता है ?"

राजा—"किस प्रकार ?"

आवेदक—"भूमिको खोदकर एक लम्बा चौड़ा गड्ढा तैयार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना चाहिए और इस खानको शिलासे आच्छादित करनेपर एक शिला-मण्डप तैयार हो जायगा।"

राजा—महोदय! इन इक्कीस तिलोंको ग्रहण कीजिए और इनके बराबर तैल तैयार कर दीजिए।"

आवेदकने तिलोंको ग्रहण कर लिया। उसने उन्हें एक दर्पण पर रखा, जितना स्थान तिलोंने घेरा उतने स्थानके बराबर तिलों-को कूटकर तैल निकाल लिया और दर्पण पर तैल लगाकर कहा कि देखिए—तिलोंके बराबर तैल निकाल दिया है।

राजा आवेदककी इस प्रक्रियासे वहुत प्रभावित हुआ। उसने पुनः पूछा—

"महोदय! क्या मुर्गेको बिना प्रतिद्वन्द्वीके लड़ना सिखाया जा! सकता है?"

आवेदक—"हाँ, प्रतिद्वन्द्वीके अभावमें भी लड़ना सिखाया जा सकता है।"

राजा—"किस प्रकार?"

आवेदक—"दर्पणके सामने मुर्गाको खड़ा कर दिया जाय। मुर्गा जब अपना प्रतिबिम्ब दर्पणमें देखेगा, तो उसे दूसरे मुर्गेकी प्रतीति होगी। वह दूसरा मुर्गा समझ कर लड़ना आरम्भ कर देगा। इस प्रकार अकेला मुर्गा भी लड़ना सीख सकता है।"

आवेदकके प्रश्नोत्तरोंसे प्रसन्न होकर राजाने उसकी मन्त्रिपद-पर नियुक्ति करनेका आदेश दे दिया।

अव राजाको प्रधान मंत्रीकी नियुक्तिकी चिन्ता हुई। उसने आवेदकोंके समक्ष एक समस्या रखते हुए कहा—

"एक युवक गाड़ीपर सवार हो अपनी पत्नी सहित कहीं जा रहा था। मार्गमें उसकी पत्नीको प्यास लगी, अतः वह जल लेनेके लिए गाड़ीसे उतर गयी। एक व्यन्तरीने उस युवक पुरुषको देखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसके रूपपर मुग्ध हो गयी। उसने उसकी पत्नीका रूप धारण किया और उस गाड़ीमें आकर बैठ गयी। स्त्रीको गाड़ीमें बैठी देखकर उस युवकने गाड़ीको आगे बढ़ाया। जब पानी पीकर उसकी पत्नी वापस लौटी तो गाड़ीको आगे जाते हुए देखकर उसने रोना, कल्पना और चिल्लाना आरम्भ किया। उसने कहा—'प्रियतम ! आप मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ जा रहे हैं ?' मैं किसकी शरणमें जाऊँगी। आप गाड़ी रोकिए।"

उन दोनोंकी समान आकृति देखकर उस व्यक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह यह निश्चय करनेमें असमर्थ था कि उसकी वास्तविक पत्नी कौन है ? क्या आप लोगोंसे कोई व्यक्ति उसकी वास्तविक पत्नीका निर्णय कर सकता है ?"

एक आवेदक—"राजन् मैं उसकी वास्तविक पत्नीका पता लगा सकता हूँ ?"

राजा जितशत्रु—"किस प्रकार ?"

आवेदक—"मैं एक वस्त्र बीस गजकी दूरीपर फेंक दूँगा और आदेश दूँगा कि जो उस वस्त्रको यहींसे बैठे-बैठे उठा देगी, वही वास्तविक पत्नी हैं। मनुष्यमें तो इतनी शक्ति नहीं जो बीस गज दूरीकी वस्तुको वहाँसे बैठे-बैठे उठा ले, यह शक्ति तो किसी व्यन्तर या पिशाचमें ही हो सकती है, अतः जो उस वस्त्रको उठा देगी, वह व्यन्तरी होगी। अब सहजमें उसकी वास्तविक पत्नीका पता लगाया जा सकता है।"

राजा जितशत्रुको इस उत्तरसे सन्तोष हुआ और उसने एक नयी समस्या उपस्थित करते हुए कहा—

"मेरी अँगूठी तालाबमें गिर गयी है, और वह जलके ऊपर तैर रही है। तालाबके जलमें प्रवेश किये बिना अँगूठीका जलसे निकाल लेना क्या सम्भव है ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवेदक—"हाँ, राजन् ! जलसे अंगूठीको तालाबके भीतर प्रवेश किये बिना निकाला जा सकता है।"

राजा—"किस प्रकार ?"

आवेदक—"थोड़ा-सा गोबर लेकर अंगूठीके ऊपर फेंक देना चाहिए। अंगूठी गोबरमें समा जाय, तब जलता हुआ पुआल उस गोबरके ऊपर डाल देनेसे अंगूठीवाला गोबर गर्मीके कारण कड़ा हो जायगा। पश्चात् गोबरके कण्डे फेंककर उस अंगूठीवाले कण्डेको वाहर निकाल लिया जा सकता है। इस प्रकार युक्ति द्वारा अंगूठीको तालाबके पानीके भीतर विना प्रवेश किये भी निकाला जा सकता है।"

राजा इस उत्तरसे प्रभावित हुआ और दूसरी समस्या उपस्थित करते हुए कहने लगा—

"एक अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी थी। इसके विवाह-सम्बन्धकी योजना विभिन्न अभिभावकोंने विभिन्न देशके चार राजकुमारोंके साथ की। निश्चित समय पर ये चारों राजकुमार ससैन्य राजकुमारीसे विवाह करनेके लिए आ धमके। वे चारों ही वर विवाह करनेके हेतु परस्परमें भयंकर युद्ध करनेके लिए प्रस्तुत हो गये। जब राजकुमारीको उक्त समाचार ज्ञात हुआ और अपने कारण होनेवाले रक्तपातकी सूचना मिली तो उसने अग्निमें प्रविष्ट हो अपनेको भस्म कर दिया। राजकुमारीके साथ अत्यधिक प्रेम होनेसे एक वर भी अग्निमें उसीके साथ जलकर भस्म हो गया। दूसरा राजकुमार उसकी अस्थियोंको गंगामें प्रवाहित करनेके लिए चला गया। तीसरा उस राजकुमारीकी चिताकी भस्मको वहींपर जलप्रवाहमें डालकर उसके वियोगसे दुःखित हो भूमण्डल पर भ्रमण करने लगा। चौथा वहीं रहकर उस मृत राजकुमारीको प्रतिदिन पिण्डदान देता हुआ समय बिताने लगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसरा राजकुमार, जो भूमण्डल पर भ्रमण कर रहा था, किसी गाँवमें किसी गृहस्थके यहाँ भोजन करनेके लिए बैठा। उस गृहस्थकी गृहस्वामिनी भोजन परोसनेका कार्य करती थी। उस समय उस स्त्रीका छोटा बालक बहुत रोने लगा। अतः उस स्त्रीने क्रोधमें आकर उस बच्चेको जलती हुई आगमें झोंक दिया। इस दृश्यका प्रभाव उक्त राजकुमार पर बहुत बुरा पड़ा, अतः वह भोजनशालासे बिना भोजन किये ही उठकर जाने लगा। इसपर उस स्त्रीने अतिथिको समझाते हुए कहा—'महानुभाव ! सन्तान किस माता-पिताको प्रिय नहीं होती। इसकी प्राप्तिके लिए कितने जप-जोग-दान करने पड़ते हैं। अतः आप चिन्ता मत कीजिए, मैं भोजनोपरान्त इस बच्चेको जीवित कर दूँगी।

भोजनकार्य समाप्त होनेके अनन्तर उस महिलाने अमृतकलशसे अमृत लेकर उस बच्चेको जीवित कर दिया। इस चमत्कारको देखकर वह व्यक्ति बहुत प्रभावित हुआ। उसने रात्रिमें उस अमृत-कलशको चुरा लिया और उसे लेकर वह हस्तिनापुरमें आया तथा सभीके समक्ष अमृत-छींटे देकर उस कन्याको जीवित कर दिया। कन्याके जीवित होनेसे उसके साथ जलकर भस्म हुआ व्यक्ति भी जीवित हो गया। अतः संयोगवश वे चारों राजकुमार पुनः वहाँ एकत्र हो गये। अब पुनः विवाहका विवाद उपस्थित हुआ। मैं उनका विवाद निर्णय करनेका अधिकार देता हूँ। कृपया बतलाइये कि उस राजकुमारीका विवाह किस राजकुमारके साथ किया जाय।

पूर्व आवेदक—"श्रीमान् ! इस मुकदमेका मैं यथार्थ निर्णय कर सकता हूँ।"

राजा—आप इसका निर्णय अवश्य कीजिए।"

आवेदक—"राजन् ! जिस राजकुमारने चिता पर अमृत डालकर जीवित किया है, वह राजकुमार जन्म देनेके कारण इस कन्याका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिता हुआ। अमृत पड़नेसे जो साथमें जन्मा है, वह एक साथ जन्म लेनेके कारण उसका भाई हुआ। जो चिताकी भस्मको जल-प्रवाहमें डालकर पिण्डदान देता रहा है, वह पुत्रका कार्य करनेसे उस राजकुमारीका पुत्र कहलाया। अतएव इस राजकुमारीका वह वह पति होना चाहिए, जो इस चिताकी रक्षा करता रहा है।"

आवेदकके इस निर्णयको सुनकर राजा जितशत्रु बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त आवेदकको प्रधानमन्त्रीके पदपर प्रतिष्ठित किया।

इस प्रकार राजा जितशत्रुने साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अपने मन्त्रिमण्डलकी नियुक्ति कर 'इण्टरव्यू' प्रणालीको प्रोत्साहित किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi